आचार्य विरागसागर ग्रंथमाला : हिन्दी ग्रन्थांक-11 (13)

विमर्शाञ्जलि

राष्ट्रीय विमर्श जागृति मंच, प्रकाशन

परिचय के आइने में

आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज

लौकिक यात्रा

पूर्व नाम	-	श्री राकेश कुमार जैन
पिता	-	श्री सनत कुमार जैन
माता	-	श्रीमती भगवती जैन
जन्म स्थान	-	जतारा, जिला टीकमगढ़ (म.प्र.)
जन्म तिथि	-	मार्गशीर्ष कृष्णा पंचमी सं. 2030
जन्म दिनांक	-	15 नवम्बर 1973, दिन - गुरुवार
शिक्षा	-	बी.एस.सी. (बायलॉजी)
भ्राता	-	दो (अग्रज राजेश जैन, अनुज चक्रेश जैन)
भगिनि	-	दो (अग्रजा : श्रीमती कमला जैन अनुजा : बा.ब्र. प्रियंका दीदी)
विवाह	-	बाल ब्रह्मचारी
खेल	-	बैडमिंटन, शतरंज (विशेषता - दोनों खेल जिनसे सीखें उन्हीं के साथ फाईनल खेलते हुए चैंपियन कप विजेता)
सामाजिक सेवा	-	मंत्री - श्री दिगम्बर जैन नवयुवक संघ, जतारा
रुचि	-	अध्ययन, संगीत, पेंटिंग
सांस्कृतिक रुचि	-	अनेक धार्मिक, सामाजिक नाट्य मंचन
करुणाभाव	-	बचपन में एक गरीब अंधे भिखारी को अक्सर पैसे दान देना।

परमार्थ यात्रा

आचार्यश्री विरागसागर जी महाराज के प्रथम बार जतारा नगर में आयोजित पंचकल्याणक प्रतिष्ठा एवं त्रयगजरथ महोत्सव में समाज की ओर से निवेदन के अवसर पर दर्शन हुये। आचार्यश्री की वात्सल्यता ने अत्यन्त प्रभावित किया। (सन्-1995, स्थान-मोराजी सागर, म.प्र.)

त्याग के संस्कार :

आचार्यश्री विरागसागर जी महाराज की जतारा नगर की वैयावृत्ति के समय आजीवन आलू प्याज एवं रात्रि भोजन के त्याग से गृह त्याग की भावना।

ब्रह्मचर्य व्रत :

आचार्यश्री विरागसागरजी महाराज ससंघ का विहार कराते हुए सिद्धक्षेत्र श्री अहार जी में भगवान शान्तिनाथ की चरणछाया में फाल्गुन कृष्णा त्रयोदशी, सोमवार संवत् 2051, 27 फरवरी 1995 को आचार्यश्री से दो वर्ष का ब्रह्मचर्य व्रत ग्रहण किया।

सामायिक प्रतिमा :

आचार्यश्री विरागसागरजी महाराज से पार्श्वनाथ मोक्ष सप्तमी के अवसर पर सामायिक प्रतिमा के व्रत ग्रहण किये। स्थान-ललितपुर क्षेत्रपाल जी, 3 अगस्त सन्-1995, गुरुवार।

ऐलक दीक्षा :

फाल्गुन शुक्ला पंचमी, शुक्रवार, संवत् 2052, 23 फरवरी 1996 को देवेन्द्रनगर (पन्ना) में तपकल्याणक के दिन आचार्यश्री विरागसागरजी महाराज से ऐलक दीक्षा ग्रहण की और नाम पाया ऐलक विमर्शसागर जी।

मुनि दीक्षा :

पौष कृष्णा 11, संवत् 2055, सोमवार दिनांक 14 दिसम्बर 1998 को अतिशय क्षेत्र बरासो (भिण्ड) में आचार्यश्री विरागसागरजी से मुनि दीक्षा ग्रहण की और मुनि विमर्शसागर नाम पाया।

आचार्य पद घोषित :

आचार्यश्री विरागसागरजी ने 2005 में कुन्थुगिरी क्षेत्र पर गणधराचार्य श्री कुन्थुसागर महाराज सहित 14 आचार्य एवं 200 पिच्छी के मध्य आचार्य पद घोषित किया।

आचार्य पद संस्कार :

मार्गशीर्ष शुक्ला सप्तमी, सं. 2067, रविवार, दिनांक 12 दिसम्बर 2010 को बांसवाड़ा राजस्थान में आचार्य श्री विरागसागर जी ने आचार्य पद के संस्कार किये और नाम दिया आचार्य विमर्शसागर जी।

साहित्य यात्रा

आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज यूँ तो शरीर से दुबले-पतले लेकिन गौरवर्ण, शुभ संस्थान, चौड़ा ललाट, दमकता मुखमण्डल, प्रशस्त मुद्रा, मधुर मुस्कान के धारी हैं, ऐसे ही आचार्यश्री की लेखनी भी जनमानस के हृदय को छूने वाली है। आचार्यश्री ने अनेक विषयों पर कलम चलाते हुए साहित्य सृजन किया है।

अलंकरण

रत्नत्रय के ऊर्जस्वी और तेजस्वी अलंकारों से जिनकी आत्मा का एक एक प्रदेश अलंकृत है। सत्यं-शिवं-सुंदरम् की दिव्य रश्मियों से आलोकित पूज्य गुरूवर विमर्शसागर जी महाराज का विराट व्यक्तित्व किन्हीं शब्दालंकारों का मोहताज नहीं है फिर भी भक्तों की भक्ति के तीक्ष्ण प्रवाह को रोकना भगवान के भी बस की बात नहीं है, अतः जगह-जगह की धर्मप्राण-समाजों, ऊर्जस्वी संगठनों एवं यशस्वी व्यक्तियों ने नाना अवसरों पर अपने मनोभावों को शब्दों में समेट कर गुरूचरणों में कई शब्दालंकार प्रस्तुत किये हैं और अपना सौभाग्य माना है।

वात्सल्य शिरोमणि : संत के जीवन का सबसे प्रभावी गुण होता है उसका अकृत्रिम वात्सल्य भाव, पूज्य गुरूवर को यह वात्सल्य की अमूल्य सम्पदा, गुरू परम्परा से विरासत में ही प्राप्त हुई है, वर्षायोग 2008 के उपरान्त उ.प्र. के आगरा नगर में पंचकल्याणक के अवसर पर आगरा समाज ने आपके वात्सल्य से प्रभावित होकर आपको **"वात्सल्य शिरोमणि"** के अलंकार से विभूषित किया।

श्रमण गौरव : पूज्य गुरूवर विमर्शसागर जी महाराज की अनुशासन के सुडौल सांचे में ढली निर्दोष श्रमण चर्या वर्तमान में श्रमण जगत को गौरवान्वित करती है, पूज्य श्री की आगमानुसारी चर्या से प्रभावित होकर एटा-2009 वर्षायोग में शाकाहार परिषद द्वारा आपको **"श्रमण गौरव"** की उपाधि से अलंकृत किया और अपना सौभाग्य बढ़ाया।

वात्सल्य सिन्धु : वात्सल्य और करूणा के दो पावन तटों के बीच प्रवाहित गुरूवर की जीवन मंदाकिनी जनमानस की सतह पर बिखरी घृणा,

बैर, कटुता की कलुषता को सहज ही धो डालती है। पूज्य श्री के इसी गुण आकर्षण से अनुग्रहीत हो, एटा में अखिल भारतीय कवि सम्मेलन के अवसर पर राजेश जैन गीतकार आदि कवि समूह ने गुरूवर को **''वात्सल्य सिन्धु''** का भाव वंदन अर्पित कर सौभाग्य माना।

आचार्य पुंगव : संत, पंथ और ग्रंथवाद की वैचारिक संकीर्णताओं से 'असम्पृक्त' पूज्य श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज की सिर्फ चर्या ही अनुकरणीय नहीं, अपितु उनका 'चतुरानुयोग' का निर्मल ज्ञान भी ज्येष्ठ है। ऐसे ज्ञान और चर्या में श्रेष्ठ संत के महिमावंत व्यक्तित्व से प्रभावित होकर जतारा जैन समाज ने पंचकल्याण्का 2012 के अवसर पर आपको **''आचार्य पुंगव''** की उपाधि से भूषित कर अपना मान बढ़ाया।

राष्ट्रयोगी : पूज्य गुरूवर का ''वैचारिक वैभव'' सिर्फ जैनों तक सीमित नहीं अपितु हर जाति का व्यक्ति उसे अपनी विरासत मानता है। अतः विजयनगर वर्षायोग में राष्ट्रवादी संस्था भारत विकास परिषद् द्वारा आयोजित दिव्य संस्कार प्रवचन माला में आपके राष्ट्रोन्नति से समृद्ध उपदेशों को सुनकर आपको **''राष्ट्रयोगी''** का अलंकार समर्पित किया।

सर्वोदयी संत : पूज्य आचार्यश्री की निर्भीक शैली जन मानस को सहज ही अपनी ओर आकर्षित कर लेती है तभी तो पूज्यवर के प्रवचनों में जैनों के साथ-साथ अजैन भी देशना को सुनकर आनंदित होते हैं, आपके उपदेशों में प्राणीमात्र के उदय की दिव्य चमक नजर आती है। तभी तो विजयनगर दिगम्बर जैन समाज ने 2012 वर्षायोग में आपको **''सर्वोदयी संत''** की उपाधि से नवाजा।

प्रज्ञामनीषी : श्रुताराधना के अनुपम आराधक-जिनेन्द्रवाणी के गहन प्रचारक, वाणी और कलम के अनूठे जादूगर पूज्य श्री की तीक्ष्ण प्रज्ञा और निर्मल ज्ञान से प्रभावित होकर, अखिल भारतीय आध्यात्मिक कवि सम्मेलन विजयनगर-2012 में कविगण एवं भारत विकास परिषद द्वारा आपको **''प्रज्ञामनीषी''** की उपाधि से भूषित कर मान बढ़ाया।

राष्ट्रहितैषी : उत्तर प्रदेश के एटा नगर में स्वामी विवेकानन्द की 150वीं जन्म जयन्ती के अवसर पर विश्व हिन्दू परिषद के तत्त्वावधान में आयोजित अखिल भारतीय युवा सम्मेलन में पूज्य गुरुदेव के राष्ट्रहित में समर्पित देशोन्नति परक अमूल्य चिंतन से प्रभावित होकर विश्व हिन्दू परिषद द्वारा आपको **'राष्ट्रहितैषी'** अलंकरण से अलंकृत किया गया।

आदर्श महाकवि : सम्प्रतिकाल में कुरल शैली का सैकड़ों विषयों को हृदयंगम करने वाला और अमर महाकाव्य 'जीवन है पानी की बूँद' के शब्द

शिल्पी, भजन, गजल, मुक्तक, कविता, नई कविता, पद्यानुवाद, सवैया आदि अनेक जटिल विद्याओं पर साधिकार कलम चलाने वाले परम पूज्य भावलिंग संत श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर जी महामुनिराज के अपूर्व काव्यात्मक अवदान से प्रेरित होकर, 14 नवम्बर 2016 को अखिल भारतीय आध्यात्मिक कवि सम्मेलन में, देश के ख्यातिलब्ध मूर्धन्य कवियों ने सुरेश 'पराग' के नेतृत्व में एवं पं. संकेत जैन जी के मार्गदर्शन में सकल जैन समाज देवेन्द्रनगर की गरिमामयी अनुमोदन के संत पूज्य श्री को **'आदर्श महाकवि'** का अलंकरण भेंट किया एवं सौभाग्य प्राप्त किया।

काव्य, प्रवचन, पाठ संग्रह :

1. हे वन्दनीय गुरुवर (काव्य)
2. गूँगी चीख (प्रवचन)
3. शंका की एक रात (प्रवचन)
4. मानतुंग के मोती
5. गीताञ्जलि (भजन)
6. विरागाञ्जलि (श्रमण पाठ संग्रह)
7. जीवन है पानी की बूँद (भाग 1)
8. जीवन है पानी की बूँद (भाग 2)
9. जीवन है पानी की बूँद (समग्र)
10. जीवन चलती हुई घड़ी (काव्य)
11. खूबसूरत लाइनें (काव्य)
12. समर्पण के स्वर (काव्य)
13. आईना (काव्य)
14. सोचता हूँ कभी-कभी (काव्य)
15. मेरा प्रेम स्वीकार करो (काव्य)
16 वाह क्या खूब कही (काव्य)
17. करलो गुरु गुणगान (काव्य)
18. आओ सीखें जिनस्तोत्र
19. जनवरी विमर्श
20. चटपटे प्रश्न-स्वादिष्ट उत्तर (पहेली)
21. जैन श्रावक और दीपावली पर्व
22. भरत जी घर में वैरागी
23. शब्द शब्द अमृत

गज़ल संग्रह

ज़ाहिद की ग़ज़लें

विधान :

आचार्य विरागसागर विधान
श्री भक्तामर विधान
श्री कल्याण मंदिर विधान
श्री श्रमण उपसर्ग निवारण विधान

चालीसा : गणधर चालीसा

टीका : योगसार प्राभृत (प्राकृत/हिन्दी)

लिपि : विमर्श लिपि, विमर्श अंक लिपि

भाषा : विमर्श एम्बिसा

पद्यानुवाद :

1. सुप्रभात स्तोत्र
2. महावीराष्टक स्तोत्र
3. लघु स्वयंभु स्तोत्र
4. भक्तामर स्तोत्र (त्रय पद्यानुवाद)
5. गोम्मटेस स्तुति
6. द्वात्रिंशतिका (सामायिक पाठ)
7. विषापहार स्तोत्र
8. एकीभाव स्तोत्र
9. पञ्चमहागुरुभक्ति
10. तीर्थंकर जिनस्तुति
11. गणधरवलय स्तोत्र
12. कल्याणमंदिर स्तोत्र
13. परमानंद स्तोत्र

बहुचर्चित भजन :

1. जीवन है पानी की बूँद
2. कर तू प्रभु का ध्यान
3. ऋण मुक्ति का वर दीजिये

प्रेरणा से प्रकाशन :

1. सिर्फ दो प्रवचन (आचार्य विरागसागरजी, सम्पादक-आचार्य विमर्शसागर जी)
2. हिन्दी साहित्य की सन्त परम्परा में आचार्य विरागसागर के कृतित्व का अनुशीलन (डॉ. लोकेश खरे)
3. समसामयिक - आचार विद्वत् संगोष्ठी (कोटा)
4. पुरुषार्थ सिद्धियुपाय - राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी (शिवपुरी)
5. प्रज्ञाशील महामनीषी

प्रेरणा से स्थापित :

आचार्य विरागसागर ग्रंथमाला

उद्देश्य : मूल जिनागम का संरक्षण प्रकाशन
प्रचार-प्रसार एवं लोकोपयोगी धार्मिक नैतिक साहित्य का निर्माण, प्रकाशन

विद्वत् संगोष्ठी :

1. समसामयिक - आचार विद्वत् संगोष्ठी (कोटा-2006)
2. पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय अनुशीलन राष्ट्रीय विद्वत् संगोष्ठी (शिवपुरी-2007)
3. जैन कर्म सिद्धांत राष्ट्रीय विद्वत संगोष्ठी (बड़ौत-2014)
4. जीवन है पानी की बूँद (महाकाव्य पर)
   राष्ट्रीय विद्वत संगोष्ठी (बड़ा मलहरा-2016)
5. जीवन है पानी की बूँद (महाकाव्य पर)
   राष्ट्रीय विद्वत संगोष्ठी (देवेन्द्र नगर-2016)
6. राष्ट्रीय विद्वत संगोष्ठी (जबलपुर-2017)

संस्कार यात्रा

ऐतिहासिक पूजन प्रशिक्षण शिविर : आचार्यश्री के सानिध्य एवं निर्देशन में आयोजित पूजन प्रशिक्षण शिविर एक ऐसी प्रयोगशाला है, जिसमें जैनधर्म के संस्कार एवं शिक्षा का प्रयोग करना सिखाया जाता है। यदि चेतनतीर्थ स्वरूप उपासक संस्कारित नहीं, तो अचेतनतीर्थ स्वरूप जिनमंदिरों का महत्व नहीं जाना जा सकता। आचार्यश्री जब अपने मधुर कंठ से शिविर का यथायोग्य संचालन करते हैं तब हर श्रावक भक्ति में ऐसा लीन हो जाता है कि 4-5 घंटे का भी पता नहीं चलता। आचार्यश्री के निर्देशन में आयोजित इस शिविर के माध्यम से आज हजारों लोग जैनत्व के संस्कारों से जुड़े हैं। अभी तक 16 पूजन शिविर आयोजित हो चुके हैं :

1. महरौनी (उ.प्र.)
2. वरायठा (म.प्र.)
3. अंकुर कॉलोनी, सागर (म.प्र.)
4. सतना (म.प्र.)
5. अशोकनगर (म.प्र.)
6. रामगंजमण्डी (राज.)
7. भानपुरा (म.प्र.)
8. सिंगोली (म.प्र.)
9. कोटा (राज.)
10. शिवपुरी (म.प्र.)
11. आगरा (उ.प्र.)
12. एटा (उ.प्र.)
13. डूंगरपुर (राज.)
14. अशोकनगर (म.प्र.)
15. विजयनगर (राज.)
16. भिण्ड (म.प्र.)
17. बड़ौत (उ.प्र.)
18. टीकमगढ़ (म.प्र.)

19. देवेन्द्रनगर (म.प्र.) 20. जबलपुर (म.प्र.)
21. छिंदवाड़ा (म.प्र.)

पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव :

1. नेमिनाथ पंचकल्याणक एवं गजरथ महोत्सव-2002 (रजवांस-सागर, म.प्र.)
2. आदिनाथ पंचकल्याणक एवं गजरथ महोत्सव-2003 (महरौनी, ललितपुर, उ.प्र.)
3. आदिनाथ पंचकल्याणक रथ महोत्सव-2004 (बूँदी-राज.)
4. आदिनाथ पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव-2007 (रामगंजमण्डी, राज.)
5. पार्श्वनाथ पंचकल्याणक रथोत्सव-2007 (कोटा (राज.)
6. आदिनाथ पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव-2008 (शिवपुरी, म.प्र.)
7. आदिनाथ पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव-2009 (आगरा, उ.प्र.)
8. आदिनाथ पंचकल्याणक गजरथ महोत्सव-2010 (एटा, उ.प्र.)
9. आदिनाथ पंचकल्याणक त्रय गजरथ महोत्सव-2012 (जतारा, म.प्र.)
10 आदिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव-2013 (चंदेरी, म.प्र.)
11. आदिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव-2015 (पृथ्वीपुर, म.प्र.)
12. आदिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव-2015 (टीकमगढ़, म.प्र.)
13. आदिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव-2015 (वैरवार, म.प्र.)
14. आदिनाथ पंचकल्याणक प्रतिष्ठा महोत्सव-2018 (धनौरा, म.प्र.)

चातुर्मास :

1.	मढ़ियाजी जबलपुर	-	1996
2.	भिण्ड (म.प्र.)	-	1997
3.	भिण्ड (म.प्र.)	-	1998
4.	भिण्ड (म.प्र.)	-	1999
5.	महरौनी (उ.प्र.)	-	2000
6.	अंकुर कॉलोनी (सागर)	-	2001
7.	सतना (म.प्र.)	-	2002
8.	अशोकनगर (म.प्र.)	-	2003
9.	रामगंजमण्डी (राज.)	-	2004
10.	सिंगोली (नीमच)	-	2005
11.	कोटा (राज.)	-	2006
12.	शिवपुरी (म.प्र.)	-	2007
13.	आगरा (उ.प्र.)	-	2008
14.	एटा (उ.प्र.)	-	2009
15.	डूंगरपुर (राज.)	-	2010

16.	अशोकनगर (म.प्र.)	–	2011
17.	विजयनगर (राज.)	–	2012
18.	भिण्ड (म.प्र.)	–	2013
19.	बड़ौत (उ.प्र.)	–	2014
20.	टीकमगढ़ (म.प्र.)	–	2015
21.	देवेन्द्रनगर (म.प्र.)	–	2016
22.	जबलपुर (म.प्र.)	–	2017
23.	छिंदवाड़ा (म.प्र.)		2018

वर्तमान संत संस्था में आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज एक ऐसे श्रेष्ठ संत हैं जिनके पास ज्ञान संस्कार की चर्या एवं चर्चा देखने-सुनने को मिलती हैं। कम-बोलना लेकिन काम का बोलना आचार्यश्री की अपनी विशिष्ट शैली है। प्रवचनों में सकारात्मक चिंतन को परोसने वाले हित-मित प्रियभाषी, जिनागम पंथ प्रवर्तक आचार्यश्री पंथ-संत-जातिवाद की भी खूब खबर लेते हैं। सच्चे संतत्व को प्रकाशित करने वाले **आचार्यश्री कहते हैं, पंथ-संत-जातिवाद को बढ़ावा देने वाले श्रमण एवं श्रावक जिनधर्म के विनाशक होंगे। आचार्यों की अपनी-अपनी आचार परम्परा से श्रावक साधुओं के प्रति अश्रद्धानी होंगे, साथ ही सामाजिक समरसता, एकता नष्ट होगी। सचमुच आचार्यश्री का चिन्तन भविष्य की व्याख्या कर रहा है।** आचार्यश्री का सरल-सौम्य व्यक्तित्व एवं पूर्वापर चिंतन ही आचार्यश्री की अलग पहिचान है। ऐसे युगचेता संत के चरणों में हम बारम्बार नमन करते हैं।

श्रमण विचिन्त्यसागर

(संघस्थ)

पुरुष कौन?

वदिता योऽथता श्रोता श्रेयसां वचसां नरः।
पुमान् स एव शेषस्तु शिल्पिकल्पित कायवत्।।

अर्थ—जो कल्याणकारी वचनों को कहता और सुनता है वही पुरुष अन्य पुरुष तो शिल्पी के द्वारा निर्मित प्रतीक के समान है।

पूज्य गुरुदेव से संबंधित अन्य साहित्य

जीवनी साहित्य :

1. राष्ट्रयोगी : लेखक – श्री सुरेश 'सरल' जबलपुर (म.प्र.)
2. आँगन की तुलसी : लेखक – प्राचार्य श्री निहाल चन्द जैन, बीना (म.प्र.)
3. जतारा का ध्रुवतारा : लेखक – श्री कपूर चंद जैन 'बंसल', जतारा (म.प्र.)
4. भावलिंगी संत (महाकाव्य) : लेखक – श्रमण विचिन्त्यसागर मुनि (संघस्थ)
5. विमर्श धाम (महाकाव्य) : लेखक – पं. संकेत जैन 'विवेक', देवेन्द्रनगर (म.प्र.)
6. सर्वोदयी संत (महाकाव्य) : लेखक – श्री ज्ञानचन्द जैन 'दाऊ', सागर (म.प्र.)
7. विमर्श महाभाष्य : लेखक – पं. संकेत जैन 'विवेक', देवेन्द्रनगर (म.प्र.)
8. विमर्श वाटिका : लेखक – श्री कपूर चंद जैन 'बंसल', जतारा (म.प्र.)
9. विमर्श भक्ति शतक : लेखिका – श्रीमती स्मृति जैन 'भारत', अशोक नगर (म.प्र.)
10. विमर्श शतक 1, 2 : लेखक – पं. ब्रजेन्द्र जैन, देवेन्द्र नगर (म.प्र.)
11. विमर्श वंदना : लेखक – कवि शशिकर 'खटका', राजस्थानी, विजयनगर (राज.)

विधान :

1. आचार्य विमर्शसागर विधान : लेखक – श्रमण विचिन्त्यसागर मुनि (संघस्थ)
2. संकट मोचन तारणहारे–गुरु विमर्श विधान :
   लेखक – पं. संकेत जैन 'विवेक' देवेन्द्र नगर (म.प्र.)

स्मारिकायें :

1. विमर्श वारिधि (विजयनगर चातुर्मास 2012, स्मारिका)
2. विमर्श प्रवाह (बड़ौत चातुर्मास 2014, स्मारिका)
3. विमर्श गीतिका (टीकमगढ़ चातुर्मास 2015, स्मारिका)
4. विमर्शानुभूति (देवेन्द्रनगर चातुर्मास 2016 स्मारिका)

मासिक पत्रिका :

विमर्श प्रवाह (मासिक)
प्रधान संपादक–डॉ. श्रेयांसकुमार जैन (बड़ौत)
संपादिका–डॉ. अल्पना जैन (ग्वालियर)
प्रबंध संपादक–डॉ. विश्वजीत जैन (आगरा)
संपादक–पं. सर्वेश शास्त्री

अभिषेक और पूजा

...एक वैज्ञानिक छानबीन

विश्व प्रसिद्ध वैज्ञानिक अल्बर्ट आइन्सटाइन के अनुसार "विज्ञान धर्म के बिना पंगु है और धर्म विज्ञान के बिना अन्धा है।" सौभाग्य से जैनधर्म के अनेक सिद्धान्त भी विज्ञान की कसौटी पर कसे गये हैं और सदैव खरे उतरे हैं।

आज का युवा जो विज्ञान एवं विलासिता के भौतिक वातावरण में बड़ा हुआ है, अन्धानुकरण न करके यथार्थ को जानने-मानने के लिए उत्सुक है। हर बात में वह प्रश्न एवं तर्क करता है। हाँ, युवा से मेरा अभिप्राय उस पूरे वर्ग से है जो स्वयं को नई पीढ़ी कहता है। इस समूह ने समय-समय पर कई सार्थक प्रश्न उठाए हैं। जैसे पूजा क्यों? अभिषेक क्यों? पूजा मन्दिर में ही क्यो? घर में क्यों नहीं? मन्दिरों के विशाल होने पर भी मूल गम्भारे गर्भगृह इतने छोटे क्यों? मूल गम्भारे में खिड़की क्यों नहीं होती? मूल गम्भारे में अँधेरा क्यों बनाये रखा जाता है।

इन प्रश्नों का वैज्ञानिक ढंग से उत्तर देने का प्रयास किया है श्री पराशक्ति महिला महाविद्यालय, कूरटालस, तमिलनाडु की शोध छात्राओं ने। इन दिनों मद्रास में आयोजित एक प्रदर्शनी में वैज्ञानिक तथ्यों के आधार पर यह सिद्ध करने का प्रयास किया गया कि धर्म में भी विज्ञान उतना ही सक्रिय है जितना किसी और क्षेत्र में। इन छात्राओं ने यह सिद्ध कर दिखाया है कि मन्दिरों की सारी क्रियाओं के पीछे वैज्ञानिक तथ्य हैं। हर क्रिया का तन, मन और वचन पर स्पष्ट और सीधा असर होता है। अपनी खोज से उन्होंने यह तय किया है कि हमारे मन्दिर शिक्षा, विज्ञान, कला, स्थापत्य एवं आकार- अभियान्त्रिकी के केन्द्र हैं, परम शान्ति एवं चरम आनन्द के अचूक स्रोत हैं।

आगम में गर्भगृह के निर्माण एवं आकार के विविध और अनेक परिणाम तथा शैलियाँ बतायी हैं। गर्भगृह में विराजित जिनेश्वर प्रभु की प्रतिमा एवं गर्भगृह के आकार एवं परिमाण में गहरा सम्बन्ध है। मूल गम्भारे गर्भगृह एवं मूल प्रतिमा के आकार अनुपात के विशेष सम्बन्ध से मूल गम्भारे की हवा का एक-एक अणु अधिकतम घूर्ण या आवर्तिता से कंपित होता हैं जैसे ही गम्भारे के बाहर मन्त्रोच्चार किया जाता है, गम्भारे के वायुकण/एयर मोलीक्यूल अधिकतम आवर्तिता/मेक्जीमम एम्प्लीट्यूड से कंपित हो उठते हैं, जिससे इंटेंस साउण्ड/तीव्र नाद पैदा होता है। इस तथ्य को सिद्ध करने के लिए मूल गंभारे

के बाहर रबर के एक टुकड़े पर चोट खाये काँपते ट्यूनिंग फोर्क को रखने पर स्वत: ही गंभारे से ॐ शब्द का सुमधुर नाद गहनता से उत्पन्न होता है।

यह सिद्ध करने के लिए मूल गम्भारे में ऋण आयनों की अधिकता होती है, आसवन विधि/कंडेन्सर मेथड प्रयोग में ली जाती है। इस विधि के द्वारा शोध-छात्राओं ने यह सिद्ध किया है कि मूल गम्भारा ऊर्जा का अनवरत स्रोत होता है। इन शोध छात्राओं ने एक मूर्ति की अभिषेक के पहले एवं अभिषेक के बाद विद्युत प्रतिरोधकता रेजिस्टेंस एवं विद्युत चालक क्षमता कंडेन्सिटी मापी। उन्हें लगा कि अभिषेक के पहले प्रतिरोध अधिक होता है और अभिषेक के बाद प्रतिरोध कम हो जाता है।

अभिषेक पूजा या मन्त्रोच्चार से ऋण आयन अर्थात् निगेटिव आयन में वृद्धि होती है। निगेटिव आयन का आवेश प्राणदायक वायु आक्सीजन को हीमोग्लोबिन से मिलाने में सहायक होता है। हीमोग्लोबिन मानव रुधिर का वह तत्व है, जिसमें ऑक्सीजन घुलकर शरीर के प्रत्येक भाग में पहुँचती है। यह सिद्ध किया जा चुका है कि जहाँ 'ऋण आयन' नहीं होते हैं, वहाँ मृत्यु तक हो सकती है। 'ऋण आयनों' वाले ये स्थान स्वास्थ्यवर्द्धक होते हैं। ऋण आयनों की अधिकता समुद्री किनारों, झरनों के करीब या पहाड़ी स्थानों पर पायी जाती है। हमारे मन्दिर इसलिए ऐसे रमणीय और सार्थक स्थानों पर स्थित हैं। आज के वातावरण में जबकि हर जगह विद्युत, प्रदूषण 'इलेक्ट्रीकल पोल्यूशन' ज्यादा है, इन 'ऋण आयनों' की कमी हरदम महसूस की जाती है, ये ही मूल्यवान 'ऋण आयन' मूल गंभारे में विशेष प्रकार के पदार्थों द्वारा मूर्ति का अभिषेक करने पर उत्पन्न होते हैं। चन्दन आदि वातावरण में नमी बनाये रखने में सहायता करते हैं।

जैसे ही मूल गम्भारे के बाहर मन्त्रोच्चार किया जाता है, मूल गम्भारे में उपस्थित हवा में अधिकतम ऊर्जा के साथ कम्पन्न शुरू हो जाता है। मन्त्रोच्चार के पश्चात् आरती, चँवर इत्यादि का प्रयोग होता है। आरती चँवर इत्यादि से गर्भ गृह की हवा, जो ऊर्जा से आवेशित होती है, प्रार्थना करने वालों की तरफ आती है। जिससे श्वांस लेने से ऑक्सीजन को हीमोग्लोबिन में प्रविष्ट होने में मदद मिलती है। इस प्रकार इन शोध छात्राओं में निष्कर्ष लिए हैं कि—

1. गर्भगृह आयतन-अनुनादक/वॉल्यूम रीजोनेटर हैं, अत: ॐ नाद की उत्तपत्ति में सहायक हैं।

2. मूर्ति ऊर्जा भंडार/एनर्जी रिजर्वायर का कार्य करती है।

3. गर्भगृह की हवा ऊर्जा के स्थानांतरण (ट्राँसफर ऑफ इनर्जी) में

माध्यम का कार्य करती है।

यही कारण है कि मंदिर में पूजा, अर्चना, भक्ति इत्यादि महत्त्वपूर्ण माने गए हैं, क्योंकि मंदिर में उत्पन्न ऊर्जा मनुष्य को सुख-शान्ति एवं आत्मोन्नति की ओर बढ़ाती है। विशेष प्रकार से बनाये गये गर्भगृह में पूजा एवं अर्चना से आध्यात्मिक शक्ति की उत्प्रेरणा होती है। इन्हीं कारणों से गम्भारे में खिड़की नहीं रखी जाती ताकि ऊर्जा सिर्फ मूल गंभारे के मुख्य दरवाजे से प्रार्थी पर सीधा प्रहार कर सके एवं गर्भगृह में बिजली के बल्ब इत्यादि द्वारा रोशनी नहीं की जाती, क्योंकि उससे 'ऋण आयन' समाप्त हो जाते हैं। इसी कारण मन्दिर में एवं मूल गम्भारे में सिर्फ घी के दीपक का प्रकाश किया जाता है।

इस तरह सिद्ध होता है कि हमारे पूर्वजों द्वारा निरूपित/निर्धारित विधि-विधान बहुत गहरा अर्थ रखते हैं। हमारी संस्कृति न केवल वैज्ञानिक सिद्धान्तों की जन्मदात्री है, बल्कि आत्मोन्नति की अपूर्व सीढ़ी भी है। रूसी वैज्ञानिक कामेनिएव एवं अमरीकी वैज्ञानिक डॉ. रूडाल्फ किर ने बहुत से प्रयोग करके यह सिद्ध किया है कि मन्त्र में अपूर्व शक्ति है। एक रूसी वैज्ञानिक सेम्योनोव डी. किरलियान ने ऐसी हाई फ्रीक्वेन्सी विकसित की है जिससे यह सिद्ध होता है कि मन्दिर की माला एवं घर की माला में अत्यधिक फर्क होता है। 'किरलियान फोटोग्राफी' जो इन दिनों शोध कार्य में सर्वत्र प्रयुक्त है, ''किरलियान एफेक्ट'' बताने में सहायक सिद्ध हो रही है। अगर किसी के हाथ का चित्र 'किरलियान फोटोग्राफी' से लिया जाए तो न सिर्फ हाथ का फोटो ही आएगा, साथ ही साथ हाथ के आस-पास जो किरणें हैं, उनका भी चित्र आएगा। किरलियान का कहना है कि बीमारी के आने के छह महीने पहले ही बता दिया जा सकेगा कि आदमी बीमार होने वाला है। इस प्रकार मन्त्र, पूजा एवं आराधना हृदय परिवर्तन की एक सम्पूर्ण प्रक्रिया है।

भारतीय संस्कृति आज के विश्व में शान्ति प्रदान करने वाली संस्कृति है और इसीलिए महर्षि अरविन्द को कहना पड़ा कि ''भारत भूमि केवल जमीन का टुकड़ा नहीं है, वह एक अपूर्व आत्मिक शक्ति है।''

मन्दिर, पूजा, मन्त्रोच्चार सभी आध्यात्मिक शान्ति एवं आत्मोत्थान के अपूर्व स्रोत हैं। अन्धानुकरण न कर यदि हम इन साधनों के गूढ़ रहस्यों को समझने की कोशिश करें तो शायद प्रभु परमेश्वर के इस विराट प्रेम भरे जगत से बहुत पाया जा सकता है एवं जीवन को अलौकिक बनाया जा सकता है

प्रस्तुति—बी.टी. बजावत

(तीर्थंकर से साभार)

जानें क्या है जिनागम पंथ?

-आचार्य विमर्शसागर मुनि

'जिनागम पंथ' अनादि-अनिधन, विश्व मैत्री, प्रेम, एकता का परम पावन संदेश है, जो तीर्थंकर भगवंत, केवली अरिहन्त, गणधर संत, आचार्य उपाध्याय निर्ग्रंथ के मुख से अतीतकाल में कहा गया, वर्तमान में कहा जा रहा है और भविष्यकाल में कहा जायेगा।

अहो ! तीर्थंकर जिन की वाणी यानि जिनवाणी, जिनश्रुत, जिनागम, और इसमें वर्णित आत्महितकारी पंथ, मार्ग। यही है जिनागम पंथ।

अहो ! जिनागम में कथित पंथ अर्थात् मार्ग, यही सच्चा था सच्चा है और सच्चा रहेगा। तीर्थंकर सर्वज्ञ जिन की वाणी ही जिनागम है। और जिनागम में कथित श्रमणश्रावकधर्म, यह पंथ अर्थात् मार्ग है। जो श्रमण श्रावक धर्म के मार्ग पर चल रहा है वह जिनागम पंथ का पथिक 'जिनागम पंथी' है।

सचमुच जिनागम पंथ शाश्वत था, शाश्वत है, शाश्वत रहेगा। जो जिनागम पंथ का पथिक है वह सम्यग्दृष्टि, श्रावक अथवा श्रमण संज्ञा को प्राप्त जिनागम पंथी है। जो जिनागम पंथ की श्रद्धा से रहित है वह मिथ्यादृष्टि है।

अहो ! विदेह क्षेत्र में विराजित, विद्यमान बीस तीर्थंकरों के मुख से गणधरादि परमेष्ठी भगवंतों के द्वारा आज भी जिनवाणी, जिनश्रुत, जिनागम प्रगट हो रहा है।

धन्य हैं वे भव्य जीव जो जिनागम कथित समीचीन पंथ अर्थात जिनागम पंथ को स्वीकार कर अनादि मोह, रागद्वेष की परम्परा का विच्छेदन कर आत्मकल्याण कर रहे हैं। अहो ! जिनागम पंथ के अलावा अन्य कोई कल्याण का मार्ग नहीं है। जिनागम पंथ के अलावा अन्य पंथ उन्मार्ग हैं, अकल्याणकारी हैं।

जयदु जिणागमपंथो, रागोदोसो य णासगो सेयो।
पंथो तेरह बीसो, रागादि वड्ढिओ असेयो।।

जो रागद्वेष का नाश करने वाला है, कल्याणकारी है, ऐसा 'जिनागम पंथ जयवंत हो'। इसके अलावा तेरहपंथ, बीसपंथ आदि पंथ, रागद्वेष को बढ़ाने

वाला है, अकल्याणकारी है।

अहो ! कालदोष के कारण कतिपय विद्वानों ने तीर्थंकर जिनदेव के मुख से भाषित अर्थात सर्वांग से खिरनेवाली दिव्यध्वनि में कथित जिनागम पंथ से बाह्य तेरहपंथ, बीसपंथ, शुद्ध तेरह पंथ, साढ़े सोलह पंथ आदि नाना पंथों की संज्ञाएँ रखकर परस्पर रागद्वेष को जन्म दिया है। कुछ विद्वान् एवं श्रमण संज्ञा से भूषित जीवों ने भी ख्याति-पूजा-लाभ के लिए नयेनये पंथ गढ़कर भव्य जीवों का महान अहित किया है।

अहो ! अज्ञानता, आज ये जीव इन नाना संज्ञाओं से पंथों का पोषणकर जिनागम पंथ से दूर खड़े हो गये हैं। और कल्पित पंथों का पोषण कर अपना आत्म पतन ही कर रहे हैं। तेरह-बीस आदि संज्ञाएँ जिनेन्द्र देव की वाणी से बाह्य हैं। ये जिनागम पंथ से बाह्य पंथ ही वर्तमान में रागद्वेष का कारण बने हुये हैं। चारों तरफ समाज में विघटन, मंदिरों में खींचतान, इन कल्पित तेरह-बीस आदि पंथों की ही देन है। जिनागम पंथ सभी को एक सूत्र में बाँधकर मैत्री-प्रेम-वात्सल्य का संदेश देता है।

अहो ! आज भी यदि स्व कल्पित पंथों का दुराग्रह छोड़कर सब जीव जिनेन्द्र देव की वाणी यानि जिनवाणी जिनागम में श्रद्धा रखें, और जिनागम वर्णित पंथ यानि 'जिनागम पंथ' को सच्ची श्रद्धा से स्वीकारें, तो सर्व समाज में आज भी एकता का सूत्रपात हो सकता है। आपस के राग-द्वेष मिट सकते हैं और जिनशासन गौरवान्वित हो सकता है।

'जयदु जिणागम पंथो।'

'जिनागम पंथ जयवंत हो।'

कहो गर्व से हम-जिनागम पंथी है

सच्चे जैन का एक ही पंथ-जिनागम पंथ

भावलिंगी संत का उद्घोष जिनागम पंथ का

अनुक्रमणिका

प्रथम खण्ड

द्वितीय खण्ड

तृतीय खण्ड

चतुर्थ खण्ड

पंचम खण्ड

सच्चे जैन का एक ही पंथ-जिनागम पंथ

जयदु जिणगम पंथो

प्रथम खण्ड

अनादि-अनिधन

जिनागम पंथ जयवंत हो!

णमोकार-महामन्त्र

णमो अरिहंताणं

णमो सिद्धाणं

णमो आयरियाणं

णमो उवज्झायाणं

णमो लोए सव्व साहूणं।

एसो पंच णमोयारो, सव्व पावप्पणासणो।

मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होई मंगलम्॥

चत्तारि मंगलं—अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं।

चत्तारि लोगुत्तमा—अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो।

चत्तारि सरणं पव्वज्जामि—अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

विमस्स अट्ठगं

(डॉ. उदयचन्द्र जैन कृत)

बधं पबंभ अदि णंद विराग मुत्तिं
तित्थेस णायग जिणं सयलं च तित्थं।
तच्चं अणंत सुविस्स विमस्स णंदं
णम्मेमि रट्ठिग सुजोगि विमस्स सूरिं।।1।।

अप्पं विसुद्ध परिणाम विमस्स णीरं।
णीरेज्ज जीवण जलं बहुमुल्ल खीरं।
चक्खेदि सच्छ परमप्प रसं च णिच्चं।
णम्मेमि रट्ठिग सुजोगि विमस्स सूरिं।।2।।

सारं च सार समयं समयं च सारं
पत्तेज्ज सो णियमसार पहुत्त धीरं।
णिम्मल्ल मल्ल मदिमल्ल सुदं च सुत्तं।
णम्मेमि रट्ठिग सुजोगि विमस्स सूरिं।।3।।

रम्माहिरम्म कवि कम्म पहाण कव्वं।
गीएज्ज गीद जण खेत्त सु विज्ज विज्जे।
मज्झप्पदेस अणुसिक्खण साल साले
णम्मेमि रट्ठिग सुजोगि विमस्स सूरिं।।4।।

आयार पूद सुविराग विराग सूरिं
णाणं च दंसण चरित्त तवं च णीरं।
णेदूणणिच्च रमदे हु विमस्स विमस्स छंदं।
णम्मेमि रट्ठिग सुजोगि विमस्स सूरिं।।5।।

धुव्वो हु तारग जतार सुणंदणो सो।
सिप्पी इमो विविह कब्ब कलंस चंदो।
चारित्त सम्मग रही दु विमस्स सीलो।
णम्मेमि रट्ठिग सुजोगि विमस्स सूरिं।।6।।

संपुण्ण सारद बई सुद आगमम्हि।
आरूढ़ हंस समणाइरियो विमस्सो।
लिप्पिं सिजेदि लिवि बंह विमस्स णामं
णम्मेमि रट्ठिग सुजोगि विमस्स सूरिं।।7।।

सामाण्ण धम्म अणुपालिद भावलिंगी।
झाणे तवे समयसार समे णिमग्गो।
मग्गटपभावण गुणी सुद-सेवि-साधुं।
णम्मेमि रट्ठिग सुजोगि विमस्स सूरिं।।8।।

विमस्स उदयो चंदो, विमस्से सम संतए।
दंसेदि सावगाणं च, वाए वागेसरी समे।।

जीवन है पानी की बूँद

(रचयिता–आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज)

जीवन है पानी की बूँद कब मिट जाए रे–ऽऽ
होनी–अनहोनी, हो–हो–2 कब क्या घट जाए रे–ऽऽ

साथ निभायेगा बेटा, सोच रहा लेटा–लेटा
हाय बुढ़ापा आएगा, पास न आएगा बेटा
ख्वाबों में तू क्यों, हो–हो–2 आनन्द मनाये रे–ऽऽ

अर्द्धमृतक समवृद्धापन, झुकी कमर सिकुड़न–सिकुड़न
गोदी में पोता–पोती, खोज रहा बचपन यौवन
बीते जीवन के, हो–हो–2 तू गीत सुनाये रे–ऽऽ

हाथों में लकड़ी थामी, चाल हो गई मस्तानी
यम के घर खुद जाने की, जैसे मन में हो ठानी
बेटा बहु सोचें, हो–हो–2 डोकरो कब मर जाये रे–ऽऽ

चारपाई पर लेटा है, पास न बेटी–बेटा है
चिल्लाता है पानी दो, कोई न पानी देता है
भूखा प्यासा ही, हो–हो–2 इक दिन मर जाये रे–ऽऽ

जीवन बीता अरहट में, पुण्य–पाप की करवट में
चढ़कर अर्थी पर जाये, अन्त समय भी मरघट में
तेरा ही बेटा, हो–हो–2 तेरा कफन सजाये रे–ऽऽ

सिर पर जिसे बिठाया है, गोदी में भी खिलाया है
लाड़ प्यार से पाला है, सुख की नींद सुलाया है
तेरा ही बेटा, हो–हो–2 तुझे आग लगाये रे–ऽऽ

जिसके लिए कमाता है, जीवन साथी बताता है
जिसकी चिन्ता कर करके, अपना चैन गँवाता है
देहरी से बाहर, हो–हो–2 वो साथ न जाये रे–ऽऽ

कर तू प्रभु का ध्यान

(रचयिता-आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज)

कर तू प्रभु का ध्यान-बाबा, कर तू प्रभु का ध्यान।
निज घट में भगवान-बाबा, निज घट में भगवान॥
काँटों में भी जीवन तेरा, फूलों सा खिल जाएगा
खोज रहा है जिसको तू वह, पल भर में मिल जायेगा
खुद को तू पहिचान-बाबा, खुद को तू पहिचान॥1॥
धन-वैभव यह महल-खजाना, कुछ भी साथ न जाएगा
सुबह खिला जो फूल बाग में, साँझ समय मुरझायेगा
कर ले धर्मध्यान-बाबा, कर ले धर्मध्यान॥2॥
कभी किसी का दिल दुःख जाये, ऐसे बोल कभी मत बोल
घावों पर मल्हम बन जाएँ, ऐसे बोल बड़े अनमोल
कहलाता यह ज्ञान-बाबा, कहलाता यह ज्ञान॥3॥
माता-पिता, बड़ों का आदर, धर्ममार्ग पर चलो सदा
गुरुजन की नित सेवा करना, श्रावक का कर्त्तव्य कहा
पाओगे सम्मान-बाबा, पाओगे सम्मान॥4॥
हिंसा, झूठ, कुशील, परिग्रह, चोरी यह मत पाप करो
पाप विनाशक, धर्म प्रकाशक, णमोकार का जाप करो
हो सम्यक् श्रद्धान- बाबा, हो सम्यक् श्रद्धान॥5॥
राग-द्वेष भावों के कारण, भवसागर में डूब रहा
गँवा रहा भोगों में जीवन, मन फिर भी न ऊब रहा
क्यों बनता नादान-बाबा, क्यों बनता नादान॥6॥
जिसको अपना कहा आज तक, हुआ कभी न वह अपना
जिसकी खातिर जिया आज तक, निकला वह सुंदर सपना
क्यों तू करे गुमान-बाबा, क्यों तू करे गुमान॥7॥
मेंढक ने प्रभु ध्यान किया जब, मर कर देव हुआ तत्काल
समवसरण में प्रभु को ध्याया, जीवन उसका हुआ निहाल
मिट जाये अज्ञान-बाबा, मिट जाए अज्ञान॥8॥

ऋण मुक्ति का वर दीजिये

रचयिता : श्रमणाचार्य विमर्शसागर

गुरुदेव मेरे आप बस इतनी कृपा कर दीजिए।
कल्याण अपना कर सकूँ, वरदान इतना दीजिए॥

सोचूं सदा अपना सुहित नहिं काम क्रोध विकार हो
हे नाथ ! गुरु आदेश का पालन सदा स्वीकार हो
सिर पर मेरे आशीष का शुभ हाथ प्रभु धर दीजिए। गुरुदेव.....

दृढ़ शील संयम व्रत धरूँ नित ब्रह्मचर्य लखूँ सदा
सीता, सुदर्शन सम बनूँ निज आत्मसौख्य चखूँ सदा
माता सुता बहिना पिता दृष्टि विमल कर दीजिए। गुरुदेव.....

सच्चा समर्पण भाव हो नहिं स्वार्थ की दुर्गन्ध हो
विश्वासघात ना हम करें हर श्वांस में सौगंध हो
हे नाथ ! गुरु विश्वास की डोरी अमर कर दीजिए। गुरुदेव.....

जागे न मन में वासना मन में कषायैं न जगें
हो वात्सल्य हृदय सदा कर्त्तव्य से न कभी डिगें
गुरुभक्ति की सरिता बहे निर्मल हृदय कर दीजिए। गुरुदेव.....

भावों में निश्छलता रहे छल की रहे न भावना
गुरु पादमूल शरण मिले करते हैं हम नित कामना
जिनधर्म जिन आज्ञा सुगुरु सेवा का अवसर दीजिए। गुरुदेव.....

उपकार जो मुझ पर किये गुरुवर भुला न पायेंगे
जब तक है तन में श्वांस हम उपकार गुरु के गायेंगे
हम शिष्य हैं गुरु के ऋणी ऋणमुक्ति का वर दीजिए। गुरुदेव.....

सम्यक्त्व ज्ञान चरित्र से सुरभित रहे मम साधना
आचार की मर्यादा ही हे नाथ ! हो आराधना
स्वर-स्वर समाधिभाव का चिंतन मुखर कर दीजिए। गुरुदेव.....

एक सुखद अनुभूतियों का एहसास-माँ'

रचयिता : श्रमणाचार्य विमर्शसागर

बेटा हो दुःख पीड़ा में, माँ बन जाती दीवार।
माँ के प्यार सा इस दुनियाँ में नहीं किसी का प्यार
ओ-ऽ माँ, प्यारी माँ-ऽऽ-ऽ

माँ की गोदी में बेटा जब चैन से सोता है।
बेटा जैसा और किसी का पुण्य न होता है।
किलकारी भर भरकर माँ का करता है दीदार
माँ के प्यार सा.....

बेटा जब जब रोता है, माँ लोरी गाती है।
भूखी प्यासी रहकर भी माँ, दूध पिलाती है।
चंदा सूरज, अश्रु बहाते, पाने माँ का प्यार।
माँ के प्यार सा.....

कोठी-बँगला रुपया पैसा, सब ऐशो-आराम।
माँ बिन सूना घर का आँगन, माँ को करो प्रणाम।
माँ ही घर की तुलसी है, रौनक, घर का शृंगार।
माँ के प्यार सा.....

जीवन-संगिनी पाकर माँ का प्यार भुलायेगा।
घर में दीवाली होगी पर खुशी न पायेगा।
माँ ही घर की दीवाली, होली, घर का त्यौहार।
माँ के प्यार सा.....

अपनी खुशियाँ कर न्यौछावर, देती है खुशियाँ।
बेटा समझे, न समझे, समझे न यह दुनियाँ।
माँ चलती काँटों पर, देती फूलों का उपहार।
माँ के प्यार सा.....

दुनिया छूट भी जाये, माँ का कभी न छूटे साथ।
माँ ने पकड़ा हाथ हमारा, पकड़ो माँ का हाथ।
सब तीरथ माँ चरणों में, बन जाओ श्रवण कुमार।
माँ के प्यार सा.....

राम, कृष्ण, महावीर ने माँ का मान बढ़ाया है।
जाँ देकर आजाद भगत ने, माँ को पाया है।
सदा चिरायु, सुखी रहो, भारत माँ करे पुकार।
माँ के प्यार सा.....

श्री शान्तिनाथ कीर्तन

रचियता : श्रमणाचार्य विमर्शसागर जी महाराज

जय हो, जय हो, जय हो, जय हो, जय हो, भगवन्-2
जय हो, जय हो, जय हो, जय हो, शान्ति भगवन्।
हम आये हैं-द्वार तुम्हारे-2,
दे दो प्रभु जी, हमको सहारे-2
शान्तिनाथ भगवन्-भगवन्-भगवन्ऽऽ
जय हो...........

छवि वीतरागी-प्यारी प्यारी लागे-2
दरश जो पाया-धन्य भाग जागे-2
चरणों करुँ नमन-नमन-नमनऽऽ
जय हो...........

सर्वज्ञ स्वामी-शरण में आया-2,
कहीं न मिला जो-वह सुख पाया-2
हर्षित हुए नयन-नयन-नयनऽऽ
जय हो...........

हित उपदेशी-आप कहाते-2
हम गुण गाने - भक्त बन जाते-2
छोड़ूँ न अब चरण-चरण-चरण
जय हो...........

अहार जी के-बाबा कहाते-2
यक्ष यक्षिणी भी-सिर को नवाते-2
झुकते हैं मुनिगण-मुनिगण-मुनिगणऽऽ
जय हो...........

दुखिया हो कोई-द्वार पे आये-2
हँसता हुआ ही-द्वार से जाये-2
श्रद्धा हो पावन-पावन-पावनऽऽ
जय हो, जय हो, जय हो।

दर्शन करने की विधि

जैनदर्शन में भगवान् का दर्शन करने का मतलब केवल देखना ही नहीं अपितु समीचीन तरीके से देखना है। जिस मुद्रा में भगवान् बैठे हैं, क्या इस तरीके से बैठने पर मन शान्त होने लगता है? नाशाग्र दृष्टि से मन पर क्या असर पड़ता है? हिलने डुलने से क्या मन अशान्त हो जाता है? आदि। जब भगवान् की प्रतिमा को पाँच मिनिट तक एकटक पलक न झपकाते हुए शान्त मन से देखते हैं और इन तथ्यों को अन्तरंग से प्रस्फुटित करते हैं तो यहीं से सम्यग्दर्शन होता है ध्यान रहे दर्शन तर्क व पक्षपात, हठाग्रह, राग-द्वेष से रहित होना चाहिए तो ऐसा दर्शन व तर्क ही सम्यग्ज्ञान होता है, ऐसा दर्शन ही वास्तविक दर्शन है।

दर्शन करने की आध्यात्मिक विधि

जो आत्मा के गुणों की आधीनता से जिये या जो आत्मा को ही अपना करके अपने आप में ही अपने में स्वीकार करके अपने आप में ही लीन रहे वह अध्यात्म है। भगवान ही प्रतिमा को एकटक निहारते हुए प्रतिमा में प्रतिमावान् की आध्यात्मिकता का अध्ययन करें तथा यह देखें कि प्रतिमावान् इस अवस्था में बैठने के लिए क्यों तैयार हुआ? इसका रहस्य क्या है? यदि हम चाहें तो इस तरीके से बैठ सकते हैं कि नहीं। हम नहीं बैठते तो इसका कारण क्या है? क्या मेरे अन्दर भी ऐसा आनन्द भरा हुआ पड़ा है? क्या हम भी इसे प्रकट कर सकते हैं?

हे प्रभु! आपने अपनी आत्मा को मन से हटा लिया इसलिए आप निर्विकल्प अवस्था में आराम से बैठे हुए हो और हम मन से जुड़े होने के कारण विकल्पों से घिरे हुए हैं। निश्चय से हे प्रभु! आप जैसे मुझमें भी राग-द्वेष-मोह नहीं है, मैं भी निर्विकल्प हूँ, लेकिन

व्यवहार से ये सब प्रकट हो रहे हैं। योग-भोग-परिभोग आदि मेरे नहीं हैं, न ही मैं उनका हूँ। अब मैं भी भगवन् आप जैसा पुरुषार्थ करके आप जैसा रूप बनाने का प्रयत्न करुँगा, आप जैसे ही बैठकर शांतमयी बनूँगा, यह आध्यात्मिक दर्शन है।

दर्शन करने की मनोवैज्ञानिक विधि

अमेरिकन् वैज्ञानिकों के अनुसार पुरुष के मस्तिष्क में सामान्यत: 23 अरब और स्त्रियों के मस्तिष्क में 19 अरब कोशिकाएँ होती हैं, ये कोशिकाएँ निर्मल परिणामों से प्रज्ज्वलित होती हैं और वासनिक व अहं के परिणामों से तथा विषय-कषायों के परिणामों से खराब हो जाती हैं यदि ये ही पूरे मस्तिष्क की कोशिकाएँ विशेष पुरुषार्थ के द्वारा पूर्णत: प्रज्जवलित हो जाएँ तो केवलज्ञान प्राप्त हो जाता है, इसे ही हम सभी भगवत्ता कहते हैं, ईश्वरता कहते हैं। इस भगवत्ता की नींव दर्शन की भूमि पर रखी जाती है जैसे ही हम निर्मल परिणाम दर्शन में करते हैं अथवा जैसे ही सभी विषय कषायों को तिलांजलि देकर हम शान्त अवस्था में आते हैं वैसे ही मस्तिष्क की कोशिकाएँ प्रज्ज्वलित होने लगती हैं और ज्ञान बढ़ने लगता है, ज्ञान बढ़ते ही चारित्र प्रस्फुटित होता है जो मोक्ष तक पहुँचाता है।

दर्शन करने की शास्त्रोक्त विधि

यद्यपि शास्त्रों में दर्शन करने का कथन सामान्य है। फिर भी गुरुओं के मुखारविन्द से जो सुना है वह इस प्रकार है। सुबह ब्रह्ममुहूर्त (सूर्योदय से 24 मिनिट पूर्व और 24 मिनिट बाद) में उठकर शुद्धि करके चिन्तनादि जाप करें फिर थाली में द्रव्य लेकर शुद्ध वस्त्र

पहिनकर मंदिर जी की ओर नीचे देखते हुए मौन से अन्तरंग में स्तुति पढ़ते हुए आएँ, वहाँ प्रासुक जल से हाथ पैर धोएँ तत्पश्चात् निःसही निःसही निःसही कहते हुए मन्दिर जी में प्रवेश करें, सर्वप्रथम तीन प्रदक्षिणा दें तत्पश्चात् एकटक भगवान् को देखते रहें फिर "उदक-चंदन" आदि अर्घ्य बोलकर पाँच ढेरी से अर्घ्य चढ़ायें फिर कोई स्तुति पढ़ें। तत्पश्चात् गवासन् से, अष्टांग या पंचांग नमस्कार करें तत्पश्चात् कोई स्तुति पढ़ें और स्वाध्याय करें।

ध्यान देने योग्य बातें

1. यदि कोई दर्शनार्थी या पुजारी दर्शन या पूजा कर रहा हो तो उसके आगे से न निकलें।

2. गन्धोदक एक बार उँगली से लेकर लगाने के बाद दुबारा लेवें तो हाथ धोकर लेवें या एक बार में इतना ले लें कि दुबारा न लेना पड़े।

3. गन्धोदक आँख, मस्तिष्क, सिर, छाती, आदि नाभि से ऊपर उत्तमागों पर लगाना चाहिए।

4. मन्दिर एक पवित्र स्थान है, यहाँ पर घर-दुकान या अन्य सांसारिक चर्चाएँ नहीं करना चाहिए।

5. मन्दिर में शृंगार करके अपवित्र व फटे वस्त्र पहिनकर तथा अपवित्र वस्तु लगाकर न आयें।

6. देव-शास्त्र-गुरु को जब भी नमस्कार करें तो महिलाएँ गवासन से व पुरुष गवासन या पंचांग से नमस्कार करें।

7. साधना के अभ्यास हेतु माह में दो उपवास करें। चार दिन अन्तराय का पालन करते हुए आहार लें, चार दिन नमक न लें व दो दिन सपरिवार पूजन व आरती करें।

8. एक माह में चार दिन जमीन पर बिना तकिए के सोएँ।
9. माह में कम से कम 15 दिन व पर्वों में सभी दिन ब्रह्मचर्य का पालन करें।
10. एक वर्ष में किसी एक तीर्थ की व साधु संघ की वन्दना अवश्य करें।

पूजन में ध्यान देने योग्य बातें

1. पूजन में आकुलता नहीं होनी चाहिए। आकुलता सहित पाँच पूजन करने से अनाकुलता की एक पूजा ज्यादा श्रेष्ठ होती है।

2. अशुद्ध वस्त्रों में अष्ट दरब से पूजन नहीं करना चाहिए।

3. पूजन करते समय यदि कोई विपरीत स्थिति भी आ जाए तो भी मौन रहना चाहिए।

4. धुली द्रव्य से पूजन करने के फल से व्यक्ति राजाओं के यहाँ जन्म लेता है, लेकिन बिना धुली द्रव्य से पूजन करने के फल से दासी-दास (नौकर) के यहाँ जन्म मिलता है।

5. पूजन व अभिषेक हमेशा सिर ढककर करना चाहिए तथा पूजन में द्रव्य हमेशा दोनों हाथों से चढ़ाना तथा अभिषेक का कलश भी दोनों हाथों से पकड़ना चाहिए।

6. पूजन के समय में इधर-उधर कहीं नहीं जाना चाहिए।

7. पूजन करते समय दायीं ओर दीपक रखें तथा बायीं और धूपघट रखें। दीपक के अभाव में कपूर से आरती करके दीप चढ़ाएँ।

8. भगवान का अभिषेक व पूजन करनेवाला व्यक्ति सप्तव्यसन का त्यागी व अष्टमूलगुणधारी होना चाहिए जो रात्रि भोजन तथा नशीली वस्तु का सेवन नहीं करता हो तथा यज्ञोपवीत पहनने वाला हो।

9. अभिषेक करने के बाद प्रतिमा जी को सूखे वस्त्र से दो मिनिट तक अच्छे से पोंछना चाहिए जिससे प्रतिमा में चमक बनी रहती है व जल कण साफ हो जाते हैं।

10. अभिषेक करते समय प्रतिमा नाभि से ऊपर होना चाहिए।

11. अभिषेक का जल गर्म (प्रासुक) होना चाहिए।

12. अभिषेक, अभिषेक मन्त्र बोलते हुए करना चाहिए, मौन नहीं।

13. षट् कर्तव्यों को प्रतिदिन करनेवाला व्यक्ति ही सम्यग्दृष्टि हो सकता है तथा षट् कर्तव्यों को प्रतिदिन करनेवाले को ही सम्यक्दर्शन होगा।

श्रावणी अर्थात् यज्ञोपवीत लेने की विधि

गृहस्थाचार्यों को यज्ञोपवीत लेने से पहले यथाविधि अभिषेकपूर्वक श्री जिनेश्वर की पूजा कर पुण्याहवाचन और हवन करना चाहिये। तत्पश्चात् निम्नलिखित यज्ञोपवीत का मन्त्र पढ़ते हुए यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये।

''ॐ नमः परमशान्ताय शान्तिकराय पवित्रीकृतायाहं रत्नत्रयस्वरूपं यज्ञोपवीतं दधामि, मम गात्रं पवित्रं भवतु अर्हं नमः स्वाहा। इति यज्ञोपवीतसन्धारणम्।''

यह यज्ञोपवीत धारण करने का मन्त्र है।

अथवा

अति निर्मल मुक्ताफल ललितं, यज्ञोपवीतमतिपूतम्।
रत्नत्रयमिति मत्वा, करोमि कलुषाहरणमाभरणम्।।
नमः सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राय यज्ञोपवीतसन्धारणम्।

अथवा

केवलज्ञानसाम्राज्य-युवराजपदप्राप्तये।
रत्नत्रयमिदं सूत्रं, कण्ठाभरणमादधे।।
(इति यज्ञोपवीतसन्धारणम्।)

इस प्रकार मन्त्र पढ़ते हुए भी गले में जनेऊ पहिना जाता है। प्रकृत यज्ञोपवीत शौच या लघुशंका करते समय क्रम से दांये व बांए कान पर, वमन के समय गले में और मैथुन के समय मस्तक पर लपेट लेना चाहिये। तदुक्तम्—

मूत्रे तु दक्षिणे कर्णे, पुरीषे वामकर्णके।
मैथुने मस्तके ज्ञेया, यज्ञोपवीतस्थितिः।।

यज्ञोपवीत बदलने का समय

1. श्रावणी पूर्णिमा को नया यज्ञोपवीत धारण कर लेने के बाद पहले का (पुराना) यज्ञोपवीत किसी गहरे जलाशय में छोड़ देना चाहिये। 2. सूतक या पातक समाप्त होने पर होमादि विधिपूर्वक नया यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। 3. यज्ञोपवीत टूट जाने या गुम जाने पर यज्ञोपवीत धारण करने का मन्त्र पढ़कर, फिर से नया यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। 4. मल, मूत्र, रक्त इत्यादि अपवित्र वस्तुओं का सम्पर्क होने पर यज्ञोपवीत बदलकर नया यज्ञोपवीत धारण करना चाहिये। 5. चाण्डालादि अस्पृश्यों का स्पर्श होने पर यज्ञोपवीत बदलना चाहिये। 6. भूल या प्रमाद से स्पृश्य शूद्र के साथ खान पान के होने पर प्रायश्चित लेकर यज्ञोपवीत बदलना चाहिये। 7. अज्ञानता

या असावधानी से मद्य, मांससेवी लोगों के साथ कदाचित् खान-पान हो जाये तो प्रायश्चित्त लेकर यज्ञोपवीत बदलना चाहिये। 8. शूद्र, पतित और जातिच्युत मनुष्यों के साथ खान पान का सम्बन्ध हो जाये तो प्रायश्चित्त पूर्वक यज्ञोपवीत बदलना चाहिये। 9. अज्ञानता से अपने द्वारा गाय, भैंस, कुत्ता, बिल्ली, सर्प आदि पंचेन्द्रिय प्राणियों की हिंसा हो जाये तो प्रायश्चित्त लेकर यज्ञोपवीत बदलना चाहिये।

गृहस्थाचार्य श्रावक के कपाल (माथा) पर तिलकर लगाकर यज्ञोपवीत मन्त्र पढ़कर यज्ञोपवीत पहिनावे। तिलक किये और मन्त्र पढ़े बिना नहीं।

जिनागम देख श्रद्धा न करने वाला मिथ्यादृष्टि

सुत्तादो तं सम्मं दरिसिज्जंतं जदा ण सद्दहदि।
सो चेव हवइ मिच्छाइट्ठी जीवो तदो पहुदी।।

—आचार्य नेमिचंद स्वामी

गाथार्थ-सूत्र से समीचीनरूप से दिखलाये गये उस अर्थ का जब यह जीव श्रद्धान नहीं करता है, उस समय से यह जीव मिथ्यादृष्टि हो जाता है।

विशेषार्थ-गाथा 27 में कथित असद्भूत पदार्थ का श्रद्धान करनेवाले सम्यग्दृष्टि को यदि पुनः कोई परमागम का ज्ञाता विसंवादरहित दूसरे सूत्र द्वारा उस असद्भूत अर्थ को यथार्थरूप से बतलावे, फिर भी वह जीव असत् आग्रहवश असद्भूत को ही स्वीकार करे, यथार्थ को स्वीकार नहीं करे तो उसी समय से वह जीव मिथ्यादृष्टित्व को प्राप्त हो जाता है, क्योंकि वह प्रवचनविरुद्ध बुद्धिवाला है, ऐसा परमागम में कहा गया है। इसलिए यह ठीक कहा है कि प्रवचन में उपदिष्ट हुए अर्थ का आज्ञा और अधिगम से विपरीतता के बिना श्रद्धान करना सम्यग्दृष्टि का लक्षण है।

(जय धवला पु. 12, पृ. 321-322)

द्रव्य पूजा की मुद्राएँ

मुकुलित दोनों हाथों को जोड़कर वक्ष स्थल पर रखें।

वन्दना मुद्रा

सिर झुकाकर हाथ जोड़कर मस्तक पर हाथों को रखें।

वन्दना मुद्रा

देह को ढीला छोड़कर और आँखों को बंद कर कायोत्सर्ग करें।

कोयात्सर्ग मुद्रा

दोनों हाथों से कलश पकड़कर अभिषेक करें।

अभिषेक मुद्रा

दोनों हाथ खोलकर आह्वान करें

आह्वान मुद्रा

स्थापना मुद्रा
(इस प्रकार स्थापना करें)

सन्निधिकरण मुद्रा
(मुट्ठी बाँधकर हृदय पर हाथ रखकर सन्निधिकरण करें।

जल
कलश को हाथों में लेकर जल अर्पण करें।

चन्दन
अनामिका से चंदन लेकर थाली में समर्पित करें।

अक्षत
हल्की मुट्ठी बाँधकर दोनों हाथों से अक्षत चढ़ायें।

पुष्प

खुले हाथों में रखकर पुष्प अर्पित करें।

नैवेद्य

रकेवी में रखकर नैवेद्य चढ़ायें।

दीप

रकेवी में कपूर जलाकर दीप समर्पित करें।

धूप

अनामिका, अंगुष्ठ एवं मध्यमा इन तीन अंगुलियों से लेकर धूप समर्पित करें।

फल

रकेवी या मुकुलित हाथों में रखकर फल चढ़ावें।

अर्घ चढ़ाने की मुद्रा

रकेवी में रखकर अर्घ चढ़ायें।

दर्शन स्तुति

(कविवर बुधजन जी कृत)

प्रभु पतित पावन-मैं अपावन, चरण आयो शरण जी।
यों विरद आप निहार स्वामी! मैंट जामन मरण जी॥1॥

तुम न पिछान्यो आन्य मान्यो, देव विविध प्रकार जी।
या बुद्धि सेती निज न जान्यो, भ्रम गिन्यो हितकार जी॥2॥

भव विकट वन में कर्म बैरी, ज्ञान धन मेरो हर्‍यो।
सब इष्ट भूल्यो भ्रष्ट होय, अनिष्ट गति धरतो फिर्‍यो॥3॥

धन घड़ी यों धन दिवस यों ही, धन जनम मेरो भयो।
अब भाग मेरो उदय आयो, दरश प्रभु जी को लख लयो॥4॥

छबि वीतरागी नग्न मुद्रा, दृष्टि नाशा पै धरैं।
वसु प्रातिहार्य अनन्त गुण युत कोटि रवि छबि को हरैं॥5॥

मिट गयो तिमिर मिथ्यात्व मेरो, उदय रवि आतम भयो।
मो उर हरष ऐसो भयो, मनु रंक चिन्तामणि लयो॥6॥

मैं हाथ जोड़ नवाऊँ मस्तक, वीनऊँ तुम चरण जी।
सर्वोत्कृष्ट त्रिलोकपति जिन, सुनहुँ तारण तरण जी॥7॥

जाचूँ नहीं सुरवास पुनि नर-राज परिजन साथ जी।
'बुध' जाँच हूँ तुम भक्ति भव-भव, दीजिये शिवनाथ जी॥8॥

दर्शन स्तुति

(पं. दौलतराम जी कृत)

सकल ज्ञेय ज्ञायक तदपि, निजानन्द-रस लीन।
सो जिनेन्द्र जयवंत नित, अरि-रज-रहस-विहीन॥1॥

जय वीतराग विज्ञान पूर, जय मोह-तिमिर को हरन सूर।
जय ज्ञान अनंतानंत धार, दृग-सुख वीरज मंडित अपार॥2॥

जय परमशांत मुद्रा समेत, भविजन को निज अनुभूति हेत।
भवि-भागनवशजोगेवशाय, तुम ध्वनिह्वैसुनिविभ्रमनशाय॥3॥

तुम गुण चिन्तत निज-पर-विवेक, प्रगटै विघटै आपद अनेक।
तुम जगभूषण दूषण-विमुक्त, सब महिमायुक्त विकल्प-मुक्त॥4॥

अविरुद्ध शुद्ध चेतन स्वरूप, परमात्म परम पावन अनूप।
शुभअशुभ विभाव अभावकीन, स्वाभाविक परणतिमय अछीन॥5॥

अष्टादश दोष विमुक्त धीर, स्वचतुष्टय मय राजत गम्भीर।
मुनि गणधरादि सेवत महन्त, नवकेवल-लब्धि-रमा धरन्त॥6॥

तुम शासन सेय अमेय जीव, शिव गये जाहिं जैहें सदीव।
भवसागर में दुख छार वारि, तारण को और न आप टारि॥7॥

यह लखि निजदुख-गदहरणकाज, तुमही निमित्तकारण इलाज।
जाने तातैं मैं शरण आय, उचरों निज दुख जो चिर लहाय॥8॥

मैं भ्रम्यो अपनका विसरि आप, अपनाये विधि फल पुण्य पाप।
निजको परका करता पिछान, परमें अनिष्टता इष्ट ठान॥9॥

आकुलित भयो अज्ञान धारि, ज्यों मृग मृगतृष्णा जानि वारि।
तन-परणति में आपो चितार, कबहूँ न अनुभवो स्वपदसार॥10॥

तुमको जाने बिन जो कलेश, पाये सो तुम जानत जिनेश।
पशु-नारक-नर-सुर-गति मँझार, भव धर धर मर्यो अनंतबार॥11॥

अब काललब्धि बलतैं दयाल, तुम दर्शन पाय भयो खुशाल।
मन शान्त भयो मिटि सकलद्वन्द्व, चाख्यो स्वातम रस दुख निकंद॥12॥

तातैं अब ऐसी करहुँ नाथ, बिछुड़े न कभी तुम चरण साथ।
तुम गुणगण को ना छेव देव, जगतारण को तुम विरद एव॥13॥

आतम के अहित विषय कषाय, इनमें मेरी परिणति न जाए।
मैं रहूँ आपमें आप लीन, सो करो होऊँ जो निजाधीन॥14॥

मेरे न चाह कछु और ईश, रत्नत्रय निधि दीजे मुनीश।
मुझ कारज के कारण सु आप, शिव करहु हरहु मम मोह ताप॥15॥

शशि शांतिकरण तपहरण हेत, स्वयमेव तथा तुम कुशल देत।
पीवत पियूष ज्यों रोग जाए, त्यों तुम अनुभव ते भव नशाय॥16॥

त्रिभुवन तिहुँकाल मझार कोय, नहिं तुम बिन निजसुखदायहोय।
मो उर यह निश्चय भयो आज, दुखजलधि उतारन-तुम जहाज॥17॥

दोहा—तुम गुणगण-मणि गणपति, गणत न पावहिं पार।
'दौल' स्वल्पमति किम कहें, नमौं त्रियोग सम्हार॥

दर्शन स्तुति

अति पुण्य उदय मम आया, प्रभु तुमरा दर्शन पाया।
अब तक तुमको बिन जाने, दुख पाये निज गुण हाने॥

पाये अनंते दुःख अब तक, जगत को निज जानकर।
सर्वज्ञ भाषित जगत हितकर, धर्म नहिं पहिचान कर॥

भव बंधकारक सुखप्रहारक, विषय में सुख मानकर।
निजपर विवेचक ज्ञानमय, सुखनिधि सुधा नहिं पानकर॥

तव पद मम उर में आये, लखि कुमति विमोह पलाये।
निज ज्ञान कला उर जागी, रुचि पूर्ण स्वहित में लागी।।

रुचि लगी हित में आत्म के, सत्संग में अब मन लगा।
मन में हुई अब भावना, तव भक्ति में जाऊँ रंगा॥

प्रिय वचन की हो टेव, गुणिगण गानमें ही चित पगै।
शुभ शास्त्र का नित हो मनन, मन दोष वादनतें भगै॥

कब समता उर में लाकर, द्वादश अनुप्रेक्षा भाकर।
ममतामय भूत भगाकर, मुनिव्रत धारूँ वन जाकर॥

धरकर दिगम्बर रूप कब, अठ-बीस गुण पालन करूँ।
दो-बीस परिषह सह सदा, शुभ धर्म दश धारन करुँ॥

तप तपूँ द्वादश विधि सुखद नित, बंध आस्रव परिहरुँ।
अरु रोकि नूतन कर्म संचित, कर्म रिपुकों निर्जरुँ॥

कब धन्य सुअवसर पाऊँ, जब निज में ही रम जाऊँ।
कर्तादिक भेद मिटाऊँ, रागादिक दूर भगाऊँ॥

कर दूर रागादिक निरन्तर, आत्म को निर्मल करुँ।
बल ज्ञान दर्शन सुख अतुल, लहि चरित क्षायिक आचरुँ॥

आनन्दकन्द जिनेन्द्र बन, उपदेश को नित उच्चरुँ।
आवै 'अमर' कब सुखद दिन, जब दुःखद भवसागर तरुँ॥

दर्शन स्तुति

वीतराग सर्वज्ञ हितंकर, भविजन की अब पूरो आश।
ज्ञान-भानु का उदय करो, मम मिथ्यातम का होय विनाश॥1॥

जीवों की हम करुणा पालें, झूठ वचन नहिं कहैं कदा।
पर धन कबहुँ न हरिहूँ स्वामी, ब्रह्मचर्य व्रत रहे सदा॥2॥

तृष्णा लोभ बढ़े न हमारा, तोष-सुधा नित पिया करें।
श्री जिनधर्म हमारा प्यारा, उसकी सेवा किया करें ॥3॥

दूर भगावें बुरी रीतियाँ, सुखद रीति का करें प्रचार।
मेल-मिलाप बढ़ावें हम सब, धर्मोन्नति का करें विचार ॥4॥

सुख-दुख में हम समता धारें, रहें अचल जिमि सदा अटल।
न्यायमार्ग को लेश न त्यागैं, वृद्धि करें निज आतम बल ॥5॥

अष्ट कर्म जो दुक्ख देत हैं, तिनके क्षय का करें उपाय।
नाम आपका जपें निरन्तर, रोग शोक सब ही टर जाए ॥6॥

आतम शुद्ध हमारा होवे, पाप मैल नहिं चढ़े कदा।
विद्या की हो उन्नति हममें, धर्म ज्ञान हू बढ़े सदा ॥7॥

हाथ जोड़कर शीश नमावें, तुमको भविजन खड़े-खड़े।
यह सब पूरो आश हमारी, चरण शरण में आन पड़े ॥8॥

दर्शन स्तुति (संस्कृत)

दर्शनं देवदेवस्य, दर्शनं पापनाशनम्।
दर्शनं स्वर्गसोपानं, दर्शनं मोक्षसाधनम् ॥1॥

दर्शनेन जिनेन्द्राणां, साधूनां वन्दनेन च।
न चिरं तिष्ठते पापं, छिद्रहस्ते यथोदकम् ॥2॥

वीतराग मुखं दृष्ट्वा, पद्मराग-समप्रभम्।
जन्म-जन्म कृतं पापं, दर्शनेन विनश्यति ॥3॥

दर्शनं जिन-सूर्यस्य, संसार-ध्वान्त-नाशनम्।
बोधनं चितपद्मस्य, समस्तार्थ प्रकाशनम्।।4।।

दर्शनं जिन चन्द्रस्य, सद्धर्मामृत वर्षणं।
जन्म दाह-विनाशाय, वर्धनं, सुख वारिधेः।।5।।

जीवादि-तत्त्व-प्रतिपादकाय, सम्यक्त्व-मुख्याष्ट-गुणार्णवाय।
प्रशांतरूपाय दिगम्बराय, देवाधिदेवाय नमो जिनाय॥6॥

चिदानन्दैक-रूपाय, जिनाय परमात्मने।
परमात्म प्रकाशाय, नित्यं सिद्धात्मने नमः॥7॥

अन्यथा शरणं नास्ति, त्वमेव शरणं मम।
तस्मात् कारुण्यभावेन, रक्ष रक्ष जिनेश्वर॥8॥

न हि त्राता न हि त्राता, न हि त्राता जगत्त्रये।
वीतरागात्परो देवो, न भूतो न भविष्यति॥9॥

जिनेभक्ति-र्जिनेभक्ति-र्जिनेभक्ति-र्दिने दिने।
सदामेऽस्तु सदामेऽस्तु, सदामेऽस्तु भवे भवे॥10॥

जिनधर्म-विनिर्मुक्तो, मा भवेत्चक्रवर्त्यति।
स्याच्चेटोऽपि दरिद्रोऽपि, जिनधर्मानु-वासितः॥11॥

जन्म जन्म कृतं पापं, जन्मकोटिमुपार्जितम्।
जन्म मृत्यु जरा रोगं, हन्यते जिनदर्शनात्॥12॥

अद्याभवत्-सफलता नयन-द्वयस्य,
देव त्वदीय-चरणांबुज-वीक्षणेन।
अद्य त्रिलोक-तिलक-प्रतिभासते मे,
संसार-वारिधिरयं चुलुक-प्रमाणः॥13॥

चौबीस तीर्थंकर स्तुति

(रचयिता-आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज)

किया कर्मयुग आदि में, धर्मतीर्थ अवतार।
आदिब्रह्म आदीश को, प्रणमूँ बारम्बार॥1॥

जीत लिया निज मन अहा!, अमित ज्ञान से आप।
अजितनाथ! को नित नमूँ, मिटे सकल संताप॥2॥

'शं' पाना सबकी नियति, है यह आतमज्ञान।
आत्मज्ञान का दान दो, हे शम्भव! भगवान्॥3॥

अभिनन्दन निजभाव का, करना नित्य विचार।
अभिनन्दन! वन्दन मेरा, कर लो अब स्वीकार॥4॥

जहाँ सुमति वहँ धर्म है, जहाँ कुमति वहँ पाप।
सुमतिनाथ! वन्दन करुँ, मिटे कुमति भव ताप॥5॥

छद्मज्ञान दुःखकार है, पूर्णज्ञान सुखकार।
पद्मप्रभ ! चरणों नमन, मिले मुक्ति का द्वार॥6॥

अनेकान्त श्रद्धान ही, आत्मज्ञान का मूल।
वन्दन प्रभु सुपाश्र्व को, दिखलाई जिन भूल॥7॥

चन्द्रकांति जैसा धवल, यथाख्यात चारित्र।
हे चन्द्रप्रभ! दो हमें, रहूँ नहीं अपवित्र॥8॥

कामादिक को नाशकर, हुये आप निष्काम।
पुष्पदन्त चरणों अहा!, करता पुष्प प्रणाम॥9॥

प्रभु! निश्चय-व्यवहार से, बतलाया शिवपंथ।
चरणों शीतलनाथ के, झुकते गणधर संत॥10॥

रत्नत्रय ही श्रेय है, दिया धर्म उपदेश।
प्रभु श्रेयान्स की भक्ति से, मिट जाये भव क्लेश॥11॥

पाँच महाव्रत गुप्तित्रय, पाँच समितियाँ पाल।
तीन लोक से पूज्य प्रभु वासुपूज्य! पद भाल॥12॥

अमलस्वभावी आत्मा, प्रगट विमल पर्याय।
विमलनाथ! वर दो हमें, मम चेतन धुल जाए॥13॥

द्रव्य-भाव-नोकर्म का, किया आपने अन्त।
हे अनन्तप्रभु! आप सम, पौरुष पाऊँ अनन्त॥14॥

धर्ममार्ग निज में नियत, कहता आतमधर्म।
धर्मनाथ की वन्दना, करो मिटे सब भर्म॥15॥

आत्मशांति जब तक नहीं, तब तक सदा अशांति।
शान्ति प्रभु सम शान्ति हो, करो जगत से क्रान्ति॥16॥

कुन्थु आदिक् जीव पर, धरो दया का भाव।
कुन्थुनाथ पद पूजकर, भव का करो अभाव॥17॥

इन्द्रिय सुख के दास हो, किया चतुर्गति वास।
बनो दास अरनाथ के, मिले मोक्ष निज पास।18॥

मोह मल्ल को जीतकर, आप हुए निर्मोह।
मल्लिनाथ पद रज नमूँ, करने मोह बिछोह॥19॥

बिन व्रत संयम नियम के, निश्चय व्रत नहिं जान।
दिव्यध्वनि में यह कहा, मुनिसुव्रत भगवान॥20॥

नय प्रमाण निक्षेप से, कहा तत्व का सार।
नमिनाथ द्वय पद नमूँ, पाने पद अविकार॥21॥

पुण्य-पाप दोनों कहे, स्वर्ण लोह जंजीर।
नेमिनाथ प्रभु! मेंट दो, मम भव-भव की पीर॥22॥

अशुभ छोड़ शुभ पा लिया, शुभ तज शुद्ध स्वभाव।
पार्श्वनाथ प्रभु दीजिये, आत्मधर्म की छाँव॥23॥

स्याद्वाद असि धार से, जीते कुमत अधीर।
सर्वश्रेष्ठ जिनधर्म है कहा नमूँ महावीर॥24॥

तीर्थंकर चौबीस का, हो "विमर्श" नित ध्यान।
ध्यान-ध्येय-ध्याता मिटे, मिले सहज भगवान॥

मंगलाष्टक

अर्हन्तो भगवन्त इन्द्रमहिताः सिद्धाश्च सिद्धीश्वराः,
आचार्या जिनशासनोन्नतिकराः पूज्या उपाध्यायका।
श्रीसिद्धान्त सुपाठकाः मुनिवराः रत्नत्रयराधकाः,
पंचैते परमेष्ठिनः प्रतिदिनं कुर्वन्तु ते मंगलम्॥1॥

श्रीमन्नम्र - सुरासुरेन्द्र - मुकुट - प्रद्योत - रत्नप्रभा,
भास्वत्पादनखेन्दवः प्रवचनाम्भोधीन्दवः स्थायिनः।
ये सर्वे जिनसिद्ध-सूर्यनुगतास्ते पाठकाः साधवः,
स्तुत्या योगिजनैश्च पंचगुरवः कुर्वन्तु ते मंगलम्॥2॥

सम्यग्दर्शन - बोध वृत्तममलं रत्नत्रयं पावनं,
मुक्तिश्री नगराधिनाथ - जिनपत्युक्तोऽपवर्गप्रदः।
धर्मः सूक्तिसुधा च चैत्यमखिलं चैत्यालयं श्रयालयं,
प्रोक्तं च त्रिविधं चतुर्विधममी कुर्वन्तु ते मंगलम्॥3॥

ये सर्वौषधऋद्धयः सुतपसो वृद्धिंगता पंच ये,
ये चाष्टांग महानिमित्तकुशला येऽष्टैर्विधाश्चारणः।
पंचज्ञानधरास्त्रयोऽपि बलिनो ये बुद्धि-ऋद्धीश्वराः,
सप्तैते सकलार्चिता गणभृतः कुर्वन्तु ते मंगलम्॥4॥

कैलाशे वृषभस्य निर्वृतिमही वीरस्य पावापुरे,
चम्पायां वसुपूज्य सज्जिनपतेः सम्मेदशैलेऽर्हताम्।
शेषाणामपि चोर्जयन्तशिखरे नेमीश्वरस्यार्हतो,
निर्वाणावनयः प्रसिद्धविभवाः कुर्वन्तु ते मंगलम्॥5॥

ज्योतिर्व्यन्तर-भावनामरगृहे मेरौ कुलाद्रौ तथा,
जम्बू-शाल्मलि-चैत्यशाखिषु तथा वक्षार-रौप्याद्रिषु।
इष्वाकारगिरौ च कुण्डलनगे द्वीपे च नन्दीश्वरे,
शैले ये मनुजोत्तरे जिनगृहाः कुर्वन्तु ते मंगलम्॥6॥

सर्पो हारलता भवत्यसिलता सत्पुष्पदामायते,
सम्पद्येत रसायनं विषमपि प्रीतिं विधत्ते रिपुः।
देवा यान्ति वशं प्रसन्नमनसः किं वा बहु ब्रूमहे,
धर्मादेव नभोऽपि वर्षति नगैः कुर्वन्तु ते मंगलम्॥7॥

यो गर्भावतरोत्सवो भगवतां जन्माभिषेकोत्सवो,
यो जातः परिनिष्क्रमेण विभवो यः केवलज्ञानभाक्।
यः कैवल्यपुरप्रवेशमहिमा संभावितः स्वर्गिभिः,
कल्याणानि च तानि पंच सततं कुर्वन्तु ते मंगलम्॥8॥

इत्थं श्री जिनमंगलाष्टकमिदं सौभाग्य संपत्करम्,
कल्याणेषु महोत्सवेषु सुधियस्तीर्थंकराणामुषः।
ये शृण्वन्ति पठन्ति तैश्च सुजनैर्धर्मार्थकामान्विता,
लक्ष्मीराश्रयते व्यपाय-रहिता, निर्वाणलक्ष्मीरपि॥9॥

श्री नवदेवता स्तोत्र-मंगलाष्टक

श्रीमन्तो जिनपा-जगत्त्रयनुता दोषै-र्विमुक्तात्मकाः।
लोकालोक विलोकनैक चतुराःशुद्धाः परं निर्मलाः॥
दिव्यानन्त चतुष्टयादिक युताः सत्य स्वरूपात्मकाः।
प्राप्तायै-र्भुवि प्रातिहार्य विभवाः कुर्वन्तु ते मंगलम्॥1॥

श्रीमन्तो नृ सुरा-सुरेन्द्र महिता, लोकाग्र संवासिनः।
नित्याः सर्व सुखाकरा भयहरा, विश्वेषु कामप्रदाः॥
कर्मातीत विशुद्ध भाव सहिता, ज्योतिः स्वरूपात्मकाः।
श्री सिद्धा जननार्ति-मृत्यु-रहिताः, कुर्वन्तु ते मंगलम्॥2॥

पंचाचार परायणाः सुविमलाश्चारित्र संद्योतकाः।
अर्हद्रूप धराश्च निस्पृह पराः, कामादि दोषोज्झिताः॥
बाह्याभ्यन्तर संगमोह रहिताः शुद्धात्म संराधकाः।
आचार्या नरदेव-पूजित-पदाः, कुर्वन्तु ते मंगलम्॥3॥

वेदांगं निखिलागमं शुभतरं, पूर्ण-पुराणं सदा।
सूक्ष्मासूक्ष्म समस्त तत्त्व कथकं, श्रीद्वादशांगं शुभम्॥
स्वात्मज्ञान विवृद्धये गतमलाः येऽध्यापयन्तीश्वराः।
निर्द्वन्द्वावर पाठकाः सुविमलाः, कुर्वन्तु ते मंगलम्॥4॥

त्यक्त्वाशां भव भोग पुत्रतनुजां, मोहं परं दुस्त्यजं।
निःसंगा-करुणालयाश्च विरता दैगम्बरा धीधनाः॥
शुद्धाचार-रता निजात्म-रसिका ब्रह्म-स्वरूपात्मका।
देवेन्द्रैरपि पूजिताः सुमुनयः कुर्वन्तु ते मंगलम्॥5॥

जीवानाम् भयप्रदः सुसदयः संसार-दुःखापहः।
सौख्यं योनितरां ददाति सकलं, दिव्यं मनोवांछितम्॥

तीर्थेशै-रपि-धारितोह्यनुपमः स्वर्मोक्ष संसाधकः।
धर्मः सोऽत्र जिनोदितो हितकरः कुर्यात्सदा मंगलम् ॥6 ॥

स्याद्वादांकधरं त्रिलोक महितं, दैवं सदा संस्तुतं।
सन्देहादि विरोधभाव रहितं सर्वार्थ सन्देशकम् ॥
याथातथ्य-मजेय-माप्त कथितं, कोटि प्रभा भासितं।
श्री-मज्जैन सुशासनं हितकरं, कुर्यात्सदा मंगलम् ॥7 ॥

सौम्याः सर्वविकार भावरहिताः, शांति-स्वरूपात्मकाः।
शुद्धध्यानमयाः प्रशान्त वदनाः, श्री प्रातिहार्यान्विताः ॥
स्वात्मानन्द विकाशकाश्च सुभगाश्चैतन्य भावावहाः।
पञ्चानां परमेष्ठिनां हि कृतयः, कुर्वन्तु ते मंगलम् ॥8 ॥

घण्टा तोरण दाम धूप घटकै, राजन्ति सन्मंगलैः।
स्तोत्रैश्चित्त-हरै-र्महोत्सव शतै-र्वादित्र संगीतकैः ॥
पूजारम्भ महाभिषेक यजनैः, पुण्योत्करैः सत्क्रियैः।
श्री चैत्या-यतनानि तानि कृतिनां, कुर्वन्तु सन्मंगलम् ॥9 ॥

इत्थं मंगल दायका जिनवरा सिद्धाश्च सूर्यादयाः।
पूज्यास्ता नव देवता अघहरास्तीर्थोत्तमास्तारकाः ॥
चारित्रो ज्वलतां विशुद्ध शमतां, बोधिं समाधिं-तथा।
श्री जैनेन्द्र 'सुधर्म' मात्मसुखदं, कुर्वन्तु सन्मंगलम् ॥10 ॥

(इति श्री नवदेवता स्तोत्र-मंगलाष्टक)

पंचाचार परायणः ऋषिवरः सूरि विमर्शसागरः।
षट्त्रिंषत् गुण शोभितं यतिवरः अध्यात्माराधकः।
सागर सम गम्भीर हृदय वरं, मृग सम् सरल वृत्तितम्।
वायु सम् निःसंग चर्या परं, वंदे विमर्शसागरम्।

जलाभिषेक पाठ

जय जय भगवंते सदा, मंगल मूल महान।
वीतराग सर्वज्ञ प्रभु, नमौं जोरि जुगपान।।

(ढाल मंगल को, छंद अडिल्ल और गीता)

श्रीजिन जग में ऐसो को बुधवंत जू।
जो तुम गुण वरननि करि पावै अंत जू।।
इंद्रादिक सुर चार ज्ञानधारी मुनी।
कहि न सकै तुम गुणगुण हे त्रिभुवनधनी।।
अनुपम अमित तुम गुणनि-वारिधि, ज्यों अलोकाकाश है।
किमि धरैं हम उस कोष में सो अकथ-गुण-मणि-राश है।।
पै निज प्रयोजन सिद्धि की तुम नाम में ही शक्ति है।
यह चित्त में सरधान यातैं नाम ही में भक्ति है।।1।।
ज्ञानावरणी दर्शन, आवरणी भने।
कर्म मोहनी अंतराय चारों हने।।
लोकालोक विलोक्यो केवलज्ञान में
इंद्रादिक के मुकुट नये सुरथान में।।
तब इन्द्र जान्यो अवधितैं, उठि सुरन-युत बंदत भयो।
तुम पुन्य को प्रेर्‍यो हरी ह्वै मुदित धनपतिसौं चयो।।
अब वेगि जाय रचौ समवसृति सफल सुरपद को करो।
साक्षात् श्रीअरहंत के दर्शन करौ कल्मष करौ।।2।।
ऐसे वचन सुने सुरपति के धनपती।
चल आयो तत्काल मोद धारे अती।।
वीतराग छबि देखि शब्द जय जय चयौ।
दे प्रदच्छिना बार बार वंदत भयौ।।
अति भक्ति-भीनो नम्र-चित्त ह्वै समवशरण रच्यौ सही।

ताकी अनूपम शुभ गती को, कहन समरथ कोउ नहीं।।
प्राकार तोरण सभामंडप कनक मणिमय छाजहीं।
नग-जड़ित गंधकुटी मनोहर मध्यभाग विराजहीं।।3।।
सिंहासन तामध्य बन्यौ अद्‌भुत दिपै।
तापर वारिज रच्यो प्रभा दिनकर छिपे।।
तीन छत्र सिर शोभित चौसठ चमरजी।
महा भक्तियुत ढोरत हैं तहाँ अमरजी।।
प्रभु तरन तारन कमल ऊपर, अन्तरीक्ष विराजिया।
यह वीतराग दशा प्रतच्छ विलोकि भविजन सुख लिया।।
मुनि आदि द्वादश सभा के भवि जीव मस्तक नायकैं।
बहुभाँति बारंबार पूजैं, नमैं गुणगण गायकै।।4।।
परमौदारिक दिव्य देह पावन सही।
क्षुधा तृषा चिंता भय गद दूषण नहीं।।
जन्म जरामृति अरति शोक विस्मय नसे।
राग द्वेष निद्रा मद मोह सबै खसे।।
श्रम बिना श्रम जल रहित पावन अमल ज्योति-स्वरूपजी।
शरणागतनि की अशुचिता हरि, करत विमल अनूपजी।।
ऐसे प्रभु की शांतिमुद्रा को न्हवन जलतैं करैं।
'जस' भक्तिवश मन उक्ति तैं हम भानु ढिग दीपक धरैं।।5।।
तुम तौ सहज पवित्र यही निश्चय भयो।
तुम पवित्रता हेत नहीं मज्जन ठयो।।
मैं मलीन रागादिक मलतैं ह्वै रह्यो।
महामलिन तन में वसुविधिवश दुख सह्यो।।
बीत्यो अनंतो काल यह मेरी अशुचिता ना गई।
तिस अशुचिता हर एक तुम ही, भरहु बांछा चित ठई।।
अब अष्टकर्म विनाश सब मल रोष-रागादिक हरौ।
तनरूप कारा-गेहतैं उद्धार शिव वासा करौ।।6।।

मैं जानत तुम अष्टकर्म हरि शिव गए।
आवागमन विमुक्त राग-वर्जित भये।।
पर तथापि मेरो मनोरथ पूरत सही।
नय-प्रमानतैं जानि महा साता लही।
पापाचरण तजि न्हवन करता चित्त में ऐसे धरूँ।
साक्षात् श्री अरहंत का मानों न्हवन परसन करूँ।।
ऐसे विमल परिणाम होते अशुभ नसि शुभबंध तैं।
विधि अशुभ नसि शुभबंधतैं ह्वै शर्म सब विधि तासतैं।।7।।
पावन मेरे नयन भये तुम दरसतैं।
पावन पानि भये तुम चरननि परसतैं।।
पावन मन ह्वै गयो तिहारे ध्यानतैं।
पावन रसना मानी तुम गुण गानतैं।
पावन भई परजाय मेरी, भयौ मैं पूरणधनी।
मैं शक्तिपूर्वक भक्ति कीनी, पूर्णभक्ति नहीं बनीं।।
धन धन्य ते बड़भागि भवि तिन नींव शिवघर की धरी।
वर क्षीरसागर आदि जल मणिकुंभ भर भक्ति करी।।8।।
विघन-सघन-वनदाहन-दहन प्रचंड हो।
मोह-महातम-दलन प्रबल मारतण्ड हो।।
ब्रह्मा विष्णु महेश आदि संज्ञा धारो।
जग-विजयी जमराज नाश ताको करो।।
आनन्द-कारण दुख-निवारण, परम मंगलमय सही।
मोसों पतित नहिं और तुमसो पतित तार सुन्यौ नहीं।।
चिंतामणी पारस कल्पतरु, एक भव सुखकार ही।
तुम भक्ति-नौका जे चढ़े, ते भये भवदधि पार ही।।9।।
तुम भवदधितैं तरि गए, भये निकल अविकार।
तारतम्य इस भक्ति को, हमैं उतारो पार।।

वृहद अभिषेक-पाठ

श्रीमन्-नता-मर-शिरस्तट-रत्न-दीप्ति-
तोयाव-भासि-चरणाम्बुज-युग्म-मीशम्।
अर्हन्त-मुन्नत-पद-प्रद-माभि-नम्य,
तनमूर्ति-षूद्य-दभिषेक-विधिं करिष्ये॥1॥

अथ पौर्वाह्णिकदेव-वन्दनायां पूर्वाचार्यानुक्रमेण सकल-कर्म-क्षयार्थं भाव-पूजा-वंदनास्तव समेतं श्री पंचमहा-गुरुभक्ति पुरस्सरंकायोत्सर्गं करोम्यहम्।

(यह पढ़कर नौ बार णमोकार मन्त्र पढ़ें)

याः कृत्रिमास् तदितराः प्रतिमा जिनस्य,
संस्ना-पयन्ति-पुरुहूत-मुखा-दयस्ताः।
सद्भाव-लब्धि-समयादि-निमित्त-योगात्,
तत्रैव-मुज्जवल-धिया कुसुमं क्षिपामि॥2॥

(यह पढ़कर थाली में पुष्पांजलि छोड़कर अभिषेक की प्रतिज्ञा करें)

श्रीपीठक्लृप्ते विशदाक्षतौघैः, श्रीप्रस्तरे पूर्णशशांङ्क-कल्पे।
श्रीवर्तकेचन्द्रमसीति वार्तां, सत्यापयंती श्रियमा लिखामि॥3॥

ॐ ह्रीं अर्हं श्री लेखनं करोमि।

कनकाद्रि-निभं कम्रं पावनं पुण्य-कारणम्।
स्थापयामि परं पीठंजिनस्नपनाय भक्तितः॥4॥

ॐ ह्रीं श्रीपीठस्थापनं करोमि।

(यह पढ़कर अभिषेक की थाली में सिंहासन स्थापित करें)

भृंगार-चामर-सुदर्पण-पीठ-कुम्भ,
तालध्वजा-तप-निवारक-भूषिताग्रे।
वर्धस्व-नन्द-जय-पाठ-पदा, वलीभिः,
सिंहासने जिन भवन्त-महं श्रयामि॥5॥

वृषभादि सुवीरान्तान् जन्माप्तौ जिष्णुचर्चितान्।
स्थापयाम्यभिषेकाय भक्त्या पीठे महोत्सवम्॥6॥

ॐ ह्रीं श्रीधर्मतीर्थाधिनाथ भगवन्निह सिंहासने तिष्ठ तिष्ठ।

(यह पढ़कर प्रतिमा जी विराजमान करें)

श्री तीर्थकृत्स्नपन-वर्य-विधौ-सुरेन्द्रः,
क्षीराब्धि-वारिभि-रपूरय-दुद्ध-कुम्भान्।
याँस्तादृशा-निव विभाव्य यथा-र्हणीयान्,
संस्थापये कुसुम-चन्दन-भूषि-ताग्रान्॥7॥
शात-कुंभीय-कुंभौघान् क्षीराब्धेस् तोय-पूरितान्।
स्थापयामि जिनस्नान-चन्दनादि-सुचर्चितान्॥8॥

(ॐ ह्रीं चतुः कोणेषु चतुः कलशस्थापनं करोमि।)

आनन्द-निर्भर-सुर-प्रमदादि-गानै-
र्वादित्र-पूर-जय-शब्द-कलप्रशस्तैः।
उद्‌गीय-मान-जगती-पति-कीर्ति-मेनां,
पीठस्थलीं वसु-विधार्चन-योल्लसामि॥9॥

ॐ ह्रीं स्नपनपीठस्थिताय जिनायार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

कर्म-प्रबन्ध-निगडै-रपि हीन-ताप्तं
ज्ञात्वापि भक्ति-वशतः परमादि-देवम्।
त्वां स्वीय-कल्मष-गणोन्मथ-नाय देव,
शुद्धोदकै-रभिनयामि महा-भिषेकम्॥10॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते पवित्रतर जलेन जिनमभिषेचयामि स्वाहा।

तीर्थोत्तम-भवै-नीरैः, क्षीर-वारिधि-रूपकैः।
स्नपयामि सुजन्माप्तान्, जिनान् सर्वार्थसिद्धिदान्॥11॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादिवीरान्तान् जलेन स्नपयामि स्वाहा।

सकल - भुवन - नाथं तं जिनेन्द्रं सुरेन्द्रै-
रभिषव - विधि - माप्तं स्नातकं स्नापयामः।
यदभिषवन - वारां बिन्दु - रेकोऽपि - नृणां,
प्रभवति हि विधातुं भुक्तिसन्मुक्तिलक्ष्मीम्॥12॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं हं झं क्ष्वीं क्ष्वीं हं सः झं वं ह्वः यः सः क्षां क्षीं क्षूं क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः क्ष्वीं ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रें ह्रैं ह्रों ह्रौं ह्रं ह्रः द्रां द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ठः ठः इति वृहच्छान्तिमन्त्रेणाभिषेकं करोमि।

पानीय-चन्दन-सदक्षत-पुष्प पुंज-
नैवेद्य-दीपक-सुधूप-फल-व्रजेन।
कर्माष्टक-क्रथन-वीर मनन्त-शक्तिं,
संपूजयामि महसा महसां निधानम्॥13॥

ॐ ह्रीं अभिषेकान्ते वृषभादिवीरान्तेभ्योऽर्घं नि. स्वाहा।

हे तीर्थपा निज-यशो-धवली-कृताशाः,
सिद्धौष-धाश्चभव-दुःख-महा-गदा-नाम्।
सद्भव्य-हृज्जनित-पंक-कबन्ध-कल्पा,
यूयं जिनाः सतत शान्तिकरा भवन्तु॥14॥

(यह पढ़कर शान्ति के लिए पुष्पाञ्जलि छोड़ें।)

नत्वा मुहु-र्निज-करै-रमृतोप-मेयैः
स्वच्छै-र्जिनेन्द्र तव चन्द्र-करा-वदातैः।
शुद्धांशुकेन विमलेन नितान्त-रम्ये,
देहेस्थितान् जलकणान् परि-मार्जयामि॥15॥

ॐ ह्रीं अमलांशुकेन जिनबिम्बमार्जनं करोमि।

स्नानं विधाये भवतोऽष्ट सहस्र-नाम्ना,
मुच्चारणेन मनसो वचसो विशुद्धिम्।

जिघृक्षु-रिष्टि-मिन तेऽष्ट-तयीं विधातुं,
सिंहासने विधि-वदत्र निवेशयामि॥16॥

ॐ ह्रीं श्री सिंहासन पीठे जिनबिम्ब स्थापयामि।

जल-गंधाक्षतैः-पुष्पैश्, चरु-दीप-सुधूपकैः।
फलै-रर्घै-र्जिनमर्चेज्, जन्मदुःखापहानये॥17॥

ॐ ह्रीं पीठस्थिताय जिनायार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

नत्वापरीत्य निज-नेत्र-ललाट-योश्च,
व्यातु-क्षणेन हरता—दघ-संचयं मे।
शुद्धो-दकं जिनपते तव पाद-योगाद्,
भूयाद्-भवातपहरं धृत-मादरेण॥18॥

मुक्ति-श्रीवनिता - करोदक-मिदं, पुण्यां कुरोत्पादकं,
नागेन्द्र-त्रिदशेन्द्र-चक्रपदवी, राज्याभिषेकोदकम्।
सम्यग्ज्ञान - चरित्र - दर्शन-लता-संवृद्धि-संपादकं,
कीर्ति-श्रीजयसाधकं तव-जिन-स्नानस्य गन्धोदकम्॥19॥

ॐ ह्रीं श्रीजिन गन्धोदकं स्वललाटे धारयामि।

ध्वजा फहराने का फल

पूर्व दिशा-सर्व इष्ट कार्य सिद्धि,
उत्तर-दिशा-आरोग्य सम्पत्ति कारक

ईशान-वायव्य, पश्चिम दिशा, कल्याणकारी एवं सुखदवृष्टि दक्षिण, आग्नेय, नैऋत्य दिशा-वृहद् शांतिमंत्र, शांति विधान करके शांति कर्म करें।

विपच्च सम्पदे हि स्याद् भाग्यं यदि पचेलिमम्।

अर्थ—अगर पुण्य, फल देने के सम्मुख हो, तो आपत्ति भी सुख के लिए हो जाती है।

(क्षत्रचूड़ामणि, अष्टम लम्ब, 19-254)

ध्वजगीत

(रचयिता—आचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज)

लहराये-लहराये रे, लहराये-लहराये रे,
लहराये-लहराये रे, लहराये 2

ध्वज लहर-लहर लहराये, पूरब उत्तर-फहराये,
सबके मन को भाये, सबका मन हर्षाये,
ये धर्म ध्वजा कहलाये रे...।

लहराये-लहराये रे-ऽऽऽ

ध्वज पाँच रंग का प्यारा, केशरिया सबसे न्यारा,
ज्ञानी महिमा गाये, इन्द्रादि सिर नाये,
यह ज्ञान की ज्योति जलाये रे...।

लहराये-लहराये रे-ऽऽऽ

ध्वज विश्वशांति सिखलाता, ध्वज मैत्री भाव जगाता,
ध्वज के नीचे आओ, ध्वज की शरणा पाओ,
ये सबको पास बुलाये रे...।

लहराये-लहराये रे-ऽऽऽ

ध्वज करुणा रस छलकाये, ध्वज दया का नीर बहाये,
ध्वज गौरव कहलाये, ये झुकने न पाये,
कल्याणक पाँच मनाये रे...।

लहराये-लहराये रे-ऽऽऽ

"अहो स्थैर्यं महात्मनाम्।"

अर्थात्—महापुरुषों का धैर्य ही आश्चर्य जनक होता है।

(आदिपुराण-88वाँ पर्व, 57-38)

अभिषेक गीत

(तर्ज तेरे नाम.....)

हे जिनदेव ! हमको मिला है, सबसे प्यारा ये जैन धरम।
हे जिनदेव ! धन्य किया है, हमने अपना ये मानुष जनम॥

घर से भाव बने मैं मंदिर जाऊँगा।
पारस प्रभु के दर्शन कर हर्षाऊँगा।
प्रभु दर्शन कर कूप से जल भर लाऊँगा।
कलश हाथ में ले प्रभु को नहलाऊँगा।

प्रभु अभिषेक-3, जिसने किया है, पाया उसने ही शिवसुख परम्॥

अष्टद्रव्य से पूजन थाल सजाऊँगा।
नाच-नाच प्रभु गुण आराधन गाऊँगा।
हे अखंड ! हे ज्ञायक प्रभु ! हे अविनाशी।
ज्ञानानंद स्वभावी हे निज घटवासी।

हे गुणधाम-3 अब पा लिया है, हमने अपना ये आतम धरम॥

हे प्रभु ! केवलज्ञानी, लोक विजेता हो।
सिद्ध स्वरूपी मुक्तिपथ के नेता हो।
वीतरागता प्रभु तुम सी प्रगटाऊँगा।
भेदज्ञान से मुक्ति मंजिल पाऊँगा।

मेरा मिलन-3 मुझसे करा दो-हो न फिर से मेरा अब जनम॥

प्रभु पूजा से कभी न आधि-व्याधि हो।
रोग-शोक मिट जाये प्राप्त समाधि हो।
पुण्योदय से मिलते प्रभु वा प्रभु पूजा।
प्रतिदिन प्रातः इस बिन काम न हो दूजा।

स्वर्ग विमान-3 जनम लिया है, किया है जिसने पुण्य धरम॥

लघु अभिषेक पाठ

शोधये सर्वपात्राणि, पूजार्थानपि वारिभिः।
समाहितो यथाम्नाय, करोमि सकली क्रियाम्॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः असिआउसा पवित्रतर जलेन शुद्धिं करोमीति स्वाहा। (जल से शुद्धि करें)

श्रीमज्जिनेन्द्र - मभिवन्द्य जगत्त्रयेशं,
स्याद्वादनायक - मनन्त चतुष्टयार्हम्।
श्री मूलसंघ - सुदृशां सुकृतैक हेतुर्,
जैनेन्द्र यज्ञ विधिरेष मयाभ्यधायि॥1॥

ॐ ह्रीं अभिषेक प्रतिज्ञायां पुष्पांजलिं क्षिपामि।

सौगन्ध्य - संङ्गत - मधुव्रत झङ्कृतेन,
सम्वर्ण्य - मानमिव गन्धमनिन्द्य-मादौ।
आरोपयामि विबुधेश्वर - वृन्द - वन्द्य-
पादारविन्द - मभिवन्द्य जिनोत्तमानाम्॥2॥

ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूं ह्रौं ह्रः मम सर्वांग शुद्धिं कुरु कुरु।
(यह पढ़कर चंदन से तिलक लगाना व हाथ धोना)

ये सन्ति केचिदिह दिव्य - कुल - प्रसूताः,
नागाः प्रभूत बल - दर्पयुता विबोधाः।
संरक्षणार्थ - ममृतेन शुभेन तेषां,
प्रक्षालयामि पुरतः स्नपनस्य भूमिम्॥3॥

ॐ ह्रीं जलेनभूमिशुद्धिं करोमि स्वाहा।
(यह पढ़कर भूमि शुद्धि करें)

क्षीरार्णवस्य पयसां शुचिभिः प्रवाहैः,
प्रक्षालितं सुरवरै -र्यदनेकवारम्।

अत्युद्य-मुद्यत-महं जिनपाद पीठं,
प्रक्षालयामि भव-सम्भव-तापहारि ॥4॥

ॐ ह्रीं श्रीमते पवित्रतर जलेन पीठ प्रक्षालनं करोमि।
(जिसमें प्रतिमा विराजमान करना है उस थाली को धोवें)

श्री शारदा-सुमुख-निर्गत-बीजवर्ण,
श्री मंङ्गलीक-वर-सर्व-जनस्य नित्यम्।
श्रीमत्स्वयं क्षयति तस्य विनाशविघ्नं,
श्रीकार-वर्ण-लिखितं जिन भद्रपीठे॥5॥

ॐ ह्रीं श्रीकार लेखनं करोमि।
(जिसमें प्रतिमा विराजमान करना है उस थाली में 'श्री' लिखें)

यं पाण्डुकामल-शिलागतमादिदेव-
मस्ना-पयन्सुरवराः सुरशैलमूर्ध्नि।
कल्याण-मीप्सुरह-मक्षत तोय पुष्पैः।
सम्भावयामि पुर एव तदीय-बिम्बम्॥6॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं श्रीवर्णे प्रतिमा स्थापनम् करोमि।
(यह पढ़कर श्रीवर्ण पर प्रतिमा स्थापन करना चाहिए)

सत्पल्लवार्चित-मुखान्-कलधौतरौप्य-
ताम्रारकूट-घटितान्पयसा सुपूर्णान्।
सम्वाह्यतामिव गतांश्चतुरः समुद्रान्,
संस्थापयामि कलशाञ्जिन वेदिकान्ते॥7॥

ॐ ह्रीं स्वस्तये चतुःकोणेषु कलश स्थापनं करोमि।

उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घकैः।
धवल मंगल गान-रवाकुले, जिनगृहे जिननाथ-महं यजे॥

ॐ ह्रीं श्री परमदेवाय अर्हत् परमेष्ठिने अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

दूरावनम्र सुरनाथ-किरीट-कोटी-
संलग्न-रत्न-किरणच्छवि-धूसराङ्घ्रिम्।
प्रस्वेद-ताप-मल-मुक्तिमपि प्रकृष्टैर्,
भक्त्या जलैर्जिनपतिं, बहुधाभिषिञ्चे॥8॥

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादि महावीर पर्यन्त चतुर्विन्शति तीर्थंकर परं देवं आद्यानामाद्ये-मध्यलोके-जम्बूद्वीपे-भरत क्षेत्रे-आर्य खण्डे-भारतदेशे...प्रदेशे...जिले...मासे...पक्षे...वासरे शुभदिने पौर्वाह्णिक समये मुन्यार्यिका श्रावक-श्राविकानां सकल कर्म क्षयार्थं जलेनाभिषिञ्चे नमः। (मुनि, आर्यिका, श्रावक-श्राविका जो तीर्थंकर भगवान के ऊपर जल की धारा देवें, देखें ताके कर्मन की क्षय।)

उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घकैः।
धवल मंगल गान-रवाकुले, जिनगृहे-जिननाथ महं यजे॥

ॐ ह्रीं अभिषेकान्ते वृषभादिवीरान्तेभ्यो अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

इष्टैर्मनोरथ-शतैरिव भव्य पुंसां,
पूर्णैः सुवर्ण कलशै-र्निखले-र्वसानैः।
संसार सागर-विलंघन, हेतु-सेतु-
माप्लावये त्रिभुवनैक-पतिं जिनेन्द्रम्॥9॥

(यहाँ चारों कलश से अभिषेक करें)

ॐ ह्रीं श्रीमन्तं भगवन्तं कृपालसन्तं वृषभादि महावीर पर्यन्त चतुर्विन्शति तीर्थंकर परं देवं आद्यानामाद्ये-मध्यलोके-जम्बूद्वीपे-भरत क्षेत्रे-आर्य खण्डे-भारतदेशे...प्रदेशे...जिले...मासे...पक्षे...वासरे शुभदिने पौर्वाह्णिक समये मुन्यार्यिका श्रावक-श्राविकानां सकल कर्म क्षयार्थं जलेनाभिषिञ्चे नमः।

(मुनि, आर्यिका, श्रावक-श्राविका जो तीर्थंकर भगवान के ऊपर जल की धारा देवें देखें ताके कर्मन की क्षय।)

पानीय-चंदन-सदक्षत-पुष्प पुंज,
नैवेद्य-दीपक-सुधूप-फल ब्रजेन।
कर्माष्टकं कथन वीर-मनंत शक्तिं,
संपूजयामि महसा महसां निधानम्॥

ॐ ह्रीं अभिषेकान्तेवृषभादिवीरान्तेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नत्वा-मुहुर्निज करै-रमृतोपमेयैः,
स्वच्छै-र्जिनेन्द्र तव चन्द्र करावदातैः।
शुद्धांशुकेन विमलेन नितांतरम्ये,
देहे स्थितान् जलकणान् परिमार्जयामि॥

ॐ ह्रीं अमलांशुकेनजिनबिम्ब मार्जनं करोमि।

उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घकैः।
धवल मंगल गान-रवाकुले, जिनगृहे जिननाथ-महं यजे॥

ॐ ह्रीं सिंहासन स्थित अर्हत् देवाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(इतिश्री लघुअभिषेक पाठ)

वृहद् शांतिधारा

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं ऐं अर्हं वं मं हं सं तं पं वं वं मं मं हं हं सं सं तं तं पं पं झं झं झ्वीं झ्वीं क्ष्वीं क्ष्वीं द्रां द्रां द्रीं द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते! ॐ ह्रीं क्रों अस्माकं पापं खंडय खंडय हन हन दह दह पच पच पाचय पाचय। ॐ नमो अर्हन् झं झ्वीं क्ष्वीं हं सं झं वं ह्लः पः हः क्षां क्षीं क्षूं क्षें क्षैं क्षों क्षौं क्षं क्षः क्ष्वीं ह्लां ह्लीं ह्लूं ह्लें ह्लैं ह्लौं ह्लं ह्लः द्रां द्रीं द्रावय द्रावय नमोऽर्हते भगवते श्रीमते ठः ठः अस्माकं श्रीरस्तु वृद्धिरस्तु तुष्टिरस्तु पुष्टिरस्तु शांतिरस्तु कांतिरस्तु कल्याणमस्तु स्वाहा। एवं अस्माकं कार्य सिद्ध्यर्थं सर्वविघ्न निवारणार्थं श्रीमद्भगवदर्हत्सर्वज्ञ परमेष्ठि परम पवित्राय नमोनमः। अस्माकं श्री शांति भट्टारक पाद पद्मप्रसादात् सद्धर्म श्रीबलायुरारोग्यैश्वर्याभि वृद्धिरस्तु

सद्धर्म स्वशिष्य परशिष्य वर्गाः प्रसीदन्तु नः।

ॐ श्रीं वृषभादि वर्द्धमान पर्यन्ताश्चतुर्विंशत्यर्हन्तो भगवन्तः सर्वज्ञाः परममंगल नामधेयाः अस्माकं इहामुत्र च सिद्धिं तन्वन्तु सद्धर्म कार्येषु इहामुत्र च सिद्धिं प्रयच्छंतु नः।

ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते श्रीमत्पार्श्वतीर्थंकराय श्री मद्रत्नत्रयरूपाय दिव्यतेजोमूर्तये प्रभामण्डल मंडिताय द्वादशगण सहिताय अनन्तचतुष्टय-सहिताय समवशरण केवलज्ञानलक्ष्मी शोभिताय अष्टादशदोष रहिताय षट् चत्वारिंशत् गुण-संयुक्ताय परमेष्ठि पवित्राय सम्यग्ज्ञानाय स्वयंभुवे सिद्धाय बुद्धाय परमात्मने परम सुखाय त्रैलोक्य महिताय अनन्तसंसार-चक्रप्रमर्दनाय अनन्तज्ञान दर्शन वीर्यसुखास्पदाय त्रैलोक्य वशंकराय सत्यज्ञानाय मुनि आर्यिका श्रावक श्राविका प्रमुख चतु:संघोपसर्ग विनाशनाय घातिकर्मक्षयंकराय अजराय अभवाय अस्माकं व्याधिंघ्नन्तु। श्री जिन पूजन प्रसादात् सर्वदोषरोग शोकभय पीडा विनाशनं भवतु।

ॐ नमोऽर्हते भगवते प्रक्षीणाशेष दोषकल्मषाय दिव्यतेजोमूर्तये श्री शांतिनाथाय शांतिकराय सर्वविघ्न प्रणाशनाय सर्व रोगाप-मृत्यु विनाशनाय सर्व परकृत क्षुद्रोपद्रव विनाशनाय सर्वक्षामडामर विनाशनाय सर्वारिष्ट शांतिकराय ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः असिआउसा अस्माकं सर्वविघ्न शांतिं कुरु कुरु तुष्टिं पुष्टिं कुरु कुरु स्वाहा। **अस्माकं कामं** छिंद छिंद भिंद भिंद। **रतिकामं** छिंद छिंद भिंद भिंद। **बलिकामं** छिंद छिंद भिंद भिंद। **क्रोधं पापं बैरं च** छिंद छिंद भिंद भिंद। **अग्निवायुभयं** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्वविघ्नं** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्वोपसर्गं** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्वराज्यभयं** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्व चौरदुष्टभयं** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्व सर्पवृश्चिकसिंहादिभयं** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्वग्रहभयं** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्व दोषं व्याधिं डामरं च** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्व परमंत्रं** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्वात्मघातं परघातं च** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्व शूलरोगं**

कुक्षिरोगं अक्षिरोगं शिरोरोगं ज्वररोगं च छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्व नरमारिं** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्व गजाश्वगोमहिष अजमारिं** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्व-शस्य धान्य वृक्षलता गुल्म पत्र पुष्प फल मारिं** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्व राष्ट्रमारिं** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्व विषमारिं** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्व क्रूरबेताल शाकिनी-डाकिनीभयानि** छिंद छिंद भिंद भिंद। सर्व वेदनीयं छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्व मोहनीयं** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्वापस्मारिं** छिंद छिंद भिंद भिंद। **अस्माकं अशुभकर्मजनित दुःखानि** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्व दुष्टजनकृतान् मंत्र तंत्र दृष्टिमुष्टि छल छिद्र दोषान** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्व दुष्ट देवदानव-वीरनरनाहरसिंह योगिनीकृतदोषान्** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्वाष्ट कुलीनागजनित विषभयानि** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्वस्थावर जंगम वृश्चिक सर्पादिकृत दोषान्** छिंद छिंद भिंद भिंद। **सर्व सिंहाष्टापदादिकृतदोषान्** छिंद छिंद भिंद भिंद। **परशत्रुकृत-मारणोच्चाटन-विद्वेषण-मोहन वशीकरणादि दोषान्** छिंद छिंद भिंद भिंद।

ॐ ह्रीं अस्मभ्यं चक्र विक्रमसत्वतेजोबल शौर्यवीर्य शांतिः पूरय पूरय। सर्वजीवानंदनं जनानंदनं भव्यानंदनं गोकुलानंदनं च कुरु कुरु। सर्व राजानंदनं कुरु कुरु। सर्व ग्राम नगर खेटकर्वट मटंब द्रोणमुखसंवाहनानंदनं कुरु कुरु। सर्वानंदनं कुरु कुरु स्वाहा।

यत्सुखं त्रिषु लोकेषु व्याधिर्व्यसनवर्जितं।

अभयं क्षेममारोम्यं स्वस्तिरस्तु विधीयते।।

श्रीशांतिरस्तु! शिवमस्तु! जयोऽस्तु! नित्यमारोग्यमस्तु! अस्माकं पुष्टिरस्तु! समृद्धिस्तु! कल्याणमस्तु! सुखमस्तु! अभिवृद्धिरस्तु! दीर्घायुरस्तु! कुलगोत्रधन धान्यं सदास्तु! श्री सद्धर्म बलायुरारोग्यैश्वर्याभि वृद्धिरस्तु।

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं अर्हं असिआउसा अनाहत विद्यायै णमो अरहंताणं ह्रौं सर्व शांतिं कुरु कुरु स्वाहा।

आयुर्वल्ली विलासं सकल सुख फलैर्द्राघयित्वाश्वनल्पं।
धीरं वीरं शरीरं निरुपम-मुपनयत्वा-तनोत्वच्छ-कीर्तिं॥
सिद्धिं वृद्धिं समृद्धिं प्रथयतु तरणिः स्फूर्यदुच्चैः प्रतापं।
कांतिं शांतिं समाधिं वितरतु जगतामुत्तमा शांतिधारा॥

॥इति वृहद् शांतिधारा पाठ॥

लघु शान्तिधारा

ॐ नमः सिद्धेभ्यः। श्री वीतरागाय नमः। ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते श्री पार्श्वतीर्थंकराय, द्वादशगणपरिवेष्टिताय, शुक्लध्यान-पवित्राय, सर्वज्ञाय स्वयंभुवे, सिद्धाय, बुद्धाय, परमात्मने, परमसुखाय, त्रैलोक्य महीव्याप्ताय, अनंत संसारचक्र परिमर्दनाय, अनंत दर्शनाय, अनंत ज्ञानाय, अनन्त वीर्याय, अनन्त सुखाय सिद्धाय, बुद्धाय, त्रैलोक्यवशंकराय, सत्यज्ञानाय, सत्यब्रह्मणे धरणेन्द्रफणा-मण्डलमण्डिताय, ऋष्यार्यिका - श्रावक - श्राविका प्रमुख-चतुस्संघोपसर्ग विनाशनाय, घातिकर्म-विनाशनाय, अघातिकर्म-विनाशनाय, (शांतिधारा कर्ता का नाम) **अपवादं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **मृत्युं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **अतिकामं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **रतिकामं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **क्रोधं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **अग्निं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वशत्रुं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वोपसर्गं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वविघ्नं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वभयं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वराज्यभयं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वचोरभयं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वदुष्टभयं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वमृगभयं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि

भिन्धि। **सर्वपरमंत्रं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वशूलरोगं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वक्षयरोगं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वकुष्टरोगं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वक्रूररोगं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वनरमारीं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्व गजमारीं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वाश्वमारीं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वगोमारीं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वमहिषमारीं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्व धान्यमारीं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्ववृक्षमारीं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वगुल्ममारीं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्व पुष्पमारीं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वफलमारीं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्वराष्ट्रमारीं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्व देशमारीं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्व विषमारीं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्व वेताल-शाकिनीभयं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्व वेदनीयं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्व मोहनीयं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि। **सर्व कर्माष्टकं** छिन्धि छिन्धि भिन्धि भिन्धि।

ॐ सुदर्शन-महाराज-चक्रविक्रमतेजोबलशौर्यवीर्यशांतिं कुरु-कुरु। सर्व जनानंदनं कुरु कुरु। सर्व भव्यानंदनं कुरु कुरु। सर्व गोकुलानन्दनं कुरु कुरु। सर्व ग्रामनगर-खेटकर्वटमटंबपत्तणद्रोणमुख संवाहनानंदनं कुरु कुरु। सर्व लोकानन्दनं कुरु कुरु। सर्व देशानन्दनं कुरु कुरु। सर्व यजमानानन्दनं कुरु कुरु। सर्व दुःखं, हन-हन, दह-दह, पच-पच, कुट-कुट, शीघ्रं-शीघ्रं।

यत्सुखं त्रिषु लोकेषु व्याधिर्व्यसनवर्जितं।
अभयं क्षेममारोग्यं स्वस्तिरस्तु विधीयते॥

शिवमस्तु! कुल-गोत्र-धन-धान्यं सदास्तु।
चन्द्रप्रभ-वासूपूज्य-मल्लि-वर्द्धमान-पुष्पदन्त-शीतल-
मुनिसुव्रत-नेमिनाथ-पार्श्वनाथ इत्येभ्यो नमः।

(इत्यनेन मन्त्रेण नवग्रह शान्त्यर्थं गंधोदक धारा वर्षणं)

श्रीशांतिरस्तु, शिवमस्तु, जयोऽस्तु, नित्यमारोग्यमस्तु, सर्वेषां पुष्टिरस्तु, तुष्टिरस्तु, समृद्धिरस्तु, कल्याणमस्तु, सुखमस्तु, अभिवृद्धिरस्तु, कुलगोत्र धन धान्यं सदास्तु, श्री सद्धर्म बल आयुः आरोग्य ऐश्वर्य अभिवृद्धिरस्तु।

ॐ ह्रीं अर्हं णमो सम्पूर्ण कल्याण मंगल रूप मोक्ष पुरुषार्थश्च भवतुः। ॐ नमोऽर्हते भगवते श्रीमते प्रक्षीणाशेष दोष कल्मषाय दिव्यतेजो मूर्तये श्री शान्तिनाथाय शान्तिकराय सर्व विघ्न प्रणाशनाय सर्व रोगापमृत्यु विनाशनाय सर्व परकृत क्षुद्रोपद्रव विनाशनाय, सर्वक्षाम-डामर विनाशनाय, ॐ ह्रां ह्रीं ह्रूँ ह्रौं ह्रः अ सि आ उ सा नमः सर्व देशस्य चतुर्विध संघस्य तथैव सर्व विश्वस्य तथैव मम (शांतिधारा कर्ता का नाम) सर्व शांतिं कुरु कुरु, तुष्टिं कुरु कुरु, पुष्टिं कुरु कुरु वषट् स्वाहा।

शान्तिः शिरोधृत जिनेश्वर शासनानां,
शान्तिः निरन्तर तपोभव भावितानां।
शान्तिः कषाय जय जृम्भित वैभवानां,
शान्तिः स्वभाव महिमान-मुपागतानां॥

संपूजकानां प्रतिपालकानां, यतीन्द्र सामान्य तपोधनानाम्।
देशस्य राष्ट्रस्य पुरस्य राज्ञः, करोतु शांतिं भगवान् जिनेन्द्रः॥

अर्घ

उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घकैः।
धवल मंगल गान-रवाकुले, जिनगृहे जिननाथ-महं यजे॥

ॐ ह्रीं श्री परमदेवाय शान्तिधारा अभिषेकान्ते अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

(इतिश्री लघुशांतिधारा)

निर्मलं निर्मली करणं पवित्रं पाप नाशनम्।
जिन गंधोदकं वंदे, अष्ट कर्म विनाशम्॥

पंच परमेष्ठी आरती

(रचयिता-आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज)

बाजे छम छम छम छमाछम बाजे घुँघरू-बाजे घुँघरू,
हाथों में दीपक लेके आरती करूँ।

पहली आरति अरिहंताणं-2
कर्म घतिया चउ नासाणं-2
चारों गुण पाने गुण वंदना करुँ, हाथों में...।

दूसरी आरति सिरि सिद्धाणं-2
पाने मुक्तिफलं निव्वाणं-2
आठों गुण पाने गुण वंदना करुँ, हाथों में...।

तीसरी आरति आइरियाणं-2
पंचाचार निपुण समणाणं-2
बोधि गुण पाने गुण वंदना करुँ, हाथों में...।

चौथी आरति उवज्झायाणं-2
पच्चिस गुण धारी अप्पाणं-2
ज्ञान गुण पाने गुण वंदना करुँ, हाथों में...।

पाँचवीं आरति सव्व साहूणं-2
ज्ञान ध्यान तप लीन गुरुणं-2
समता गुण पाने गुण वंदना करुँ, हाथों में...।

बाजे छम छम छम छमाछम बाजे घुँघरू-बाजे घुँघरू,
हाथों में दीपक लेके आरती करूँ।

श्री चौबीस तीर्थंकर आरती

करहुँ आरती आज जिनेश्वर, तुम्हरे द्वारे।
तुम्हरे द्वारे स्वामी, तुम्हरे द्वारे।
ऋषभ, अजित, संभव जिन स्वामी....
अभिनन्दन महाराज ! जिनेश्वर तुम्हरे द्वारे।

करहुँ आरती आज...।।1।।

सुमति, पदम, सुपार्श्व, जिन स्वामी....
चन्द्रप्रभु महाराज! जिनेश्वर तुम्हरे द्वारे।

करहुँ आरती आज...।।2।।

पुष्पदन्त, शीतल, श्रेयांस प्रभु....
वासुपूज्य महाराज, जिनेश्वर तुम्हरे द्वारे।

करहुँ आरती आज...।।3।।

विमल, अनंत, धर्म जिन स्वामी....
शान्तिनाथ महाराज! जिनेश्वर तुम्हरे द्वारे।

करहुँ आरती आज...।।4।।

कुंथु, अरह, मल्लि जिन स्वामी....
मुनिसुव्रत महाराज! जिनेश्वर तुम्हरे द्वारे।

करहुँ आरती आज...।।5।।

नमि-नेमी श्री पार्श्वनाथ जी....
वर्धमान महाराज, जिनेश्वर तुम्हरे द्वारे।
करहुँ आरती आज...।।6।।

कितना प्यारा तेरा द्वारा...

(रचयिता-आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज)

कितना प्यारा तेरा द्वारा, यहीं गुजारूँ जीवन सारा।
तेरे दरस की लगन से, हमें आना पड़ेगा इस दर पे दुबारा॥

तीन भुवन के तुम हो स्वामी, कहलाते हो अन्तर्यामी।
दे दो मुक्ति द्वारा...
भविजन की पीड़ा हरते हो, प्रभु अपने जैसा करते हो।
करुणा भाव अपारा...
जिसने तुमको उर से ध्याया, कर्म बंध को शीघ्र नशाया।
ऐसा ध्यान तुम्हारा...
चरण-शरण में जो भी आते, विघ्न रोग क्षण में नश जाते।
देते जगत किनारा...
पतितों को पावन करते हो, जन्म-जरा-मृत्यु हरते हो।
तेरी अनुपम धारा...
मेरी बिगड़ी जल्द बनाओ, मुझको अपने पास बुलाओ।
अंजन को जब तारा...
भवसागर से पार लगाते, खेवटिया प्रभु तुम कहलाते।
यह उपकार तुम्हारा...
वीतरागता हमें दिला दो, मेरा मुझसे मिलन करा दो।
तू ही हमको प्यारा...
छवि तुम्हारी बस गई मन में, अच्छा लगता है पूजन में।
तू ही मेरा सहारा...
घर में मन न लगता मेरा, दर्श चाहता हरपल तेरा।
मन में यही विचारा...
रात-रात भर नींद न आती, सपनों में पूजा हो जाती।

ऐसा तेरा नजारा...
सदा अमंगल हरने वाले, जीवन मंगल करने वाले।
तुम बिन नहीं गुजारा...
भक्त सभी कहते हैं सच्चे, कमलासन पर लगते अच्छे।
सुन्दर रूप तुम्हारा...
बार-बार हम उठ-उठ जायें, घड़ी पे अपनी नजर टिकायें।
जल्दी हो उजियारा...
विनय पाठ में ध्यान लगाया, तुमको नाथ हृदय में पाया।
कल भी आऊँ दुबारा...
इतनी सुन्दर काया तेरी, हो जायेगी जलकर ढेरी।
तूने कभी विचारा...

कतरो छोको थाँको बारणो...

(सुश्री खुशबू जैन, सोनू जैन, रामगंजमण्डी)

कतरो छोको थाँको बारणो, अठीज् गुजारूँ जीवन सारो,
थाकाँ दरस की लगन सू,
म्हान आणो पड़ेगो, थाकाँ बारणा प पाछो।
म्हारी बिगड़ी बेगि बनाओ, म्हान थाँक गोड़ बुलाओ,
अंजन कू जब तार्यो,
म्हान आणो पड़ेगो, थाकाँ बारणा प पाछो।
थासँ अब मूँ काय न छाऊँ, आखा जनम थाकाँ दर्शन पाऊँ,
तू ही जगत को तड़को,
म्हान आणो पड़ेगो, थाँका बारणा प पाछो।
म्हारी नैया पार लगाओ, म्हान थाँक गोड़ बुलाओ,
तू ही म्हान प्यारो,

म्हान आणो पड़ेगो, थाकाँ बारणा प पाछो।
वीतरागता म्हाने दिला दो, म्हाको थासूं मेल करा दो,
थाँन सबकूं तार्यो,
म्हान आणो पड़ेगो, थाकाँ बारणा प पाछो।
नहीं लाग मन म्हारो घर म, छोको लाग छ पूजन म,
दे दो जगत कनारो,
म्हान आणो पड़ेगो, थाकाँ बारणा प पाछो।
दन भर थाँकी याद सताव, छवि थाकी कालजा म आव,
थाँ ही म्हाका सहारो,
म्हान आणो पड़ेगो, थाकाँ बारणा प पाछो।
रात रात भर आख्या न मूँदू, स्वप्ना म पूजा कर लू छूं,
असो छ थाँको मुंडो,
म्हान आणो पड़ेगो, थाकाँ बारणा प पाछो।
बार बार मूं उठ-उठ जाऊँ, घड़ी प म्हारी नजर टिकाऊँ,
बेगो होव तड़को,
म्हान आणो पड़ेगो, थाकाँ बारणा प पाछो।

विनय पाठ

इह विधि ठाड़ो होय के, प्रथम पढ़ै जो पाठ।
धन्य जिनेश्वर देव तुम, नाशे कर्म जु आठ॥1॥
अनन्त चतुष्टय के धनी, तुम ही हो सिरताज।
मुक्तिवधु के कन्त तुम, तीन भुवन के राज॥2॥
तिहुँ जग की पीड़ा हरन, भवदधि शोषणहार।
ज्ञायक हो तुम विश्व के, शिव सुख के करतार॥3॥
हरता अघ अँधियार के, करता धर्म प्रकाश।
थिरता पद दातार हो, धरता निज गुण रास॥4॥

धर्मामृत उर जलधिसों, ज्ञान-भानु तुम रूप।
तुमरे चरण सरोज को, नावत तिहुँ जग भूप॥5॥
मैं बन्दौं जिनदेव को, कर अति निर्मल भाव।
कर्मबंध के छेदने, और न कछु उपाव॥6॥
भविजन को भवकूपतैं, तुमही काढ़नहार।
दीनदयाल अनाथपति, आतम गुण भण्डार॥7॥
चिदानन्द निर्मल कियो, धोय कर्म रज मैल।
सरल करी या जगत में, भविजन को शिव गैल॥8॥
तुम पद-पंकज पूजतैं, विघ्न रोग टर जाय।
शत्रु मित्रता को धरैं, विष निरविषता थाय॥9॥
चक्री खगधर इन्द्रपद, मिलैं आपतैं आप।
अनुक्रम कर शिवपद लहैं, नेम सकल हनि पाप॥10॥
तुम बिन मैं व्याकुल भयो, जैसे जल बिन मीन।
जन्म जरा मेरी हरो, करो मोहि स्वाधीन॥11॥
पतित बहुत पावन किये, गिनती कौन करेव।
अंजन से तारे कुधी, जय जय जय जिनदेव॥12॥
थकी नाव भवदधि विषैं, तुम प्रभु पार करेव।
खेवटिया तुम हो प्रभु, जय जय जय जिनदेव॥13॥
राग सहित जग में रुल्यो, मिले सरागी देव।
वीतराग भैट्यों अबै, मैंटो राग कुटेव॥14॥
कित निगोद कित नारकी, कित तिर्यंच अज्ञान।
आज धन्य मानुष भयो, पायो जिनवर थान॥15॥
तुमको पूजैं सुरपति, अहिपति नरपति देव।
धन्यभाग्य मेरो भयो, करन लग्यो तुम सेव॥16॥
अशरण के तुम शरण हो, निराधार आधार।
मैं डूबत भव सिन्धु में, खेव लगाओ पार॥17॥

इन्द्रादिक गणपति थके, कर विनती भगवान।
अपनो विरद निहारकैं कीजै आप समान॥18॥
तुमरी नेक सुदृष्टितैं, जग उतरत है पार।
हा हा डूबो जात हों, नेक निहार निकार॥19॥
जो मैं कहहूँ और सों, तो न मिटै उरझार।
मेरी तो तोसों बनी, तातैं करौं पुकार॥20॥
बन्दों पाँचों परम गुरु, सुर गुरु वन्दत जास।
विघ्न हरन मंगल करन, पूरन परम प्रकाश॥21॥
चौबीसों जिनपद नमो, नमो शारदा माय।
शिवमग साधक साधु 'नमि', रच्यो पाठ सुखदाय॥22॥
मंगल मूरति परम पद, पंच धरो नित ध्यान।
हरो अमंगल विश्व का, मंगलमय भगवान्॥23॥
मंगल जिनवर पद नमों, मंगल अर्हंत देव।
मंगलकारी सिद्ध पद, सो वन्दों स्वयमेव॥24॥
मंगल आचारज मुनी, मंगल गुरु उवझाय।
सर्व साधु मंगल करो, वन्दों मन वच काय॥25॥
मंगल सरस्वति मात का, मंगल जिनवर धर्म।
मंगलमय मंगल करो, हरो असाता कर्म॥26॥
या विधि मंगलकरन से, जग में मंगल होत।
मंगल नाथूराम यह, भवसागर दृढ़ पोत॥27॥

पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि
(कायोत्सर्गं करोम्यहम्)

आत्म कीर्तन

हूँ स्वतन्त्र निश्चल निष्काम, ज्ञाता दृष्टा आतमराम। टेक।
मैं वह हूँ जो हैं भगवान, जो मैं हूँ वह हैं भगवान।
अन्तर यही ऊपरी जान, वे विराग यहँ राग-वितान॥1॥
मम स्वरूप है सिद्ध समान, अमित शक्तिसुख-ज्ञान निधान।
किन्तु आश वश खोया ज्ञान, बना भिखारी निपट अजान॥2॥
सुख-दुख-दाता कोई न आन, मोह राग रुष दुख की खान।
निज को निज, पर को पर जान, फिर दुख का नहिं लेशनिशान॥3॥
जिन, शिव, ईश्वर, ब्रह्मा, राम, विष्णु, बुद्ध, हरि जिसके नाम।
राग त्याग पहुँचुँ निज धाम, आकुलता का फिर क्या काम॥4॥
होता स्वयं जगत-परिणाम, मैं जग का करता क्या काम।
दूर हटो पर-कृत परिणाम, ''सहजानन्द'' रहूँ अभिराम॥5॥

पूजा पीठिका

ॐ जय जय जय! नमोऽस्तु नमोऽस्तु नमोऽस्तु।
णमो अरिहंताणं, णमो सिद्धाणं, णमो आयरियाणं।
णमो उवज्झायाणं णमो लोए सव्व साहूणं॥1॥

ॐ ह्रीं अनादिमूलमंत्रेभ्यो नमः।

(पुष्पांजलिं क्षिपामि)

चत्तारि मंगलं-अरिहंता मंगलं, सिद्धा मंगलं, साहू मंगलं, केवलि पण्णत्तो धम्मो मंगलं। चत्तारिलोगुत्तमा-अरिहंता लोगुत्तमा, सिद्धा लोगुत्तमा, साहू लोगुत्तमा, केवलि पण्णत्तो धम्मो लोगुत्तमो। चत्तारि सरणं पव्वज्जामि-अरिहंते सरणं पव्वज्जामि, सिद्धे सरणं पव्वज्जामि, साहू सरणं पव्वज्जामि, केवलि पण्णत्तं धम्मं सरणं पव्वज्जामि।

ॐ नमोऽर्हते स्वाहा। (पुष्पाजलिं क्षिपामि)

मंगल विधान

अपवित्रः पवित्रो वा, सुस्थितो दुःस्थितोऽपि वा।
ध्यायेत्पञ्चनमस्कारं, सर्व पापैः प्रमुच्यते॥1॥

अपवित्रः पवित्रो वा, सर्वावस्थांगतोऽपि वा।
यः स्मरेत्परमात्मानं, स बाह्याभ्यन्तरे शुचिः॥2॥

अपराजित मंत्रोऽयं, सर्वविघ्न-विनाशनः।
मंगलेषु च सर्वेषु, प्रथमं मंगलं मतः॥3॥

एसो पंच णमोयारो, सव्वपावप्पणासणो।
मंगलाणं च सव्वेसिं, पढमं होई मंगलं॥4॥

अर्हमित्यक्षरं ब्रह्म-वाचकं परमेष्ठिनः।
सिद्धचक्रस्य सद्बीजं सर्वतः प्रणमाम्यहं॥5॥

कर्माष्टक-विनिर्मुक्तं मोक्षलक्ष्मी-निकेतनं।
सम्यक्त्वादिगुणोपेतं सिद्धचक्रं नमाम्यहं॥6॥

विघ्नौघाः प्रलयं यान्ति शाकिनीभूतपन्नगाः।
विषं निर्विषतां याति स्तूयमाने जिनेश्वरे॥7॥

(पुष्पाजलिं क्षिपामि)

पंचकल्याणक का अर्घ

उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घकैः।
धवल मंगल गान-रवाकुले, जिनगृहे कल्याण-महं यजे॥

ॐ ह्रीं श्री भगवतो गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान-निर्वाण पंचकल्याणकेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचपरमेष्ठि का अर्घ

उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घकैः।
धवल मंगल गान-रवाकुले, जिनगृहे जिननाथ-महं यजे॥
ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधुभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिनसहस्रनाम का अर्घ

उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घकैः।
धवल मंगल गान-रवाकुले, जिनगृहे जिननाम-महं यजे॥
ॐ ह्रीं श्री भगवज्जिन-अष्टाधिक सहस्रनामेभ्यो अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

जिनसूत्र का अर्घ

उदक-चंदन-तंदुल-पुष्पकैश्चरु-सुदीप-सुधूप-फलार्घकैः
धवल मंगल गान-रवाकुले, जिनगृहे जिनसूत्र-महं यजे॥
ॐ ह्रीं श्री जिनसूत्रेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

पूजा-प्रतिज्ञा-पाठ

श्रीमज्जिनेन्द्र - मभिवंद्य जगत्त्रयेशं,
स्याद्वाद - नायकमनंत - चतुष्टयार्हम्।
श्रीमूलसङ्घ - सुदृशां सुकृतैक - हेतुर्-
जैनेन्द्र-यज्ञ-विधिरेष मयाऽभ्यधायि॥1॥

स्वस्ति त्रिलोकगुरवे जिनपुङ्गवाय,
स्वस्ति-स्वभाव-महिमोदय-सुस्थिताय।
स्वस्ति प्रकाश-सहजोर्ज्जित-दृंग्मयाय,
स्वस्ति प्रसन्न-ललिताद्भुत-वैभवाय॥2॥

स्वस्त्युच्छलद्विमल-बोध-सुधाप्लवाय,
स्वस्ति स्वभाव-परभाव विभासकाय।
स्वस्ति त्रिलोक-विततैकचिदुद्गमाय,
स्वस्ति त्रिकाल-सकलायत-विस्तृताय॥3॥

द्रव्यस्य शुद्धिमधिगम्य यथानुरूपं,
भावस्य शुद्धि-मधिकामधि-गंतुकामः।
आलंबनानि विविधान्यवलम्ब्य वल्गन्,
भूतार्थयज्ञ-पुरुषस्य करोमि यज्ञं॥4॥

अर्हत्पुराण - पुरुषोत्तम पावनानि,
वस्तून्यनून - मखिलान्यय-मेकएव।
अस्मिन्ज्वलद्विमल - केवल - बोधवह्नौ,
पुण्यं समग्र - महमेकमना जुहोमि॥5॥

ॐ ह्रीं विधियज्ञ-प्रतिज्ञानाय जिनप्रतिमाग्रे पुष्पांजलिं क्षिपामि।

स्वस्ति मंगल पाठ

श्री वृषभो नः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अजितः।
श्री संभवः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अभिनन्दनः।
श्री सुमतिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री पद्मप्रभः।
श्री सुपार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्री चन्द्रप्रभः।
श्री पुष्पदन्तः स्वस्ति, स्वस्ति श्री शीतलः।
श्री श्रेयांसः स्वस्ति, स्वस्ति श्री वासुपूज्यः।
श्री विमलः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अनन्तः।
श्री धर्मः स्वस्ति, स्वस्ति श्री शान्तिः।
श्री कुन्थुः स्वस्ति, स्वस्ति श्री अरनाथः।
श्री मल्लिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री मुनिसुव्रतः।
श्री नमिः स्वस्ति, स्वस्ति श्री नेमिनाथः।
श्री पार्श्वः स्वस्ति, स्वस्ति श्री वर्द्धमानः॥

इति जिनेन्द्र स्वस्तिमंगलविधानम्। (पुष्पांजलिं क्षिपामि)

परमर्षिस्वस्ति-मंगल

नित्याप्रकम्पाद्‌भुत-केवलौघाः, स्फुरन्मनः पर्यय-शुद्धबोधाः।
दिव्यावधिज्ञानबलप्रबोधाः, स्वस्तिक्रियासुः परमर्षयो नः ॥1॥

कोष्ठस्थ-धान्योपममेकबीजं, संभिन्न-संश्रोतृ-पदानुसारि।
चतुर्विधंबुद्धिबलं दधानाः, स्वस्तिक्रियासुः परमर्षयो नः ॥2॥

संस्पर्शनं संश्रवणं च दूरा—दास्वादन घ्राण-विलोकनानि।
दिव्यान्मतिज्ञानबलाद्वहंतः, स्वस्तिक्रियासुः परमर्षयो नः ॥3॥

प्रज्ञा-प्रधानाः श्रमणाः समृद्धाः, प्रत्येकबुद्धाः दशसर्वपूर्वैः।
प्रवादिनोऽष्टाङ्गनिमित्तविज्ञाः, स्वस्तिक्रियासुः परमर्षयो नः ॥4॥

जंघानल-श्रेणि-फलाम्बु-तंतु, प्रसून-बीजांकुर-चारणाह्वाः।
नभोऽङ्गण-स्वैर-विहारिणश्च, स्वस्तिक्रियासुः परमर्षयो नः ॥5॥

अणिम्निदक्षाः कुशलामहिम्नि, लघिम्निशक्ताः कृतिनोगरिम्णि।
मनोवपुर्वाग्बलिनश्चनित्यं, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥6॥

सकामरूपित्ववशित्वमैश्यं, प्राकाम्यमंतर्द्धिमथाप्तिमाप्ताः।
तथाऽप्रतीघातगुणप्रधानाः, स्वस्तिक्रियासुः परमर्षयो नः ॥7॥

दीप्तं च तप्तं च तथा महोग्रं घोरं तपो घोरपराक्रमस्थाः।
ब्रह्मापरं घोरगुणाश्चरंतः, स्वस्तिक्रियासुः परमर्षयो नः ॥8॥

आमर्षसर्वौषधयस्तथाशी-र्विषाविषा-दृष्टिविषाविषाश्च।
सखिल्ल-विड्जल्लमलौषधीशाः, स्वस्ति क्रियासुःपरमर्षयो नः ॥9॥

क्षीरं स्रवंतोऽत्र घृतं स्रवन्तो, मधुस्रवन्तोऽप्यमृतं स्रवन्तः।
अक्षीणसंवासमहानसाश्च, स्वस्ति क्रियासुः परमर्षयो नः ॥10॥

इति परम-ऋषि स्वस्ति मंगल विधानं

(पुष्पांजलिं क्षिपामि)

(कायोत्सर्गं करोम्यहम्)

सम्यग्दर्शन पाऊँ, प्रभु जी तेरी पूजा में।
तेरे गुण को गाऊँ, प्रभु जी तेरी पूजा में।
तेरा ध्यान लगाऊँ, प्रभु जी तेरी पूजा में।
अष्ट दरब को लाऊँ, प्रभु जी तेरी पूजा में।
रत्नत्रय को भाऊँ, प्रभु जी तेरी पूजा में।
तुमसे मिलने आऊँ, प्रभु जी तेरी पूजा में।
निज में निज को पाऊँ, प्रभु जी तेरी पूजा में।
आठों कर्म नशाऊँ, प्रभु जी तेरी पूजा में।
गुल सा खिलने आऊँ, प्रभु जी तेरी पूजा में।
तुम सा रूप बनाऊँ, प्रभु जी तेरी पूजा में।

देव-शास्त्र-गुरु पूजा

(कवि द्यानतराय कृत)

प्रथम देव अरिहंत सुश्रुत सिद्धान्तजू,
गुरु निर्ग्रन्थ महन्त मुकतिपुर पंथजू।
तीन रतन जग माँहि सो ये भवि ध्याइये,
तिनकी भक्ति प्रसाद परम पद पाइये॥1॥
पूजों पद अरिहंत के, पूजों गुरुपद सार।
पूजों देवी सरस्वती, नित प्रति अष्ट प्रकार॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरु समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरु समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरु समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

(पुष्पांजलिं क्षिपामि)

सुरपति उरग नरनाथ तिनकर, वंदनीक सुपदप्रभा।
अति शोभनीक सुवर्ण उज्जवल, देखि छवि मोहित सभा॥

वर नीर क्षीर समुद्र घट भरी, अग्र तसु बहुविधि नचूँ।
अरिहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु, निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
बहु तृषा सतायो, अति दुख पायो, तुमपै आयो जल लायो।
उत्तम गंगाजल, शुचि अतिशीतल, प्रासुक निर्मल गुन गायो॥
प्रभु अन्तरयामी, त्रिभुवन नामी, सबके स्वामी दोष हरो।
मेरी अरज सुनीजै, ढील न कीजै, न्याय करीजै, प्रभु दया करो॥
मलिन वस्तु हर लेत सब, जल स्वभाव मल छीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥1॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जे त्रिजग उदर मँझार प्राणी, तपत अति दुद्धर खरे।
तिन अहितहरन सुवचन जिनके, परम शीतलता भरे॥
तसु भ्रमर लोभित घ्राण पावन, सरस चंदन घिसि सचूँ।
अरिहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु—निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
अघ जपत निरंतर, अगनि पटंतर, मो उर अंतर खेद करौ।
लै बावन चंदन, दाह निकंदन, तुम पद वंदन हरष धरौ॥प्रभु॥
चन्दन शीतलता करै, तपत वस्तु परवीन।
जासों पूजों, परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥2॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः संसार-ताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

यह भव समुद्र अपार तारण के निमित्त सुविध ठही।
अति दृढ़ परमपावन जथारथ, भक्ति वर नौका सही॥
उज्ज्वल अखंडित सालि तंदुल, पुञ्ज धरि त्रयगुण जचूँ।
अरिहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु, निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
औगुन दुखदाता, कहो न जाता, मोहि असाता, बहुत करै।
तंदुल गुनमंडित अमल अखंडित, पूजत पंडित प्रीति धरै॥प्रभु.॥

तंदुल सालि सुगन्ध अति, परम अखंडित बीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥3॥
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

जे विनयवन्त सुभव्य उर, अंबुज प्रकाशन भानु हैं।
जे एक मुख चारित्र भाषित, त्रिजग माँहि प्रधान हैं॥
लहि कुन्द कमलादिक पहुप, भवभव कुवेदन सों बचूँ।
अरिहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
सुर-नर-पशुको दल, काम महाबल, बात कहत छल मोह लिया।
ता केशर लाऊँ, फूल चढ़ाऊँ, भक्ति बढ़ाऊँ खोल हिया॥प्रभु॥
विविध भाँति परिमल सुमन, भ्रमर जासु आधीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥4॥
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो काम बाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

अति सबल मदकन्दर्प जाको, क्षुधा उरग अमान है।
दुस्सह भयानक तासु नाशन को, सु गरुड़ समान है॥
उत्तम छहों रस युक्त नित, नैवेद्य करि घृत में पचूँ।
अरिहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
सब दोषन माँही, जा सम नाँही, भूख सदा ही मोय लागे।
सद्‌घेबर बाबर, लाडू बहुधर, थाल कनक भर तुम आगे॥प्रभु.॥
नानाविधि संयुक्तरस, व्यञ्जन सरस नवीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥5॥
ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जे त्रिजग उद्यम नाश कीने, मोहतिमिर महाबली।
तिहिं कर्मघाती ज्ञानदीप, प्रकाश ज्योति प्रभावली॥
इह भाँति दीप प्रजाल, कंचन के सुभाजन में खचूँ।

अरिहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
अज्ञान महातम, छाय रहौ मम, ज्ञान ढकौ हम दुःख पावैं।
तम मैंटन हारा, तेज अपारा, दीप सँवारा जस गावैं॥प्रभु.॥
स्वपर प्रकाशक ज्योति अति, दीपक तमकर हीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥6॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

जो कर्म-ईंधन दहन अग्नि, समूह सम उद्यत लसै।
वर धूप तासु सुगन्धिताकरि, सकल परिमलता हसै॥
इहि भाँति धूप चढ़ाय नित, भव-ज्वलन माँही नहिं पचूँ।
अरिहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
इह कर्म महावन, भूल रहो जन, शिवमारग नहिं पावत है।
कृष्णागर धूपं, अमल अनूपं, सिद्ध स्वरूपं ध्यावत है॥प्रभु.॥
अग्नि माँहि परिमल दहन, चन्दनादि गुणलीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥7॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

लोचन सु रसना घ्राण उर, उत्साह के करतार हैं।
मोपै न उपमा जाए वरणी, सकल फल गुणसार हैं॥
सो फल चढ़ावत अर्थपूरण, परम अमृतरस सचूँ।
अरिहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
सबतैं जोराबर, अन्तराय अरि, सुफल विघन करि डारत हैं।
फलपुंज विविधभर नयन मनोहर, श्रीजिनवरपदधारत हैं॥प्रभु.॥
जे प्रधान फल फलविषैं, पञ्चकरण रस लीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन॥8॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्व. स्वाहा।

जल परम उज्ज्वल गंध अक्षत, पुष्प चरु दीपक धरूँ।
वर धूप निर्मल फल विविध बहु जनम के पातक हरूँ॥
इह भाँति अर्घ चढ़ाय नित भवि, करत शिवपंकति मचूँ।
अरिहंत श्रुत सिद्धान्त गुरु-निर्ग्रन्थ नित पूजा रचूँ॥
आठों दुखदानी, आठ निशानी, तुम ढिंग आनि निवारन हो।
दीनन निस्तारन, अधम उधारन, 'द्यानत' तारन कारन हो ॥प्रभु. ॥
वसुविधि अर्घ संजोय के, अति उछाह मन कीन।
जासों पूजों परमपद, देव-शास्त्र-गुरु तीन ॥9॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

देव शास्त्र गुरु रतनशुभ, तीन रतनकरतार,
भिन्न-भिन्न कहुँ आरती, अल्प सुगुण विस्तार

पद्धरि छन्द

चउ कर्म की त्रेसठ प्रकृति नाशि, जीते अष्टादश दोषराशि।
जे परमसुगुण हैं अनंत धीर, कहवतके छ्यालिस गुण गंभीर ॥1॥
शुभ समवसरण शोभा अपार, शत इन्द्र नमत कर शीशधार।
देवाधिदेव अरिहंत देव, वन्दों मन-वच-तनकरि सुसेव ॥2॥
जिनकी ध्वनि है ओंकार रूप, निर अक्षरमय महिमा अनूप।
दशअष्ट महाभाषा समेत, लघुभाषा सात शतक सुचेत ॥3॥
सो स्याद्वादमय सप्त भङ्ग, गणधर गूँथे बारह सु अङ्ग।
रवि शशि न हरै सो तम हराय, सो शास्त्र नमूँ बहुप्रीति ल्याय ॥4॥
गुरु आचारज उवझाय साधु तन नगन रत्नत्रय निधि अगाध।
संसार देह वैराग्य धार, निरवांछि तपै शिवपद निहार ॥5॥
गुण छत्तिस पच्चिस आठ बीस, भवतारण-तरण जिहाज ईश।
गुरु की महिमा वरणी न जाये, गुरुनाम जपों मन-वचन-काय ॥6॥

सोरठा

कीजै शक्ति प्रमान, शक्ति बिना सरधा धरै।
'द्यानत' सरधावान, अजर-अमर-पद भोगवै॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घपदप्राप्तये महाऽर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जे नर परम सुभावन तैं पूजा करें,
हरि-हल-चक्री होंय राज्य छः खण्ड करें।
फेर होंय धरणेन्द्र इन्द्र पदवी धरें,
नानाविध सुख भोग बहुरि शिवतिय वरें॥

॥इत्याशीर्वादः, पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि॥

आनंद भारी आया, प्रभु जी तेरी पूजा में।
तेरा ध्यान लगाया, प्रभु जी तेरी पूजा में।
तेरे गुण को गाया, प्रभु जी तेरी पूजा में।
सम्यग्दर्शन पाया, प्रभु जी तेरी पूजा में।
तुमसे मिलने आया, प्रभु जी तेरी पूजा में।
निज में निज को पाया, प्रभु जी तेरी पूजा में।
तुमसा रूप बनाया, प्रभु जी तेरी पूजा में।

सुख शान्ति हेतु प्रतिदिन जाप करें

रविवार को—ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय नमः
सोमवार को—ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय नमः
मंगलवार को—ॐ ह्रीं श्री वासुपूज्य जिनेन्द्राय नमः
बुधवार को—ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय नमः
गुरुवार को—ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय नमः
शुक्रवार को—ॐ ह्रीं श्री पुष्पदन्त जिनेन्द्राय नमः
शनिवार को—ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय नमः

देव-शास्त्र-गुरु पूजा

(रचयिता-आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज)

हे आत्मज्ञ! सर्वज्ञ प्रभो! शुद्धात्मनिधि को प्रगटाया।
जड़द्रव्य-भाव नोकर्मों की, संतति को क्षण में विघटाया॥
जिनवाणी में सम्यक् तत्त्वों का, नित शीतल निर्झर झरता।
निर्ग्रंथ गुरु का शुभ दर्शन, अन्तरमन का कालुष हरता॥
शुभ तीन महानिधियों को पा, रत्नत्रय निधि प्रगटाऊँगा
श्री देवशास्त्र निर्ग्रंथ गुरु की, पूजा नित्य रचाऊँगा॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं। ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरु समूह! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

क्षीरोदधि से, गंगाजल से, तन को स्नान कराया है।
सम्यक्त्व शुद्धजल से अब तक, आतम को न नहलाया है॥
मिथ्यात्व असंयम भावों की, परिणति से मुक्त करो स्वामिन्।
निर्मल जल चरणों में अर्पित, हमको सम्यक्त्व वरो स्वामिन्॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलम् निर्वपामीति स्वाहा।

अब तक इन्द्रिय विषयों में ही, उपयोग मेरा रमता आया।
स्वामिन्! जड़ के आकर्षण से, चारों गति में भ्रमता आया॥
अब भेदज्ञान का चंदन ले, भवताप मिटाने आया हूँ।
अशरीरी सिद्ध प्रभु जैसी, स्थिरता पाने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो, संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

भव-भव में पाये पद अनन्त, तृष्णा न शान्त हुई मेरी।
पद पा सोचूँ 'मैं भी कुछ हूँ', यह मिथ्या भ्रान्ति रही मेरी॥
अविनाशी अक्षय पद पाने, अक्षत का अर्घ्य चढ़ाता हूँ।
चैतन्यधाम में रहूँ सदा, नित यही भावना भाता हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

सुन्दर भोगों के ईंधन से, क्या काम अग्नि बुझ सकती है।
जितना ईंधन डालो इसमें, यह उतनी तेज धधकती है॥
हूँ चिदानंद चिद्रूप शुद्ध, निज ब्रह्मचर्य में वास करूँ।
चरणों में सुमन समर्पित हैं, इस कामभाव का नाश करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म असंख्य प्रदेशों से, शमरस के झरने झरते हैं।
पी तृप्त हुआ करते ज्ञानी, जो निज में सदा विचरते हैं॥
मैं क्षुधारोग से पीड़ित हूँ, उपचार कराने आया हूँ।
नैवेद्य समर्पित चरणों में, निज समरस पीने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म प्रकाशी ज्ञान दीप, समकित से ज्योतिर्मय होता।
मिथ्यात्व तिमिर के नशते ही, अनुभव शुद्धात्म प्रखर होता॥
निज द्रव्य और गुण पर्यय से, इक क्षण अभेदता प्राप्त करूँ।
ज्योतिर्मय दीप समर्पित है, दर्शन मोहान्ध समाप्त करूँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म तत्त्व में तन्मयता, निश्चय तप आग जलाती है।
तब सहज शुभाशुभ कर्मों की, कालुष उसमें जल जाती है॥
शुभ धूप दशांग चढ़ाता हूँ, मेरी शुध परिणति अन्वय हो।
कर्मों की कालुष जल जाये, शुद्धात्म तत्त्व में तन्मय हो॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म निराकुल सुख यह फल, शुद्धात्म ध्यान से फलता है।
निज वीतराग की परिणति से, यह मोक्ष महाफल मिलता है॥
अविनाशी ज्ञान शरीरी बन, निज में अनंत बल प्रगटाऊँ।
अर्पित करता फल चरणों में, निर्भार अतीन्द्रिय फल पाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो महामोक्ष–फलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज परम पारिणामिक स्वभाव, ज्ञायक होकर प्रगटाया है।
अरिहंत प्रभु की वाणी में, शुद्धात्म सार यह आया है।।
निज परम पारिणामिक स्वभाव, ऐसा अनर्घ्य पद मिल जाये।
शुभ अर्घ्य समर्पित करता हूँ, चेतन गुण बगिया खिल जाये।।

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दर्शन–ज्ञानोपयोग युगपत, तिहुँकालों सहज प्रवर्त्त रहा।
शुद्धात्म अतीन्द्रिय सुख प्रतिक्षण, नूतन–नूतन अनुवर्त्त रहा॥

सम्पूर्ण द्रव्य–सहभावी–गुण, उनकी क्रमवर्ती–पर्यायें।
परिपूर्ण ज्ञान में प्रतिबिम्बित, सम्बन्ध सहज ज्ञानी गायें॥

अविनाशी अनुपम अचल निधि, "श्री" अन्तरंग में हुई प्रगट।
जब कर्म घातिया नष्ट हुए, थी इनकी भी सामर्थ्य विकट॥

शुद्धात्म ध्यान की ले कुठार, संवर जब–जब आगे आता।
आस्रव के पैर ठिठक जाते, निर्जरा तत्त्व हँसकर जाता॥

शुद्धात्म ध्यान तप की महिमा, प्रभु सहज आपने पाई है।
शुद्धात्म ध्यान मैं भी पाऊँ, मन में प्रभु यही समाई है।।

निज ज्ञायक प्रभु की प्रभुता को, ज्ञायक बनकर ही पाऊँगा।
शुद्धात्म प्रदेशों का अमृत, पीकर अमूर्त प्रगटाऊँगा॥

हूँ चिदानन्द चैतन्यप्रभु, यह बात आपने बतलाई।
शुद्धात्म सार का कथन जहाँ, वह जिनवाणी माँ कहलाई॥

प्रथमानुयोग, करणानुयोग, चरणानुयोग, में सार वही।
द्रव्यानुयोग जिसकी महिमा, कहता उसके अनुसार वही॥

स्याद्वादमयी जिनवाणी माँ, जो अनेकान्त को कहती है।
सच कहता प्रभु सच्ची श्रद्धा, मेरे अन्तस में रहती है॥

जिनवाणी माँ को पाकर ही, कलिकाल हुआ मंगल मेरा।
प्रभु आप विदेह विराजे हो, फिर भी सान्निध्य मुझे तेरा॥

जिनवाणी माँ के आश्रय से, निर्ग्रंथ गुरु का दर्शन है।
शुद्धात्मलीन इन श्रमणराज, चरणों का नित स्पर्शन है॥

चैतन्यराज की महिमा को, इन श्रमणराज ने जाना है।
शुद्धात्म सरोवर की निधियाँ, पाना यह मन में ठाना है॥

शुद्धात्म तत्त्व का कथन सार, श्री गुरु मुख से जब झरता है।
मन हिरण आत्म उपवन में तब, नित सहज कुलाँचें भरता है॥

हे तपोमूर्ति! निर्ग्रंथ गुरु, मेरा अन्तरतम दूर करो।
शुद्धात्म तत्त्व को प्राप्त करूँ, मन में भक्ति भरपूर करो॥

हे देव-शास्त्र निर्ग्रंथ गुरु, पूजन में हर्षित अन्तरमन।
सम्यक् 'विमर्श' नित शरण मिले, स्वीकारो बारम्बार नमन॥

ॐ ह्री श्री देवशास्त्रगुरुभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

प्रभु-पूजा प्रभु ध्यान से, हो निर्मल परिणाम।
स्वर्गादिक सुख भोगकर, मिले मोक्ष निष्काम।।

(परिपुष्पांजलि क्षिपामि)

देव-शास्त्र-गुरु पूजा
(श्री युगल जी कृत)

केवल-रवि-किरणों से जिसका, सम्पूर्ण प्रकाशित है अंतर।
उस श्री जिनवाणी में होता, तत्त्वों का सुन्दरतम दर्शन॥
सद्दर्शन-बोध-चरण-पथ पर, अविरल जो बढ़ते हैं मुनिगण।
उन देव परम आगम गुरु को, शत-शत वंदन शत-शत वंदन॥

ॐ ह्रीं श्रीदेवशास्त्रगुरु समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरु समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरु समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

इन्द्रिय के भोग मधुर विष सम, लावण्यमयी कंचन काया।
यह सब कुछ जड़ की क्रीड़ा है, मैं अब तक जान नहीं पाया॥
मैं भूल स्वयं के वैभव को, पर-ममता में अटकाया हूँ।
अब निर्मल सम्यक् नीर लिये, मिथ्या-मल धोने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा।

जड़ चेतन की सब परणति प्रभु! अपने अपने में होती है।
अनुकूल कहें प्रतिकूल कहें, यह झूठी मन की वृत्ति है॥
प्रतिकूल संयोगों में क्रोधित, होकर संसार बढ़ाया है।
संतप्त हृदय प्रभु! चंदन सम, शीतलता पाने आया है॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो संसारताप-विनाशनाय चंदनं निर्व. स्वाहा।

उज्ज्वल हूँ कुन्द धवल हूँ प्रभु! पर से न लगा हूँ किंचित् भी।
फिर भी अनुकूल लगे उन पर, करता अभिमान निरन्तर ही॥
जड़ पर झुकझुक जाता चेतन, की मार्दव की खंडित काया।
निज शाश्वत अक्षय निधि पाने, अब दास चरणरज में आया॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्व. स्वाहा।

यह पुष्प सुकोमल कितना है, तन में माया कुछ शेष नहीं।
निज अन्तर का प्रभु! भेद कहूँ उसमें ऋतुजा का लेश नहीं॥
चिंतन कुछ फिर संभाषण कुछ, क्रिया कुछ की कुछ होती है।
स्थिरता निज में पाऊँ प्रभु, जो अन्तर का कालुष धोती है॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्व. स्वाहा।
अब तक अगणित जड़ द्रव्यों से, प्रभु! भूख न मेरी शांत हुई।
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही॥
युग-युग से इच्छा-सागर में प्रभु! गोते खाता आया हूँ।
पंचेन्द्रिय मन के षट्रस तज, अनुपम रस पीने आया हूँ॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो क्षुधारोग-विनाशनाय नैवेद्यम् निर्व. स्वाहा।
जग के जड़ दीपक को अब तक, समझा था मैंने उजियारा।
झंझा के एक झकोरे में, जो बनता घोर तिमिर कारा॥
अतएव प्रभो! यह नश्वर दीप, समर्पण करने आया हूँ।
तेरी अन्तर लौ से निज अन्तर, दीप जलाने आया हूँ॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोहान्धकार-विनाशनाय दीपं निर्व. स्वाहा।
जड़कर्म घुमाता है मुझको, यह मिथ्या भ्रांति रही मेरी।
मैं रागी-द्वेषी हो लेता, जब परिणति होती जड़ केरी॥
यों भाव-करम या भाव-मरण, सदियों से करता आया हूँ।
निज अनुपम गंध अनल से प्रभु! परगंध जलाने आया हूँ॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अष्टकर्म-विनाशनाय धूपं निर्व. स्वाहा।
जग में जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है।
मैं आकुल-व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है॥
मैं शान्त निराकुल चेतन हूँ, है मुक्ति रमा सहचर मेरी।
यह मोह तड़ककर टूट पड़े, प्रभु! सार्थक फल पूजा तेरी॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व. स्वाहा।

क्षणभर निज रस को पी चेतन, मिथ्यामल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनंद अमृत पीता है॥
अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल रवि जगमग करता है।
दर्शन बल पूर्ण प्रकट होता, यह ही अर्हन्त अवस्था है॥
यह अर्घ समर्पण करके प्रभु! निज गुण का अर्घ बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सदृश्य प्रभु! अर्हन्त अवस्था पाऊँगा॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

स्तवन

भव वन में जी भर घूम चुका, कण-कण को जी भर-भर देखा।
मृग-सम मृगतृष्णा के पीछे, मुझको न मिली सुख की रेखा॥1॥
झूठे जग के सारे सपने, झूठी मन की सब आशायें।
तन-जीवन-यौवन अस्थिर है, क्षणभंगुर पल में मुरझाये॥2॥
सम्राट महाबल सेनानी, उस क्षण को टाल सकेगा क्या?
अशरण मृतकाया में हर्षित, निज जीवन डाल सकेगा क्या॥3॥
संसार महा दुख सागर के प्रभु! दुखमय सुख-आभासों में।
मुझको न मिला सुख क्षण भर भी, कंचन-कामिनी-प्रासादों में॥4॥
मैं एकाकी एकत्व लिए, एकत्व लिए सब ही आते।
तन-धन को साथी समझा था, पर ये भी छोड़ चले जाते॥5॥
मेरे न हुये ये मैं इनसे, अति भिन्न अखण्ड निराला हूँ।
निज में पर से अन्यत्व लिये, निज सम रस पीने वाला हूँ॥6॥
जिसके शृंगारों में मेरा, यह महँगा जीवन घुल जाता।
अत्यन्त अशुचि जड़ काया से, इस चेतन का कैसा नाता?॥7॥
दिन-रात शुभाशुभ भावों से, मेरा व्यापार चला करता।
मानस-वाणी अरु काया से, आश्रव का द्वार खुला रहता॥8॥
शुभ और अशुभ की ज्वाला से, झुलसा है मेरा अन्तस्तल।

शीतल समकित किरणें फूटें, संवर से जागे अन्तर्बल॥9॥
वह तप की शोधक वह्नि जगे, कर्मों की कड़ियां टूट पड़ें।
सर्वाङ्ग निजात्म प्रदेशों से, अमृत के निर्झर फूट पड़ें॥10॥
हम छोड़ चलें यह लोक तभी, लोकान्त विराजे क्षण में जा।
निज लोक हमारा वासा हो, शोकांत बनें फिर हमको क्या?॥11॥
जागे मम दुर्लभबोधि प्रभो! दुर्नयतम सत्वर टल जावे।
बस ज्ञाता-दृष्टा रह जाऊँ, मद-मत्सर-मोह विनश जावे॥12॥
चिर-रक्षक धर्म हमारा हो, हो धर्म हमारा चिर साथी।
जग में न हमारा कोई था, हम भी न रहे जग के साथी॥13॥
चरणों में आया हूँ प्रभुवर! शीतलता मुझको मिल जावे।
मुरझाई ज्ञान-लता मेरी, निज अन्तरबल से खिल जावे॥14॥
सोचा करता हूँ भोगों से, बुझ जाएगी इच्छा ज्वाला।
परिणाम निकलता है लेकिन, मानो पावक में घी डाला॥15॥
तेरे चरणों की पूजा से, इन्द्रिय-सुख की ही अभिलाषा।
अब तक न समझ ही पाया प्रभु! सच्चे सुख की भी परिभाषा॥16॥
तुम तो अविकारी हो प्रभुवर! जग में रहते जग से न्यारे।
अतएव झुके तव चरणों में, जग के माणिक-मोती सारे॥17॥
स्याद्वादमयी तेरी वाणी शुभनय के झरने झरते हैं।
इस पावन नौका पर लाखों, प्राणी भव-वारिधि तिरते हैं॥18॥
हे गुरुवर! शाश्वत-सुख-दर्शक, यह नग्न स्वरूप तुम्हारा है।
जग की नश्वरता का सच्चा, दिग्दर्शन करने वाला है॥19॥
जब जग विषयों में रचपचकर, गाफिल निद्रा में सोता हो।
अथवा यह शिव के निष्कंटक, पथ में विष-कंटक बोता हो॥20॥
हो अर्द्धनिशा का सन्नाटा, वन में वनचारी चरते हों।
तब शान्त निराकुल मानस तुम, तत्त्वों का चिंतन करते हो॥21॥
करते तप शैल नदी तट पर, तरुतल वर्षा की झड़ियों में।

समता-रस पान किया करते, सुख-दुख दोनों की घड़ियों में ॥22 ॥
अन्तरज्वाला हरती वाणी, मानों झड़ती हों फुलझड़ियाँ।
भव बन्धन तड़-तड़ टूट पड़ें, खिल जावें अन्तर की कलियाँ ॥23 ॥
तुमसा दानी क्या कोई हो, जग को दे दी जग की निधियाँ।
दिन-रात लुटाया करते हो, सम-शम की अविनश्वर मणियाँ ॥24 ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यो जयमालाये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे निर्मल देव! तुम्हें प्रणाम,
हे ज्ञानदीप आगम! प्रणाम।
हे शान्ति त्याग के मूर्तिमान,
शिवपथ-पंथी गुरुवर प्रणाम॥

इत्याशीर्वादः।
(पुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

बारह सभायें

पहली सभा—ऋद्धियों को धारण करने वाले गणधर आदि मुनिराज! **दूसरी सभा**—कल्पवासिनी देवियाँ, **तीसरी सभा**—आर्यिका, **चौथी सभा**-ज्योतिषी देवों की देवियाँ, **पाँचवी सभा**—व्यन्तर देवों की विनीत देवियाँ, **छटवीं सभा**—भवनवासी देवों की देवियाँ, **सातवीं सभा**-जिनभक्त भवनवासी देव, **आठवीं सभा**-व्यन्तर देव, **नौवी सभा**—चन्द्र, सूर्य, ज्योतिषी देव, **दसवीं सभा**-सौधर्म से लेकर अच्युत स्वर्ग पर्यन्त के देव, **ग्यारहवीं सभा**—चक्रवर्ती राजा, मनुष्य, **बारहवीं सभा**—तिर्यंच।

(तिलोयपण्णत्ति भाग 2, गाथा 865-872)

समुच्चय पूजा

देव-शास्त्र-गुरु नमन करि, बीस तीर्थंकर ध्याय।
सिद्ध शुद्ध राजत सदा, नमूँ चित्त हुलसाय॥

ॐ ह्रीं श्री देवशास्त्र गुरु समूह! श्री विद्यमान विशंति-तीर्थंकर समूह! श्री अनंतानंत सिद्धपरमेष्ठी समूह! अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(पुष्पांजलिं क्षिपामि)

अनादिकाल से जग में स्वामिन्, जल से शुचिता को माना।
शुद्ध निजातम सम्यक् रत्नत्रय, निधि को नहीं पहिचाना॥
अब निर्मल रत्नत्रय जल ले, श्री देवशास्त्रगुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः श्री विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्ध परमेष्ठिभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा।

भव आताप मिटावन की, निज में ही क्षमता समता है।
अनजाने अब तक मैंने, पर में की झूठी ममता है॥
चन्दन सम शीतलता पाने, श्री देवशास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः श्री विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त—सिद्ध परमेष्ठिभ्यो संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्व. स्वाहा।

अक्षय पद के बिन फिरा, जगत की लख चौरासी योनि में।
अष्ट कर्म के नाश करने को, अक्षत तुम ढिंग लाया मैं॥
अक्षय निधि निज की पाने अब, श्री देवशास्त्रगुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्यः श्री विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्यः श्री अनन्तानन्त-सिद्ध परमेष्ठिभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प सुगन्धी से आतम ने, शील स्वभाव नशाया है।
मन्मथ बाणों से बिंध करके, चहुँगति में दुख उपजाया है॥
स्थिरता निज में पाने को, श्री देवशास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्य: श्री विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्य: श्री अनन्तानन्त-सिद्ध परमेष्ठिभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्व.स्वाहा।

षट् रस मिश्रित भोजन से, यह भूख न मेरी शान्त हुई।
आतम रस अनुपम चखने से, इन्द्रिय मन इच्छा शमन हुई॥
सर्वथा भूख के मेटन को, श्री देवशास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्य: श्री विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्य: श्री अनंतानंत-सिद्ध परमेष्ठिभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जड़ दीप विनश्वर को अब तक, समझा था मैंने उजियारा।
निज गुण दरशायक ज्ञान दीप से, मिटा मोह का अंधियारा॥
ये दीप समर्पित करके मैं, श्री देवशास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्य: श्री विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्य: श्री अनन्तानन्त-सिद्ध परमेष्ठिभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

ये धूप अनल में खेने से, कर्मों को नहीं जलायेगी।
निज में निज की शक्ति ज्वाला, जो रागद्वेष नशायेगी।।
उस शक्ति दहन प्रगटाने को, श्री देव शास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ॥

ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्य: श्री विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्य: श्री अनन्तानन्त-सिद्ध परमेष्ठिभ्यो अष्ट कर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

पिस्ता बदाम श्रीफल लवंग, चरणन तुम ढिंग मैं ले आया।
आतमरस भीने निजगुण फल, मम मन अब उनमें ललचाया॥

अब मोक्ष महाफल पाने को, श्री देवशास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्य: श्री विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्य: श्री अनन्तानन्त-सिद्ध परमेष्ठिभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्व.स्वाहा।

अष्टम वसुधा पाने को, कर में ये आठों द्रव्य लिए।
सहज शुद्ध स्वाभाविकता से, निज में निज गुण प्रगट किये॥
यह अर्घ समर्पण करके मैं, श्री देवशास्त्र गुरु को ध्याऊँ।
विद्यमान श्री बीस तीर्थंकर, सिद्ध प्रभुजी के गुण गाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्य: श्री विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्य: श्री अनंतानंत-सिद्ध परमेष्ठिभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्व.स्वाहा।

जयमाला

देव-शास्त्र-गुरु बीस तीर्थंकर सिद्ध प्रभु भगवान।
अब वरणूँ जयमालिका करूँ स्तवन गुणगान॥
नशे घातिया कर्म अर्हन्त देवा, करैं सुरअसुर नरमुनि नित्य सेवा।
दरशज्ञान सुख बल अनंत के स्वामी, छियालीस गुणयुत महाईश नामी॥
तेरी दिव्य वाणी सदा भव्य मानी, महा मोह विध्वंसिनी मोक्षदानी।
अनेकान्तमय द्वादशांगी बखानी, नमो लोक माताश्री जैन वाणी॥
विरागी अचारज उवज्झाय साधु, दरश ज्ञान भण्डार समता अराधु।
नगन वेशधारी सु एका विहारी, निजानंद मंडित मुकति पथ प्रचारी॥
विदेह क्षेत्र में तीर्थङ्कर बीस राजे, विरहमान बन्दूँ सभी पाप भाजे।
नमूँ सिद्धनिर्भय निरामय सुधामी, अनाकुलसमाधान सहजाभिरामी॥
छन्द—**देवशास्त्र गुरु बीस तीर्थंकर, सिद्ध हृदय बिच धरले रे।**
पूजन ध्यान गान गुण करके, भवसागर जिय तरले रे॥
ॐ ह्रीं श्री देव-शास्त्र-गुरुभ्य: श्री विद्यमान विंशति-तीर्थंकरेभ्य: श्री अनंतानंत-सिद्ध परमेष्ठिभ्य: जयमालाये पूर्णार्घ्यं निर्व.स्वाहा।

॥इत्याशीर्वाद॥

श्री नवदेवता पूजा

(आर्यिकाश्री 105 ज्ञानमति माताजी)

अरिहंत सिद्धाचार्य पाठक, साधु त्रिभुवन वंद्य हैं।
जिन धर्म जिन आगम जिनेश्वर मूर्ति जिनगृह वंद्य हैं॥
नव देवता ये मान्य जग में, हम सदा अर्चा करें।
आह्वान कर थापें यहाँ मन में अतुल श्रद्धा धरें॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयसमूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं। ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयसमूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयसमूह! अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधीकरनम्। (पुष्पांजलि क्षिपामि)

गंगा नदी का नीर निरमल, बाह्य मल धोवे सदा।
अंतर मलों के क्षालने को, नीर से पूजूँ मुदा॥
नवदेवताओं की सदा जो भक्ति से अर्चा करें।
सब सिद्धि नव विधि रिद्धि मंगल पाय शिवकान्ता वरें॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म- जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयेभ्यो जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा।

कर्पूर मिश्रित गंध चंदन, देह ताप निवारता।
तुम पाद पंकज पूजते, मन ताप तुरतहिं वारता॥नवदेवताओं.

ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयेभ्यो संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षीरोदधी के फेन सम, सित तंदुलों को लायके।
उत्तम अखंडित सौख्य हेतु, पुंज नव सु चढ़ायके॥नवदेवताओं.
ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।
चंपा चमेली केवड़ा, नाना सुगंधित ले लिये।
भव के विजेता आपको, पूजत सुमन अर्पण किये॥नवदेवताओं.
ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयेभ्यो कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।
पायस मधुर पकवान मोदक, आदि को भर थाल में।
निज आत्म अमृत सौख्य हेतु, पूजहूँ नत भाल मैं॥नवदेवताओं.
ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।
कर्पूर ज्योति जगमगे, दीपक लिया निज हाथ में।
तुम आरती तम वारती, पाऊँ सुज्ञान प्रकाश मैं॥नवदेवताओं.
ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
दश गंध धूप अनूप सुरभित, अग्नि में खेऊँ सदा।
निज आत्म गुण सौरभ उठे, हों कर्म सब मुझसे विदा॥नवदेवताओं.
ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयेभ्यो अष्टकर्मविनाशनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
अंगूर अमरख आम्र अमृत, फल भराऊँ थाल में।
उत्तम अनूपम मोक्षफल के हेतु पूजूँ आज मैं॥नवदेवताओं.
ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयेभ्यो मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंध अक्षत पुष्प चरु दीपक सुधूप फलार्घ्य ले।
वर-रत्नत्रयनिधि लाभ यह, बस अर्घ्य से पूजत मिले॥नवदेवताओं.
ॐ ह्रीं श्री अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयेभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जलधारा से नित्य मैं, जग की शांति हेत।
नव देवों को पूजहूँ, श्रद्धा भक्ति समेत॥10॥
शांतये शांतिधारा....

नानाविध के सुमन ले, मन में बहु हरषाय।
मैं पूजूँ नव देवता, पुष्पांजली चढ़ाय॥11॥
(दिव्य पुष्पांजलिः)

जाप्य– **ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म जिनागम-जिनचैत्य- चैत्यालयेभ्यो नमः।**
(9, 27 या 108 बार जाप करें)

जयमाला

सोरठा-चिच्चिंतामणि रत्न, तीन लोक में श्रेष्ठ हो।
गाऊँ गुण मणिमाल, जयवंते वर्तो सदा॥

(चाल-हे दीनबंधु श्रीपति)

जय जय श्री अरिहंत देव देव हमारे।
जय घातिया को घात सकल जंतु उबारे॥
जय जय प्रसिद्ध सिद्ध की मैं वंदना करूँ।
जय अष्ट कर्म मुक्त की मैं अर्चना करूँ॥1॥
आचार्य देव गुण छत्तीस धार रहे हैं।
दीक्षादि दे असंख्य भव्य तार रहे हैं॥
जैवंत उपाध्याय गुरु ज्ञान के धनी।

सन्मार्ग के उपदेश की वर्षा करें घनी ॥2॥
जय साधु अट्ठाईस गुणों को धरें सदा।
निज आतमा की साधना से च्युत न हों कदा॥
ये पंच परम देव सदा वंद्य हमारे।
संसार विषम सिंधु से हमको भी उबारें ॥3॥
जिन धर्मचक्र सर्वदा चलता ही रहेगा।
जो इसकी शरण ले वो सुलझता ही रहेगा।
जिनकी ध्वनि पीयूष का जो पान करेंगे।
भव रोग दूर कर वे मुक्तिकान्त बनेंगे ॥4॥
जिनचैत्य की जो वन्दना त्रिकाल करे हैं।
वे चित् स्वरूप नित्य आत्म लाभ करे हैं॥
कृत्रिम व अकृत्रिम जिनालयों को जो भजें।
वे कर्मशत्रु जीत शिवालय में जा बसें ॥5॥
नव देवताओं की जो नित आराधना करें।
वे मृत्युराज की भी तो विराधना करें।
मैं कर्मशत्रु जीतने के हेतु ही जजूँ।
सम्पूर्ण 'ज्ञानमती' सिद्धि हेतु ही भजूँ ॥6॥

दोहा—**नवदेवों को भक्तिवश, कोटि कोटि प्रणाम।**
भक्ति का फल मैं चहूँ, निजपद में विश्राम॥

ॐ ह्रीं अर्हत्सिद्धाचार्योपाध्यायसर्वसाधु-जिनधर्म-जिनागम-जिनचैत्य-चैत्यालयेभ्यो जयमाला अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

"बिना धर्मान्न संपदः।"

अर्थ—धर्म के बिना सम्पदायें प्राप्त नहीं होतीं।

आदिपुराण, 5वाँ पर्व 18-92)

श्री पंच परमेष्ठी पूजन

अर्हंत सिद्ध आचार्य नमन, हे उपाध्याय हे साधु नमन।
जय पंच परम परमेष्ठी जय, भवसागर तारणहार नमन॥
मन वच काया पूर्वक करता, हूँ शुद्ध हृदय से आह्वानन।
मम हृदय विराजो तिष्ठ-तिष्ठ, सन्निकट होहु मेरे भगवन।
निज आत्म तत्त्व की प्राप्ति हेतु, ले अष्ट द्रव्य करता पूजन।
तव चरणों की पूजन से प्रभु निज शुद्ध रूप का हो दर्शन॥

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु पंच परमेष्ठिन्। अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु पंच परमेष्ठिन्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं अरहंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु पंच परमेष्ठिन्। अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट् सन्निधिकरणं। (पुष्पांजलि क्षिपामि)

मैं तो अनादि से रोगी हूँ, उपचार कराने आया हूँ।
तुम सम उज्ज्वलता पाने को, उज्ज्वल जल भरकर लाया हूँ॥
मैं जन्म जरा मृत्यु नाश करुँ, ऐसी दो शक्ति हृदय स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव दुख मेंटो अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री पंचपरमेष्ठिभ्यो जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा।

संसार ताप में जल जल कर, मैंने अगणित दुख पाए हैं।
निज शान्त स्वभाव नहीं पाया, पर के ही गीत सुहाए हैं॥
शीतल चंदन है भेंट तुम्हें, संसार ताप नाशो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव दुख मेंटो अन्तर्यामी॥

ॐ ह्रीं श्री पंच-परमेष्ठिभ्यो संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्व. स्वाहा।

दुख मय अथाह भवसागर में, मेरी यह नौका भटक रही।
शुभ-अशुभ भाव की भंवरों में, चैतन्य शक्ति निज अटक रही॥

तन्दुल है धवल तुम्हें अर्पित, अक्षयपद प्राप्त करूँ स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव दुख मेंटो अन्तर्यामी॥
ॐ ह्रीं श्री पंच-परमेष्ठिभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्व. स्वाहा।
मैं काम व्यथा से घायल हूँ, सुख की न मिली किंचित् छाया।
चरणों में पुष्प चढ़ाता हूँ, तुमको पाकर मन हर्षाया॥
मैं काम भाव विध्वंस करूँ, ऐसा दो शील हृदय स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव दुख मेंटो अन्तर्यामी॥
ॐ ह्रीं श्री पंच-परमेष्ठिभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्व. स्वाहा।
मैं क्षुधारोग से व्याकुल हूँ चारों गति में भरमाया हूँ।
जग के सारे पदार्थ पाकर भी तृप्त नहीं हो पाया हूँ॥
नैवेद्य समर्पित करता हूँ, यह क्षुधा रोग मेंटो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव दुख मेंटो अन्तर्यामी॥
ॐ ह्रीं श्री पंच-परमेष्ठिभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्व. स्वाहा।
मोहान्ध महा-अज्ञानी मैं, निज को पर का कर्ता माना।
मिथ्यातम के कारण मैंने, निज आत्मस्वरूप न पहिचाना।।
मैं दीप समर्पण करता हूँ, मोहान्धकार क्षय हो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव-दुख मेंटो अन्तर्यामी।
ॐ ह्रीं श्री पंच-परमेष्ठिभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्व. स्वाहा।
कर्मों की ज्वाला धधक रही, संसार बढ़ रहा है प्रतिपल।
संवर से आश्रव को रोकूँ, निर्जरा सुरभि महके पल-पल।।
मैं धूप चढ़ाकर अब आठों, कर्मों का हनन करूँ स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव दुख मेंटो अन्तर्यामी।।
ॐ ह्रीं श्री पंच-परमेष्ठिभ्यो अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्व. स्वाहा।
निज आत्म तत्त्व का मनन करूँ, चिंतवन करूँ निज चेतन का।
दो श्रद्धा ज्ञान चरित्र श्रेष्ठ, सच्चा पथ मोक्ष निकेतन का॥

उत्तम फल चरण चढ़ाता हूँ, निर्वाण महाफल हो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव दुख मेंटो अन्तर्यामी॥
ॐ ह्रीं श्री पंच-परमेष्ठिभ्यो मोक्ष फल प्राप्तये फलं निर्व. स्वाहा।

जल चन्दन अक्षत पुष्प दीप नैवेद्य धूप फल लाया हूँ।
अब तक के संचित कर्मों का, मैं पुंज जलाने आया हूँ।।
यह अर्घ समर्पित करता हूँ, अविचल अनर्घपद दो स्वामी।
हे पंच परम परमेष्ठी प्रभु, भव दुख मेंटो अन्तर्यामी।।
ॐ ह्रीं श्री पंच-परमेष्ठिभ्यो अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

जयमाला

जय वीतराग सर्वज्ञ प्रभो, जिन ध्यान लीन गुणमय अपार।
अष्टादश दोष रहित जिनवर, अर्हंत देव को नमस्कार॥
अविकल अविकारी अविनाशी, निजरूप निरंजन निराकार।
जय अजर अमर हे मुक्तिकंत भगवंत सिद्ध को नमस्कार॥
छत्तीस सुगुण से तुम मंडित, निश्चय रत्नत्रय हृदय धार।
हे मुक्ति वधू के अनुरागी, आचार्य सुगुरु को नमस्कार॥
एकादश अंग पूर्व चौदह के, पाठी गुण पच्चीस धार।
वाह्याभ्यंतर मुनि मुद्रा महान, श्री उपाध्याय को नमस्कार॥
व्रत समिति गुप्ति चारित्र धर्म वैराग्य भावना हृदय धार।
हे द्रव्य भाव संयममय मुनिवर सर्व साधु को नमस्कार॥
बहु पुण्य संयोग मिला नरतन जिनश्रुत जिनदेव चरण दर्शन।
हो सम्यग्दर्शन प्राप्त मुझे तो सफल बने मानव जीवन॥
निज पर का भेद जानकर मैं निज को ही निज में लीन करुँ।
अब भेद ज्ञान के द्वारा मैं निज आत्म स्वयं स्वाधीन करुँ॥
निज में रत्नत्रय धारण कर, निज परणति को ही पहचानूँ।
पर परणति से हो विमुख सदा, निज ज्ञानतत्त्व को ही जानूँ॥

जब ज्ञान ज्ञेय ज्ञाता विकल्प तज, शुक्ल ध्यान मैं ध्याऊँगा।
तब चार घातिया क्षय करके अर्हन्त महापद पाऊँगा॥
है निश्चित सिद्ध स्वपद मेरा, हे प्रभु इसको कब पाऊँगा।
सम्यक् पूजा फल पाने को, अब निज स्वभाव में आऊँगा॥
अपने स्वरूप की प्राप्ति हेतु, हे प्रभु मैंने की है पूजन।
तब तक चरणों में ध्यान रहे जब तक न प्राप्त हो मुक्ति सदन॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हंत-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधु पंच परमेष्ठिभ्यो अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

हे मंगल रूप अमंगल हर, मंगलमय मंगल गान करूँ।
मंगल में प्रथम श्रेष्ठ मंगल, नवकार मंत्र का ध्यान करूँ॥

(पुष्पांजलिं क्षिपामि)

णमोकार महामन्त्र पूजा

अनुपम अनादि अनंत है, यह मन्त्रराज महान है।
सब मंगलों में प्रथम मंगल, करत अघ की हान है।
अर्हंत सिद्धाचार्य पाठक, साधुओं की वन्दना।
इस शब्दमय परब्रह्म को थापूँ करूँ नित अर्चना।।1।

ॐ ह्रीं अनादिनिधनपंचनमस्कारमंत्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

(भुजंगपयात छन्द)

महातीर्थ गंगा नदी नीर लाऊँ, महामन्त्र की नित्य पूजा रचाऊँ।
णमोकार मंत्राक्षरों को जजूँ मैं, महाघोर, संसार दुःख से बचूँ मैं।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधनपंचनमस्कारमंत्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कपूरादि चंदन महागंध लाके, परं शब्द ब्रह्मा की पूजा रचाके।
णमोकार मंत्राक्षरों को जजूँ मैं, महाघोर, संसार दुःख से बचूँ मैं।।
ॐ ह्रीं अनादिनिधनपंचनमस्कारमंत्राय संसारताप विनाशनाय चन्दनं नि. स्वाहा।

पयः सिन्धुकेफेन सम अक्षतों को, लिया थाल में पुंज से पूजने को।
णमोकार मंत्राक्षरों को जजूँ मैं, महाघोर, संसार दुःख से बचूँ मैं।।
ॐ ह्रीं अनादिनिधनपंचनमस्कारमंत्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि. स्वाहा।

जुही कुंद अरविन्द मंदार माला, चढ़ाऊँ तुम्हें काम को मार डाला।
णमोकार मंत्राक्षरों को जजूँ मैं, महाघोर, संसार दुःख से बचूँ मैं।।
ॐ ह्रीं अनादिनिधनपंचनमस्कारमंत्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि. स्वाहा।

कलाकन्द लड्डू इमरती बनाऊँ, तुम्हें पूजते भूखव्याधि नशाऊँ।
णमोकार मंत्राक्षरों को जजूँ मैं, महाघोर, संसार दुःख से बचूँ मैं।।
ॐ ह्रीं अनादिनिधनपंचनमस्कारमंत्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं नि. स्वाहा।

शिखादीप की ज्योति बिस्तारती है, महामोह अंधेर संहारती है।
णमोकार मंत्राक्षरों को जजूँ मैं, महाघोर, संसार दुःख से बचूँ मैं।।
ॐ ह्रीं अनादिनिधनपंचनमस्कारमंत्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं नि. स्वाहा।

सुगन्धि बढ़े धूप खेते अगनी में, सभी कर्म का भस्म हो एक क्षण में।
णमोकार मन्त्राक्षरों को जजूँ मैं, महा घोर संसार दुःख से बचूँ मैं।।
ॐ ह्रीं अनादिनिधनपंचनमस्कारमंत्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं नि. स्वाहा।

अनानास अंगूर अमरूद लाया, महामोक्ष सम्पत्ति हेतु चढ़ाया।
णमोकार मंत्राक्षरों को जजूँ मैं, महाघोर, संसार दुःख से बचूँ मैं।।
ॐ ह्रीं अनादिनिधनपंचनमस्कारमंत्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि. स्वाहा।

उदकगंधआदि मिला अर्घ्य लाया, महामन्त्रनवकार को मैं चढ़ाया।
णमोकार मंत्राक्षरों को जजूँ मैं, महाघोर, संसार दुःख से बचूँ मैं।।
ॐ ह्रीं अनादिनिधनपंचनमस्कारमंत्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं नि. स्वाहा।

दोहा

शान्तिधारा मैं करूँ, तिहुँजग शान्ति हेत।
भद्र भवातप शांत हों, पूजूँ भक्ति समेत।।

शान्तये शान्तिधारा।

वकुल मल्लिका पुष्प ले, पूजूँ मन्त्र महान।
पुष्पांजलि से पूजते, सकल सौख्य वरदान।।

पुष्पांजलिः।

जयमाला

पंच परम गुरुदेव नमूँ नमूँ नत शीश मैं।
करो अमंगल क्षेव, गाऊँ तुम गुण मालिका।।

(चाल-हे दी बन्धु...)

जैवंत महा मंत्र मूर्ति मंत्र धारा में।
जैवंत परम ब्रह्म शब्द ब्रह्म धारा में।।
जैवंत सर्वमंगलों में मंगलीक हो।
जैवंत सर्व लोक में तुम सर्वश्रेष्ठ हो।।1।।
त्रैलोक्य में हो एक तुम ही शरण हमारे।
माँ शारदा भी नित्य ही तुम कीर्ति उचारे।।
विघ्नों का नाश होता है तुम नाम जाप से।
सम्पूर्ण उपद्रव नशे हैं तुम प्रताप से।।2।।
छियालीस सुगुण को धरैं अरिहन्त जिनेशा।
सब दोष अठारह से रहित त्रिजग महेशा।।
ये घातिया को घात के परमात्मा हुए।
सर्वज्ञ वीतराग और निर्दोष गुरु हुए।।3।।
जो अष्ट कर्म नाश के ही सिद्ध हुए हैं।
वे अष्ट कर्म गुणों से सदा विशिष्ट हुए हैं।।

लोकाग्र में हैं राजते वे सिद्ध अनंता।
सर्वार्थ सिद्धि देते हैं वे सिद्ध महंता।।4।।
छत्तीस गुण को धारते आचार्य हमारे।
चउ संघ के नायक हमें भव सिन्धु से तारे।।
पच्चीस गुणों युक्त उपाध्याय कहाते।
भव्यों को मोक्षमार्ग का उपदेश पढ़ाते।।5।।
जो साधु अट्ठाईस मूल गुण को धारतैं।
वे आत्म साधना से साधु नाम धारतैं।।
ये पंच परम देव भूतकाल में हुए।
होते हैं वर्तमान में भी पंच गुरु ये।।6।।
होंगे भविष्य काल में सुगुरु अनंते।
ये तीन लोक तीन काल के हैं अनंते।।
इन सब अनंतानंत की मैं वन्दना करूँ।
शिवपथ के विघ्न पर्वतों की खंडना करूँ।।7।।
इक ओर तराजू पे अखिल गुण को चढ़ाऊँ।
इक ओर महामन्त्र अक्षरों को धराऊँ।।
इस मंत्रके पलड़े को उठा ना सके कोई।
महिमाअनंत यह धरे ना इस सदृश कोई।।8।।
इस मन्त्र के प्रभाव श्वान देव हो गया।
इस मन्त्र से अनंत का उद्धार हो गया।।
इस मन्त्र की महिमा को कोई गा नहीं सके।
इसमें अनंत शक्ति पार पा नहीं सके।।9।।
पाँचों पदों से युक्त मन्त्र सारभूत है।
पैंतीस अक्षरों से मन्त्र परमपूत है।
पैंतीस अक्षरों के जो पैंतीस व्रत करे।
उपवास या एकाशना से सौख्य को भरै।।10।।

तिथि सप्तमी के सात पंचमी के पाँच हैं।
चौदस के चौदह नवमी के नव विख्यात हैं।।
इस विधि से महामन्त्र की आराधना करैं।
वे मुक्ति बल्लभा प्रतिनिज कामना करैं।।11।।

दोहा

यह विष को अमृत करे, भव भय पाप विदूर।
पूर्व 'ज्ञानमती' हेतु मैं जजूँ भरो सुख पूर।।12।।

ॐ ह्रीं अनादिनिधनपंचनमस्कारमंत्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

मंत्रराज सुखकार आतम अनुभव देत हैं।
जो पूजे रुचिधार, स्वर्ग मोक्ष के सुख लहे।।13।।

।। पुष्पांजलिं क्षिपेत्।।

सिद्धचक्र पूजा

अष्ट करम करि नष्ट अष्ट गुण पायकैं।
अष्टम वसुधा माहिं विराजे जायकैं॥
ऐसे सिद्ध अनंत महन्त मनायकैं।
संवौषट् आह्वान करूँ हरषायकैं॥

ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र अवतर अवतर संवौषट्।
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः।
ॐ ह्रीं णमो सिद्धाणं सिद्धपरमेष्ठिन्! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट्।

हिमवनगत गंगा आदि अभंगा, तीर्थ उतंगा सरवंगा।
आनिय सुरसंगा सलिल सुरंगा, करि मन चंगा भरि भृंगा॥
त्रिभुवन के स्वामी त्रिभुवननामी, अन्तरजामी अभिरामी।
शिवपुर विश्रामी निजनिधि पामी, सिद्ध जजामी शिरनामी॥

ॐ ह्रीं अनाहतपराक्रमाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

हरि चंदन लायो कपूर मिलायो, बहु महकायो मन भायो।
जल संग घसायो रंग सुहायो, चरन चढ़ायो हरषायो॥
त्रिभुवन के स्वामी...

ॐ ह्रीं अनाहतपराक्रमाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तंदुल उजियारे शशि-दुति टारे, कोमल प्यारे अनियारे।
तुषखंड निकारे जल सु पखारे, पुंज तुम्हारे ढिंग धारे॥
त्रिभुवन के स्वामी...

ॐ ह्रीं अनाहतपराक्रमाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

सुरतरु की बारी प्रीतिविहारी, किरिया प्यारी गुलजारी।
भरि कंचन-थारी माल संवारी, तुम पदधारी अतिसारी॥
त्रिभुवन के स्वामी...

ॐ ह्रीं अनाहतपराक्रमाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान निवाजे स्वाद विराजे, अमृत लाजे क्षुत भाजे।
बहु मोदक छाजे घेवर खाजे, पूजन काजे करि ताजे॥
त्रिभुवन के स्वामी...

ॐ ह्रीं अनाहतपराक्रमाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आपा पर भासै ज्ञान प्रकासै, चित्त विकासै तम नासै।
ऐसे विध खासे दीप उजासे धरि तुम पासे उल्लासे॥
त्रिभुवन के स्वामी...

ॐ ह्रीं अनाहतपराक्रमाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

चुम्बत अलिमाला गंध विशाला, चन्दन काला गरुवाला।
तस चूर्ण रसाला करि ततकाला, अगनी ज्वाला में डाला॥
त्रिभुवन के स्वामी...

ॐ ह्रीं अनाहतपराक्रमाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल अतिभारा पिस्ता प्यारा, दाख छुहारा सहकारा।
ऋतु ऋतु का न्यारा सत्फलसारा, अपरम्पारा लै धारा॥
त्रिभुवन के स्वामी...

ॐ ह्रीं अनाहतपराक्रमाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल फल वसु वृन्दा अरघ अमंदा, जजत अनंदा के कंदा।
मेटो भवफंदा सब दुखदंदा, 'हीराचंदा' तुम बन्दा॥
त्रिभुवन के स्वामी...

ॐ ह्रीं अनाहतपराक्रमाय श्रीसिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

ध्यान-दहन-विधि-दारु दहि, पायो पद निरवान।
पंचभाव जुत थिर थये, नमौं सिद्ध भगवान॥

(त्रोटक छन्द)

सुख सम्यग्दर्शन ज्ञान लहा, अगुरुलघु सूक्षम-वीर्य महा।
अवगाह अबाध अघायक हो, सब सिद्ध नमों सुखदायक हो॥
असुरेन्द्र सुरेन्द्र नरेन्द्र जजैं, भुवनेंद्र खगेंद्र गणेंद्र भजैं।
जर-जामन-मर्ण मिटायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥
अमलं अचलं अकलं अकुलं, अछलं असलं अरलं अतुलं।
अबलं सरलं शिवनायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥

अजरं अमरं अघरं सुधरं, अडरं अहरं अमरं अधरं।
अपरं असरं सबलायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥
वृषवृन्द अमन्द न निंद लहै, निरदंद अफंद सुछंद रहै।
नित आनंदवृंद बधायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥
भगवंत सुसंत अनंतगुनी, जयवंत महंत नमंत मुनी।
जगजंतु तणों अघघायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥
अकलंक अटंक शुभंकर हो, निरडंक निशंक शिवंकर हो।
अभयंकर शंकर क्षायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥
अतरंग अरंग असंग सदा, भवसंग अभंग उतंग सदा।
सरवंग अनंग नसायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥
ब्रह्मंड जु मंडलमंडन हो, तिहुँ दंड प्रचंड विहंडन हो।
चिदपिंड अखंड अकायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥
निरभोग सुभोग वियोग हरै, निरजोग अरोग अशोग धरै।
भ्रम भंजन तीक्षनशायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥
जब लक्ष्य अलक्ष्य सुलक्षक हो, जय दक्षक पक्षक रक्षक हो।
पण अक्ष प्रतक्ष खपायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥
अप्रमाद अनाद सुस्वादरता, उनमाद विवाद विषादहता।
समता रमता अकषायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥
निरभेद अखेद अछेद सही, निरवेद अवेदन वेद नहीं।
सब लोक-अलोक के ज्ञायक हो, सब सिद्धनमौं सुखदायक हो॥
अमलीन अदीन अरीन हने, निज लीन अधीन अछीन बने।
जम कौ घनघात बचायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥
न अहार निहार बिहार कबै, अविकार अपार उदार सबै।
जगजीवन के मनभायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥
असमंध अधंद अरंध भये, निरबंध अखंद अगंध ठये।

अमनं अतनं निरवायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥
निरवर्ण अकर्ण उधर्ण बली, दुखहर्ण अशर्ण सुशर्ण भली।
बलि मोह की फौज भगायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥
अविरुद्ध अक्रुद्ध अजुद्ध प्रभु, अति शुद्ध प्रबुद्ध समृद्ध विभु।
परमातम पूरन पायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥
विररूप चिद्रूप स्वरूप द्युती, जसकूप अनूपम भूप भुती।
कृतकृत्य जगत्त्रयनायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥
सब इष्ट अभीष्ट विशिष्ट हितू, उतकिष्ट वरिष्ट गरिष्ट मितू।
शिव तिष्ठत सर्व सहायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥
जय श्रीकर श्रीधर श्रीवर हो, जय श्रीकर श्रीभर श्रीझर हो।
जय ऋद्धि सुसिद्धि बढ़ायक हो, सब सिद्ध नमौं सुखदायक हो॥

दोहा—**सिद्ध सुगुण को कहि सकै, ज्यों विलस्त नभ भान।**
हीराचन्द तातैं जजैं, करहु सकल कल्यान॥

ॐ ह्रीं अनाहत पराक्रमाय सकलकर्म विनिर्मुक्ताय श्री सिद्धचक्राधिपतये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सिद्ध जजैं तिनको नहिं आवै आपदा।
पुत्र पौत्र धन धान्य लहै सुख सम्पदा॥
इंद्रचंद्र धरणेंद्र नरेंद्र जु होयकैं।
जावैं मुकति मंझार करम सब खोयकैं॥

(इत्याशीर्वादः, पुष्पांजलि क्षिपामि।)

नौ निधियाँ

काल—ऋतु के योग्य द्रव्य	महाकाल—भाजन
मानव—आयुध	पद्म—वस्त्र
पिंगल—आभरण	पाण्डु—धान्य
शंख—वादित्र	नैसर्प—हर्म्य
रत्न—नानारत्न	

सरस्वती पूजा

जनम-जरा-मृत्यु छय करै, हरै कुनय जड़ रीति।
भवसागर सों ले तिरै, पूजैं जिन वच प्रीति॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वति वाग्वादिनि! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वती वाग्वादिनि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वति वाग्वादिनि! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

छीरोदधि गंगा विमल तरंगा, सलिल अभंगा सुख-संगा।
भरि कंचन झारी धार निकारी, तृषा निवारी हित चंगा॥
तीर्थंकर की धुनि गणधर ने सुनि, अंग रचे चुनि ज्ञानमई।
सो जिनवर-वानी शिव-सुखदानी, त्रिभुवन मानी पूज्य भई॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

करपूर मंगाया चन्दन आया, केशर लाया रंग भरी।
शारद पद वन्दों मन अभिनन्दों, पाप निकंदों दाह हरी॥
तीर्थंकर...

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै संसारतापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

सुखदास कमोदं, धारकमोदं, अति अनुमोदं चन्दसमं।
बहु भक्ति बढ़ाई, कीरति गाई, होहु सहाई मात ममं॥
तीर्थंकर...

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अक्षय पद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

बहु फूल सुवासं विमल प्रकाशं, आनंदरासं लाय धरे।
मम काम मिटाओ शील बढ़ाओ, सुख उपजाओ दोष हरे॥
तीर्थंकर...

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

पकवान बनाया बहुघृत लाया, सब विध भाया मिष्ट महा।
पूजूँ थुति गाऊँ प्रीति बढ़ाऊँ, क्षुधा नसाऊँ हर्ष लहा॥
तीर्थंकर...

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वती देव्यै नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

करि दीपक जोतं तम छय होतं ज्योति उदोतं तुमहिं चढ़ै।
तुम हो परकाशक भरमविनाशक हम घट भासक ज्ञान बढ़ै॥
तीर्थंकर...

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव-सरस्वती-देव्यै दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ गंध दशों कर पावक में धर, धूप मनोहर खेवत हैं।
सब पाप जलावैं पुण्य कमावैं, दास कहावैं सेवत हैं॥
तीर्थंकर...

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्व. स्वाहा।

बादाम छुहारी लोंग सुपारी, श्रीफल भारी ल्यावत हैं।
मन वांछित दाता मेट असाता, तुम गुन माता ध्यावत हैं॥
तीर्थंकर...

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्व. स्वाहा।

नयनन सुखकारी मृदुगुनधारी उज्जवल भारी मोल धरै।
शुभगंध सम्हारा वसन निहारा, तुम तन धारा ज्ञान करै॥
तीर्थंकर...

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै वस्त्रं निर्वपामीति स्वाहा।

जल चंदन अक्षत फूल चरु अरु दीप धूप अतिफल लावै।
पूजा को ठानत जो तुम जानत सो नर द्यानत सुख पावै॥
तीर्थंकर...

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वतीदेव्यै अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा—ओंकार धुनिसार, द्वादशांग वाणी विमल।
नमों भक्ति उर धार, ज्ञान करै जड़ता हरै॥

पहलो आचारांग बखानो, पद अष्टादश सहस प्रमानो।
दूजो सूत्रकृतं अभिलाषं, पद छत्तीस सहस गुरुभाषं॥
तीजो ठाना अंग सुजानं, सहस बियालिस पद सरधानं।
चौथो समवायांग निहारं, चौसठ सहस लाख इक धारं॥
पंचम व्याख्याप्रज्ञप्ति दरशं, दोय लाख अट्ठाइस सहसं।
छट्ठो ज्ञातकृथा विसतारं, पाँच लाख छप्पन हज्जारं॥
सप्तम उपासकाध्ययनंगं, सत्तर सहस ग्यारलख भंगं।
अष्टम अन्तकृतं दस ईसं, सहस अठाइस लाख तेईसं॥
नवम अनुत्तर दश सुविशालं, लाख बानवै सहस चवालं।
दशम प्रश्न व्याकरण विचारं, लाख तिरावन सोल हजारं॥
ग्यारम सूत्र विपाक सुभाखं, एक कोड़ि चौरासी लाखं।
चार कोड़ि अरु पन्द्रह लाखं, दो हजार सब पद गुरु शाखं॥
द्वादश दृष्टिवाद पन भेदं, इकसौ आठ कोड़ि पन वेदं।
अड़सठ लाख सहस छप्पन हैं, सहित पंचपद मिथ्या हन हैं॥
इक सौ बारह कोड़ि बखानो, लाख तिरासी ऊपर जानो।
ठावन सहस पंच अधिकाने, द्वादश अंग सर्व पद माने॥
कोड़ि इकावन आठ हि लाखं, सहस चुरासी छह सौ भाखं।
साढ़े इकीस श्लोक बताये, एक एक पद के ये गाये॥

दोहा—जा वानी के ज्ञान तें, सूझे लोकालोक।
'द्यानत' जग जयवन्त हो, सदा देत हूँ धोक॥

ॐ ह्रीं श्रीजिनमुखोद्भवसरस्वती देव्यैः अनर्घ्यपदप्राप्तये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

(इत्याशीर्वाद)

सम्मेद शिखर टोंकों के अर्घ

गणधर कूट

चौबीसों जिनराज के, गण नायक हैं जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ॐ ह्रीं श्री गौतमस्वामी आदि गणधर देवेभ्यो (ग्राम के उद्यान आदि भिन्न-भिन्न स्थानों से निर्वाण पधारे हैं तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।1।।

ज्ञानधर कूट

कुन्थुनाथ जिनराज का, कूट ज्ञानधर जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ॐ ह्रीं श्रीकुन्थुनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 96 कोड़ा-कोड़ी 96 करोड़ 32 लाख 96 हजार 742 मुनिभ्यो (इस कूट से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।2।।

मित्रधर कूट

नमिनाथ जिनराज का, कूट मित्रधर जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ॐ ह्रीं श्रीनमिनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 9 कोड़ा-कोड़ी 1 अरब 45 लाख 7 हजार 942 मुनिभ्यो (इस कूट से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।3।।

नाटक कूट

अरनाथ जिनराज का, नाटक कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।।

ॐ ह्रीं श्रीअरनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 99 करोड़ 99 लाख 99 हजार 999 मुनिभ्यो (इस कूट से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।4।।

संवल कूट

मल्लिनाथ जिनराज का, संवल कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।

ॐ ह्रीं श्रीमल्लिनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 96 करोड़ मुनिभ्यो (इस कूट से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।5।।

संकुल कूट

श्रेयांसनाथ जिनराज का, संकुल कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।

ॐ ह्रीं श्रीश्रेयांसनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 96 कोड़ाकोड़ी 96 करोड़ 96 लाख 9 हजार 542 मुनिभ्यो (इस कूट से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।6।।

सुप्रभ कूट

पुष्पदंत जिनराज का, सुप्रभ कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।

ॐ ह्रीं श्रीपुष्पदंत जिनेन्द्रादि मुनि 1 कोड़ाकोड़ी 99 लाख 7 हजार 780

मुनिभ्यो (इस कूट से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।7।।

मोहन कूट

पदमप्रभ जिनराज का, मोहन कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।

ॐ ह्रीं श्रीपद्मप्रभ जिनेन्द्रादि मुनि 99 करोड़ 87 लाख 43 हजार 757 मुनिभ्यो (इस कूट से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।8।।

निरजर कूट

मुनिसुव्रत जिनराज का, निरजर कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।

ॐ ह्रीं श्रीमुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 99 कोड़ाकोड़ी 99 करोड़ 99 लाख 999 मुनिभ्यो (इस कूट से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।9।।

ललित कूट

चन्द्रप्रभु जिनराज का, ललितकूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।

ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्रादि मुनि 984 अरब 12 करोड़ 80 लाख 84 हजार 595 मुनिभ्यो (इस कूट से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।10।।

श्री आदिनाथ भगवान की टोंक

ऋषभदेव जिन सिद्ध भये, गिरि कैलाश से जोय।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।

ॐ ह्रीं श्रीऋषभनाथ जिनेन्द्रादि 10 हजार मुनिभ्यो (कैलाश पर्वत से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।11।।

विद्युतवर कूट

शीतलनाथ जिनराज का, कूट विद्युतवर जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।

ॐ ह्रीं श्रीशीतलनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 18 कोड़ाकोड़ी 42 करोड़ 32 लाख 42 हजार 905 मुनिभ्यो (इस कूट से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्व.स्वाहा।।12।।

स्वयंभू कूट

अनन्तनाथ जिनराज का, कूट स्वयंभु जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।

ॐ ह्रीं श्रीअनन्तनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 96 कोड़ाकोड़ी 70 करोड़ 70 लाख 70 हजार 700 मुनिभ्यो (इस कूट से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्व. स्वाहा।।13।।

धवल कूट

सम्भवनाथ जिनराज का, धवल कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।

ॐ ह्रीं श्रीसंभवनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 9 कोड़ाकोड़ी 12 लाख 42 हजार 500 मुनिभ्यो (इस कूट से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।14।।

श्री वासुपूज्य भगवान की टोंक

वासुपूज्य जिन सिद्ध भए, चम्पापुर से जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।

ॐ ह्रीं श्रीवासुपूज्य जिनेन्द्रादि एक हजार मुनिभ्यो (चम्पापुर मंदारगिरि से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।15।।

आनन्द कूट

अभिनन्दन जिनराज का, आनन्द कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।

ॐ ह्रीं श्रीअभिनन्दननाथ जिनेन्द्रादि मुनि 72 कोड़ाकोड़ी 70 करोड़ 70 लाख 42 हजार 700 मुनिभ्यो (इस कूट से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।16।।

सुदत्तवर कूट

धर्मनाथ जिनराज का, कूट सुदत्तवर जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।

ॐ ह्रीं श्रीधर्मनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 29 कोड़ाकोड़ी 19 करोड़ 9 लाख 9 हजार 765 मुनिभ्यो (इस कूट से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।17।।

अविचल कूट

सुमतिनाथ जिनराज का, अविचल कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।

ॐ ह्रीं श्रीसुमतिनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 1 कोड़ाकोड़ी 84 करोड़ 72 लाख 81 हजार 781 मुनिभ्यो (इस कूट से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घ निर्व. स्वाहा।।18।।

कुन्दप्रभ कूट (शांतिनाथ कूट)

शांतिनाथ जिनराज का, कुन्द कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 9 कोड़ाकोड़ी 9 लाख 9 हजार 999 मुनिभ्यो (इस कूट से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।19।।

श्री महावीर भगवान की टोंक

महावीर जिन सिद्ध भये, पावापुर से जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीर स्वामी सहित 26 मुनिभ्यो (पावापुर के पदम सरोवर स्थान से मोक्ष पधारे तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।20।।

प्रभास कूट

सुपार्श्वनाथ जिनराज का, प्रभास कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।

ॐ ह्रीं श्रीसुपार्श्वनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 49 कोड़ाकोड़ी 84 करोड़ 72 लाख 7 हजार 742 मुनिभ्यो (इस कूट से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्व.स्वाहा।।21।।

सुवीर कूट

विमलनाथ जिनराज का, कूट सुवीर है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।

ॐ ह्रीं श्रीविमलनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 70 कोड़ाकोड़ी 60 लाख 6 हजार 742 मुनिभ्यो (इस कूट से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्व. स्वाहा।।22।।

सिद्धवर कूट

अजितनाथ जिनराज का, सिद्धवर कूट है जेह।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद यजेह।

ॐ ह्रीं श्रीअजितनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 80 करोड़ 54 लाख मुनिभ्यो (इस कूट से सिद्ध भये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।22।।

श्रीनेमिनाथ भगवान की टोंक

नेमिनाथ जिन सिद्ध भए, सिद्ध क्षेत्र गिरनार।
मन वच तन कर पूजहूँ, शिखर सम्मेद मंझार।

ॐ ह्रीं श्रीनेमिनाथ जिनेन्द्रादि शम्बू प्रद्युम्न अनिरुद्ध इत्यादि 72 करोड़ 7 सौ मुनिभ्यो (इस पर्वत से मोक्ष गये तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।24।।

स्वर्णभद्र कूट

पार्श्वनाथ जिनराज का, स्वर्णभद्र है कूट।
मन वच तन कर पूजहूँ, जाऊँ कर्म से छूट।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्रादि मुनि 82 करोड़ 84 लाख 45 हजार 742 मुनिभ्यो (इस परमपुनीत कूट से मोक्ष पधारे हैं तिनके चरणारविन्द को मेरा मन, वचन, काय से बारम्बार नमस्कार हो) जलादि अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।25।।

आचार्य श्री विरागसागर जी महाराज की पूजन

(रचयिता-आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज)

गुरु विरागसागर के पद में, अर्पित भावों का चंदन।
श्रमण संघ के नायक गुरुवर, महावीर के लघुनंदन॥
आओ गुरुवर हृदय विराजो, दूर करो मम आक्रंदन।
भवसागर से पार उतारो, नाथ! चरण में शत् वन्दन॥

ॐ ह्रूँ श्री 108 आचार्यविरागसागरमुनीन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्।

ॐ ह्रूँ श्री 108 आचार्यविरागसागरमुनीन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रूँ श्री 108 आचार्यविरागसागरमुनीन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

क्षीर नीर भरकर मैं लाया, स्वर्णपात्र में हे गुरुवर।
द्रव्य-भाव-नोकर्म अशुचिता, धोने आया हे प्रभुवर॥
हूँ अखण्ड अविनाशी चेतन, निज स्वभाव से पूर्ण प्रभो।
निश्चय श्रद्धा से मिटते हैं, जन्म-जरा-मृतु रोग विभो॥

ॐ ह्रूँ श्री 108 आचार्य विरागसागर मुनीन्द्राय जन्मजरा-मृत्यु-विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

राग-द्वेष की ज्वाला में, भव-भव से जलता आया हूँ।
हे गुरुवर! पर को अपना कह, अब तक रुलता आया हूँ॥
शीतल चन्दन लाया गुरुवर, भव आताप मिटाने को।
शुद्ध-बुद्ध ज्ञायक स्वरूप, निज से निज में प्रगटाने को॥

ॐ ह्रूँ श्री 108 आचार्य विरागसागर मुनीन्द्राय संसारताप-विनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

पर्यायों के मद में आकर, नाथ! अनन्तों पद पाये।
शान्त हुई न तृष्णा गुरुवर, नहीं निरापद हो पाये॥

अक्षत धवल अखण्ड चढ़ाऊँ, अक्षय पद अब मिल जाये।
शुद्ध आत्मा के अनुभव से, नाथ! विपद अब टल जाये॥
ॐ ह्रूँ श्री 108 आचार्य विरागसागर मुनीन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

चतुर्गति में भटका अब तक, पंच परावर्तन करके।
काम वासना मिटा न पाया, हाय-हाय नर तन धरके॥
निज स्वभाव में रमकर गुरुवर, ब्रह्मचर्य रसपान करुँ।
पुष्प सुगंधित चरण चढ़ाऊँ, कामभाव अवसान करुँ॥
ॐ ह्रूँ श्री 108 आचार्य विरागसागर मुनीन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

तीन लोक के पुद्गल सारे, क्षुधा अग्नि के ग्रास बने।
शांत हुई न क्षुधा वेदना, भव-भव से हम दास बने॥
गुरु चरणों नैवेद्य चढ़ाऊँ, क्षुधारोग का नाश करुँ।
अरस, अरूप, अगंध, अस्पर्शी, शुद्धातम में वास करुँ॥
ॐ ह्रूँ श्री 108 आचार्य विरागसागर मुनीन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मोहभाव से हे गुरुवर, चौदह राजू चलकर आया।
विषयों की वैसाखी से, चौरासी का चक्कर खाया॥
महा मोहतम मिट जाये, प्रगटाऊँ ज्ञानज्योति चिन्मय।
कंचन दीप चढ़ाऊँ गुरुवर, निज स्वभाव में हो तन्मय॥
ॐ ह्रूँ श्री 108 आचार्य विरागसागर मुनीन्द्राय मोहन्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

वसु कर्मों से हे गुरुवर!, दुःख पाया कैसे बतलाऊँ।
भेदज्ञान प्रगटा अब कैसे, पुण्य-पाप में इठलाऊँ॥
सिद्ध प्रभु सम गुण प्रगटाने, अष्ट कर्म का नाश करूँ।
शुद्ध भाव सी धूप चढ़ाऊँ, हर्षाऊँ, उल्लास धरूँ॥
ॐ ह्रूँ श्री 108 आचार्य विरागसागर मुनीन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

धर्म ध्यान में लीन सदा, फिर शुक्ल ध्यान पुरुषार्थ करें।
नाथ! आप समवीर्य प्रगट हो, मुनि बन हम परमार्थ वरें॥
क्षपक श्रेणि चढ़ केवलज्ञानी, बन भव बीज समाप्त करें।
नाथ! चरण में फल अर्पित हम मोक्षमहाफल प्राप्त करें॥

ॐ हूँ श्री 108 आचार्य विरागसागरमुनीन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

क्षायिकदर्शन-ज्ञान-वीर्य-सुख, अनुजीवी गुण प्रगटाऊँ।
अवगाहन, सूक्ष्मत्व, अगुरुलघु, अव्याबाध सहज पाऊँ॥
प्रतिजीवी गुण प्रगट जहाँ हों, शुद्ध सिद्ध पद मिल जाये।
नित्यानंद स्वभावी आतम फिर जग में न रुल पाये॥
यही भावना लेकर आया, श्री चरणों में हे स्वामिन्!।
दो विराग गुरु निज विरागता, पाऊँ निज चैतन्य सदन॥
अष्ट द्रव्य का अर्घ्य चरण में, अर्पित करने लाया हूँ।
ज्ञायक-ज्ञेय दोष हे गुरुवर, सहज मेंटने आया हूँ॥

ॐ हूँ श्री 108 आचार्य विरागसागर मुनीन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

जिनवाणी सुत हे गुरु! आप गुणों की खान।
सिद्ध प्रभु जैसा मिले, मुक्ति का वरदान॥

हे ऋषिवर! यतिवर! हे गुरुवर! हे मुनिवर! रत्नत्रय धारी।
छत्तीस मूलगुण पाल रहे व्रत समिति गुप्तियों के धारी॥
निज में अखंड ज्ञायक प्रभु की सत्ता को जब स्वीकार किया।
जिनलिंग स्वयं ही प्रगट हुआ जन-जन ने जय-जयकार किया॥
सम्यक्त्व शुद्ध अनुभव विशुद्ध, जब निज में निज को प्राप्त किया।
चैतन्य तेज तब प्रगट हुआ, दर्शन मोहान्ध समाप्त किया॥

सम्यक्त्व महानिधि की महिमा तिहुँ लोकों में गाई जाती।
अमरों की मनहर अमरपुरी इसके आगे शर्मा जाती॥

हे नाथ! ज्ञान की महिमा को, निज भेदज्ञान से जाना है।
मैं ज्ञानानंद स्वभावी हूँ, अनुभव से आप बखाना है॥

हे ज्ञान-ध्यान तप लीन श्रमण, मेरे अन्तस में वास करो।
शुद्धात्म ज्ञान हो प्रगट मेरे, अज्ञान भाव का नाश करो॥

बाईस परीषह, द्वादश तप दस धर्म सहज ही पाल रहे।
शुद्धोपयोग में रमकर के शुभ-अशुभ सहज ही टाल रहे॥

व्यवहार और निश्चय स्वरूप, रत्नत्रय के आराधन में।
रहते हो गुरुवर आप निरत, निज पंचाचार के पालन में॥

शुद्धात्म तत्व के अनुभव की, नित मणियाँ बाँटा करते हो।
षट्द्रव्यों में चैतन्य द्रव्य-गुण-पर्यय छाँटा करते हो॥

पाने को नित्य निराकुल सुख, अनुभव पथ पर बढ़ते जाते।
आगम कहता है शिवपथ पर, ये कर्मों से लड़ते जाते॥

अध्यात्म और आगम सचमुच, साकार आपकी चर्या में।
हे महायोगि! हे महासन्त, अनुभव प्रगटा है किरिया में॥

मैं भी अनगार बनूँ गुरुवर, बस यही भावना भाता हूँ।
शुद्धात्म प्रकाशी महा अर्घ्य, गाकर जयमाल चढ़ाता हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री 108 आचार्य विरागसागर मुनीन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मंगल की शुभ भावना, स्वातम मंगल पाय।
मंगल भावों से गुरु, पुष्पांजली चढ़ाय॥
(परिषुष्पांजलिं क्षिपामि)

आचार्य श्री विरागसागर जी की आरती

हे गुरुवर तेरे चरणों में हम वंदन करने आये हैं।
हम वंदन करने आये हैं हम आरति करने आये हैं॥

तुम काम, क्रोध, मद, लोभ, छोड़ निज आतम को पहिचाना है।
घर कुटुम्ब छोड़कर निकल पड़े, धर लिया दिगम्बर बाना है॥

छोटी सी आयु में स्वामी, विषयों से मन अकुलाया है।
तप, संयम, शील, साधना में दृढ़ अपने मन को पाया है॥

कितना भीषण संताप पड़े, हो क्षुधा तृषा की बाधायें।
स्थिर मन से सब सहते हो, बाधायें कितनी आ जाये॥

नहीं ब्याह किया घर बार तजा, समता के दीप जलाये हैं।
हे महाव्रती संयमधारी, चरणों में सेवक आये हैं॥

तुम जैन धर्म के सूरज हो, तप त्याग की अद्‌भुत मूरत हो।
है धन्य धन्य महिमा तेरी, तम हरने वाले सूरज हो॥

शिवपुर पथ के अनुगामी का अभिवंदन करने आये हैं।

सुलभाः पुरुषा लोके सततं प्रियवादिनः।
अतप्रियस्यच पश्यस्य वक्ता श्रोता च दुर्लभः।।

अर्थ—इस दुनिया में मीठी-मीठी बातें बनाने वाले बहुत पाये जाते हैं पर कड़वी और हितकर वाणी के कहने तथा सुनने वाले दोनों ही दुर्लभ हैं

आचार्य श्री विमर्शसागर महाराज की पूजन

(रचयिता : श्रमण विचिन्त्यसागर (संघस्थ)

स्थापना

मन भाव सजाकर ये, गुरु चरणों में आये।
तुम रत्नत्रय धारी, हम रत्नत्रय चाहें।
आओ तिष्ठो गुरुवर, मेरे हृदयासन पर।
कर दो हमको पावन, अपने द्वय-पग धरकर।
दिखलाओ हे गुरुवर, अब मुक्ति की राहें। तुम...

ॐ ह्रूँ परम पूज्य आचार्यश्री विमर्शसागर मुनीन्द्र अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्, अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

जल

भावों का जल भरकर, श्रद्धा भाजन लाये।
तुम जैसी निर्मलता पाने, मन ललचाये॥
मिथ्यात्व असंयम का, अंधियार घना छाया॥
अविनाशी चेतन का, नहिं रूप नजर आया॥
मेंटो ये जनममरण, शुभभाव सजा लाये। तुम...

ॐ ह्रूँ परम पूज्य आचार्यश्री विमर्शसागर मुनीन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चंदन

रागादिक भावों से, भवताप बढ़ाया है।
स्वाभाविक शीतलता का, घात कराया है।
अर्पित गुरुवर चरणों ये, मलयागिरि चंदन।
मेंटो गुरुवर मेरा ये, भव भव का क्रन्दन।
जिसमें भवताप न हो, वो वैभव मिल जाये। तुम...

ॐ ह्रूँ परम पूज्य आचार्यश्री विमर्शसागर मुनीन्द्राय संसार ताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षत

अब तलक विभावों की, परिणति में भरमाया।
स्वातम पद पाने की, मन चाहत ले आया।
ये पुंज धवल अर्पण, मम् भाव धवल होवें।
पर्यायों में अपनी, आतम बुद्धि खोवें।
सम्पूर्ण विभावों की अब, संतति नश जाये। तुम...

ॐ ह्रूँ परम पूज्य आचार्यश्री विमर्शसागर मुनीन्द्राय अक्षय पदप्राप्तये अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

निष्काम आत्मा का, स्वामी हूँ हे गुरुवर।
अब्रह्म के वश होकर, भटका हूँ मैं दर-दर।
निज परमब्रह्म, चेतन-रस का रसपान करूँ।
शैलेषि अवस्था को, पाने मन भाव धरूँ।
ये पुष्प तुम्हें अर्पित मम, काम विनश जाये। तुम...

ॐ ह्रूँ परम पूज्य आचार्यश्री विमर्शसागर मुनीन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नैवेद्य

निज चिदानंद-रस का, मैं पूर्ण समुन्दर हूँ।
गुरुवर अनंतबल का, मैं स्वामी अंदर हूँ।
ये क्षुधा की बीमारी, भव-भव भटकाती है।
जितना मैं तृप्त करूँ, ये बढ़ती जाती है।
ये क्षुधा नशाने को, नैवेद्य चरण लाये। तुम...

ॐ ह्रूँ परम पूज्य आचार्यश्री विमर्शसागर मुनीन्द्राय क्षुधा रोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वमापीति स्वाहा।

दीप

मोहान्ध बना गुरुवर, पर में ही भरमाया।
निज-पर का हे गुरुवर ! नहिं भेद समझ पाया।
ये दीप समर्पित है, मोहान्ध नशाने को।

निज की चैतन्यमयी, परिणति प्रगटाने को।
आशीष यही देना यह, मोह विनश जाये। तुम...

ॐ ह्रूँ परम पूज्य आचार्यश्री विमर्शसागर मुनीन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप

जब कर्म उदय आये, मैंने राग और द्वेष किया।
कर्मों ने जो भी दिया, मैंने वैसा भेष लिया।
कर्मों के बश होकर, भव रीति बढ़ाई है।
निष्कर्म निजातम से, न प्रीति लगाई है।
ज्यों अनल में धूप जले, मम् कर्म भी जल जायें। तुम...

ॐ ह्रूँ परम पूज्य आचार्यश्री विमर्शसागर मुनीन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

फल

संयोग सजाकर के, सुख मान रहा था मैं।
उनकी नश्वरता से, अन्जान रहा था मैं।
भव-भव में कर्मों के, फल में ललचाया हूँ।
निज गुण के फल पाने, चरणों में आया हूँ।
सुख रस से भरा हुआ, शुद्धातम फल पायें। तुम...

ॐ ह्रूँ परम पूज्य आचार्यश्री विमर्शसागर मुनीन्द्राय महामोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

अर्घ्य

अर्घावलियों के संग, शुभभाव चढ़ाते हैं।
चाहत अनर्घ-पद की, नित हृदय सजाते हैं।
स्वातम अनर्घ पद बिन, भव-भव में दुःख पाया।
सुख पाने पद पाये, पर सुख न कहीं पाया।
अक्षय स्वातम पद का, अक्षय सुख मिले जाये। तुम...

ॐ ह्रूँ परम पूज्य आचार्यश्री विमर्शसागर मुनीन्द्राय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

निस्पृहता की आप हो नूतन परिभाषा।
चर्या गुरुवर आपकी बोधि की भाषा॥
दर्शन ज्ञान चरित्र शुभ तप और वीर्याचार।
पूरी दृढ़ता से करें पालन पंचाचार॥
मन वच तन को गुप्तकर आतम करें विहार।
अशुभ टला, शुभ चाह न, शुद्ध का करें विचार॥
सत्य अहिंसा, शील और अपरिग्रह का हार।
अचौर्य आदि महाव्रतों से चेतन श्रृंगार॥
क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, तप त्याग।
आकिन्चन संयम धरम, ब्रह्मचर्य अनुराग॥
तरुणाई में ही लगी अच्छी संयम राह।
विषय भोग भोगे नहीं न ही किया विवाह॥
विषय भोग संसार से जगा विरक्ति भाव।
गुरु ''विराग'' को पा लिया जैसे शीतल छाँव॥
गुरु ''विराग'' में कर लिया मात-पिता का दर्श।
छोड़ नाम ''राकेश'' आप, धारण किया ''विमर्श''॥

ॐ ह्रूँ परम पूज्य आचार्यश्री विमर्शसागर मुनीन्द्राय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

गुरु आशिका

गुरुवर के पावन गुणों की मंगल गीता गाते हैं।
आज यहाँ गुरु पावन गुण हम गाते और सुनाते हैं।।
गुरुवर की इस आशिका से भव के पाप नशाते हैं।
श्री गुरुवर की आशिका हम अपने शीष चढ़ाते हैं।।

।।पुष्पांजलि क्षिपामि।।

आचार्य श्री विमर्शसागर महाराज की आरती

(रचयिता : श्रमण विचिन्त्यसागर (संघस्थ)

रत्नों का दीपक लाया, भावों का घी भर लाया।
कंचन की थाली गुरुवर आरती,
ओ-गुरुवर हम सब उतारें तेरी आरती,
ओ गुरुवर हम सब उतारें तेरी आरती।

ग्राम जतारा जन्म लिया है, भगवती हैं माता-2।
सनतकुमार के लाल तुम्हें, हम-2, झुका रहे माथा।। ओ गुरुवर.....
पाँच महाव्रत धारी गुरुवर, परीषह के जेता।
मुक्ति पथ के तुम ही गुरुवर-2, हो सच्चे नेता।।ओ गुरुवर.....
बाल ब्रह्मचारी गुरुवर न, झूठा जग भाया।
गुरु 'विराग' के चरणों आकर-2, संयम अपनाया।।ओ गुरुवर.....
धरती अम्बर दशों दिशाएँ, वंदन करती हैं।
सारी सृष्टि गुरु चरणों में-2, अभिनंदन करती है।।ओ गुरुवर.....
करूणा सागर गुरु हमारे, चरणों बलि-बलि जायें।
जब तक मुक्ति मिले न हमको-2, भव-भव तुमको पायें।।ओ गुरुवर.....
वीतरागता इनकी चर्या से, नित झरती है।
चरणों में नत होके साधना-2, अभिनंदन करती है।। ओ गुरुवर............
छोटे बाबा सिद्ध क्षेत्र, अहार के आप कहाते।
जो भी श्रद्धा से आता है, सबके कष्ट मिटाते।।।। ओ गुरुवर............
अतिशय कारी बाबा हैं ये, जो भी चरणों आते।
अपने मन की सभी मुरादें, वो पूरी कर जाते।।।। ओ गुरुवर............
शान्तिनाथ प्रभु के लघुनंदन, सुर-नर सब गुण गाते।
यक्ष-यक्षणी संग देव गण, पूजा नित्य रचाते।।।। ओ गुरुवर............

अर्घावली

विद्यमान बीस तीर्थंकर का अर्घ

सीमंधर युगमंधर बाहु सुबाहु सुजात स्वयंप्रभ जी।
वृषभानन जी अनंतवीर्य जी सूरप्रभ विशालकीर्ति।।
सिरि वज्रधर चंद्रानन, भद्रबाहु भुजंगम ईश्वर जी।
नेमी वीरसेन महाभद्र देवयशाजितवीरय जी।।
पंच विदेह विराजित रहते बीस तीर्थंकर आप सभी।
जल-फल अर्घ चढ़ाऊँ वंदूँ मिट जाये भवताप सभी।।

ॐ ह्रीं श्री विद्यमान विंशति तीर्थंकरेभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

अकृत्रिम चैत्यालय का अर्घ

भवन ज्योतिषी व्यंतर वासी कल्पदेव में कहे विमान,
तीन लोककृत्रिम-अकृत्रिम चैत्यालय को करूँ प्रणाम।
जल चंदन ले अष्ट दरब को थाल सजाकर लाया हूँ,
दुष्ट कर्म मम शांत करो मैं, अर्घ चढ़ाने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री कृत्रिमा-कृत्रिम चैत्यालय सम्बन्धी जिन बिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री सिद्ध प्रभु का अर्घ

निर्भय! निर्मल! निराकार! हे शोक रहित! निरहंकारी,
बंधरहित! हे विश्वशांत! है तुमको धोक सदा मेरी
जल गंधादिक अष्ट दरब से पूजूँ मैंटो आक्रंदन,
हे विशुद्ध! हे सिद्ध! प्रभु को शत-शत बार विनम्र नमन्॥

ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राधिपतये सिद्ध परमेष्ठिने अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री आदिनाथ का अर्घ

आदि विधाता युगपत् ज्ञाता भविजन को तुम साता हो,
ज्ञान दिवाकर मोह प्रहारक दर्शन-ज्ञान प्रदाता हो।
करुणावारिधि तेरे चरणों, अष्ट दरब को लाया हूँ
कर्म नाशकर मुक्ति दिलाओ, नमूँ आश करि आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्री चन्द्रप्रभ का अर्घ

धवल वर्ण हे धवल! मनोहर धवल तुम्हारा चेतनवास,
दर्शन-ज्ञान अनंत शक्ति-सुख तेरा ध्यान महा विश्वास।
अष्ट दरब को चरण चढ़ाकर, धवल बनूँ पाने शिवधाम,
चन्द्रप्रभ के चरणकमल में मेरा बारम्बार प्रणाम॥

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

श्री शांतिनाथ का अर्घ

कामदेव-चक्री-तीर्थंकर सुन्दर रूप तुम्हारा है,
करुणाधारी-आनंदकारी, तेरी अन्तर धारा है।
तीन लोक से वन्दनीय तुम मेरा अर्घ करो स्वीकार,
शांतिनाथ! हे शांति प्रदाता! तुमको वन्दूँ बारम्बार॥

ॐ ह्रीं श्री शांतिनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

श्री पार्श्वनाथ का अर्घ

हे प्रभु! तुमने ध्यान लगाकर जीत लिया उपसर्ग महान्,
तीन लोक से वन्दनीय तुम सब प्राणी गाते गुणगान।
तेरी महिमा अद्भुत लगती अर्घ चढ़ाऊँ लेकर नाम,

पार्श्वनाथ दुःख दूर करो मम तुमको बारम्बार प्रणाम॥
ॐ ह्रीं श्री पार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

श्री महावीर स्वामी का अर्घ

गणधर-हलधर-चक्रगदाधर-विद्याधर पूजैं मन लाय,
दुःख विनाशक ज्ञान प्रकाशक वंदन करत महासुख छाय।
अर्घ चढ़ाकर करूँ प्रार्थना अंतिम महावीर भगवान,
नाश करो मेरे अघ सारे मेरा सौ-सौ बार प्रणाम॥
ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

श्री चौबीसी का अर्घ

कमलासन पर शोभित होते दर्शन ज्ञान लीन भगवान्,
जो भी तेरे गुण को गाते, वे पा जाते सम्यग्ज्ञान।
चौबीसों तीर्थंकर पद में अर्घ बनाकर लाया हूँ,
शत-शत बार विनम्र नमन कर गुण को पाने आया हूँ॥
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विन्शति तीर्थंकरेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

श्री बाहुबलि का अर्घ

विंध्याचल पर्वत पर तुमने शुक्ल ध्यान लगाया था,
मोह नाशकर वीतरागता पाकर ज्ञान सजाया था।
अष्ट-द्रव्य ले तेरे चरणों पाने आया दर्शन-ज्ञान,
गोमटेश के युगल चरण में शत्-शत् बार विनम्र प्रणाम॥
ॐ ह्रीं श्री बाहुबलिजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

श्री पंचयति बालयति का अर्घ

ब्रह्मचर्यधारी हे भगवन्! अद्भुत शक्ति अकंप महान्,

वासुपूज्य-मलि-नेमि-पार्श्व जिन! महावीर को करूँ प्रणाम।
वसुविधि द्रव्य मनोहर लेकर अर्घ चढ़ाऊँ पाने धाम,
नमन करो स्वीकार हमारा, दो मुझको निज पद विश्राम॥

ॐ ह्रीं पंचबालयतिजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोलहकारण भावना का अर्घ

एक इन्द्री से पचइन्द्री तक सब प्राणी होवे कल्याण,
ज्ञान-विनय-भक्ति कर पाऊँ अर्हत भगवन् के गुणधाम।
दरश विशुद्धि सोलह भावन हृदय धरूँ हे जिन! भगवान्,
अर्घ समर्पित कर तीर्थंकर पद को पाने करूँ प्रणाम॥

ॐ ह्रीं श्री दर्शन विशुद्धि आदि षोडश कारणेभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पंचमेरु का अर्घ

मेरु पर्वत-विजय-अचल मंदर-विद्युन्माली पच नाम,
अस्सी मन्दिर मणिमय मूरत अकृत्रिम प्यारे भगवान्।
सहस्र आठ जिन छह सौ चालीस, दर्शाते जो दर्शन ज्ञान,
अर्घ चढ़ाऊँ जिन सा बनने सबके चरणों नम्र प्रणाम॥

ॐ ह्रीं श्री पंचमेरु सम्बन्धी अशीति जिनचैत्यालयेभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नंदीश्वर द्वीप का अर्घ

हाथ सहस दो अवगाहन की प्रतिमा हैं नन्दीश्वर द्वीप,
पद्मासन में राजित आभा सूर्य समां, सुर को संदीप।

वसुदिन अर्घ चढ़ाकर चरणों चारों दिश पूजूँ जिनधाम,
पंच सहस छह सौ सोलह जिन चरणों में अति नम्र प्रणाम॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे द्विपंचाशत् जिनालयस्थ जिन बिम्बेभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दशलक्षण धर्म का अर्घ

उत्तम क्षमा आदि दश धर्म जग के रोग मिटाते हैं,
जो भी ऋषिवर पाते उर में वे ईश्वर बन जाते हैं।
भव आताप मिटाने भगवन् दश धर्मों का गान करूँ,
अर्घ चढ़ाऊँ उर में पाऊँ नमन सदा श्रद्धान वरूँ॥

ॐ ह्रीं श्री उत्तमक्षमादि दशलक्षण धर्मांगाय अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

रत्नत्रय का अर्घ

सम्यक् दर्शन ज्ञान चरित ही जन्मरोग भव नाशक है,
धन्य महाधरती पर प्राणी जो रत्नत्रय साधक है।
अष्ट दरब को अर्पित करके तीनरतन का पाऊँ धाम,
रत्नत्रयधारीको निशदिन मेरा सौ-सौ बार प्रणाम॥

ॐ ह्रीं श्री सम्यक्-रत्नत्रयाय अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

जिनवाणी का अर्घ

सात तत्त्व छह द्रव्य प्रकाशक तीन लोक की माता हो,
तेरी करुणा महामहिम जग देती सबको साता हो।
तीर्थंकर ध्वनि गणधर ने सुनि द्वादशांगमय किया बखान,
हे सरस्वती! शिवसुखदायी, अर्घ समर्पन करूँ प्रणाम॥

ॐ ह्रीं श्री जिनमुखोद्भव सरस्वती देव्यै: अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आचार्यश्री विरागसागर जी का अर्घ

सूरज चाँद करें नित वन्दन तीर्थंकर के लघुनन्दन,
कुन्दकुन्द सा चारित जिनका पंचम युग के हैं भगवन्।
विद्या वारिधि ज्ञान दिवाकर चरणों अर्घ करूँ अर्पन,
गुरुवर विरागसागर पद में शत-शत बार विनम्र नमन्॥

ॐ हूँ श्री परम पूज्य आचार्यश्री विरागसागर यतिवरेभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

आचार्यश्री विमर्शसागर जी का अर्घ

भावों का अर्घ्य चढ़ाने गुरु चरणों में आये हैं।
निज अनर्घ पद की चाह लिये झोली फैलाये हैं।
शुभ अर्घ्य चढ़ा जीवन में रत्नत्रय प्रगटायेंगे।
गुरु विमर्श के गुणों की मंगल गीता गायेंगे।
गुरु की पूजा रचायेंगे, मंगल गीता गायेंगे।

ॐ हूँ श्री परम पूज्य आचार्यश्री विमर्शसागर यतिवरेभ्यो अनर्घ पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सभी मुनिवरों का अर्घ

वीतरागमय लक्ष्य बनाया भाव सहित मुनि पद को धार,
लीन रहें निज आतम में नित छोड़ दिये संसार विचार।
मुनिवर तीन न्यून नवकोटि शिवपुर गामी कहे प्रधान,
अर्घ चढ़ाऊँ सब मुनियों को शत्-शत् बार विनम्र प्रणाम॥

ॐ ह्रीं श्री त्र्यून नवकोटि मुनिवरेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्वाण क्षेत्र का अर्घ

अष्ट करम को ध्यान अग्नि से नाश दिया, पाया निज सार,
अष्टापद-सम्मेदाचल-पावापुर-चंपापुर-गिरनार।
चौबीसों निर्वाण भूमि को अर्घ चढ़ाऊँ विनती धार,
नित प्रति वन्दूँ पावन थल को पाने निज में निज पद सार॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थंकर निर्वाणक्षेत्रेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ्य

अर्हत देव सदा मैं पूजूँ, सिद्ध प्रभु उर लाऊँ मैं,
चरणाचार्य धरूँ उवझाय, साधु पंच गुरु ध्याऊँ मैं।
जिनवाणी जो द्वादशांगमय अमृत जैसे हैं शुभ वैन,
पंचगुरु के दर्शन करके होते तृप्त हमारे नैन॥

षोडश भावन दशविध धर्म रत्नत्रय पूजूँ उर लाय,
अकृत्रिम-कृत्रिम चैत्यालय चैत्य जजूँ नित मन हर्षाय।
पंचमेरु-नन्दीश्वर देवालय में राजित जिन भगवान,
हृदय धरूँ नित भावन वन्दूँ पाने अपना शिवपद धाम॥

सम्मेदाचल-अष्टापद-पावापुर-चम्पापुर-गिरनार,
बीस विदेह क्षेत्र प्रभु पूजूँ चौबीसों जिन लूँ उरधार।
जिनवर के वसु सहस्रनाम शुभ बहुविधि गाऊँ उनका सार,
सब मंगलदायी सुखकारी नमहूँ उर से बारम्बार॥

दोहा

जल-गंधाक्षत-पुष्प-चरु-दीप-धूप-फल लाय।
सर्व पूज्य पद पूजहूँ, बहुविधि भक्ति बढ़ाय॥

ॐ ह्रीं श्री अर्हत्-सिद्ध-आचार्य-उपाध्याय-सर्वसाधुभ्यो, द्वादशांग जिनागमेभ्यो, दशलक्षण धर्मेभ्यो, षोडश कारणेभ्यो, सम्यग् दर्शन-ज्ञान-चारित्रेभ्यो, त्रिलोक स्थित कृत्रिमा-कृत्रिम जिन चैत्यालयेभ्यो, नन्दीश्वर-द्वीप स्थित द्विपंचाशत जिन चैत्यालयेभ्यो पंचमेरु स्थित अशीति जिनचैत्यालयेभ्यो श्री सम्मेद-अष्टापद-ऊर्जयन्तगिरि-चम्पापुर- पावापुर आदि सिद्ध क्षेत्रेभ्यो सातिशय क्षेत्रेभ्यो विद्यमान विंशति तीर्थंकरेभ्यो अष्टाधिक जिन सहस्रनामेभ्यो, श्री वृषभादि चतुर्विन्शति तीर्थंकरेभ्यो जलादि महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांति पाठ

शांतिनाथ मुख शशि उनहारी, शील गुण व्रत संयमधारी।
लखन एक सौ आठ विराजै, निरखत नयन कमलदल लाजै ॥ 1 ॥

पंचम चक्रवर्ती पदधारी, सोलम् तीर्थंकर सुखकारी।
इन्द्र-नरेन्द्रपूज्य जिन नायक, नमो शांतिहित शांतिविधायक ॥ 2 ॥

दिव्यविटप पहुपन की वरषा, दुन्दुभि आसन वाणीसरसा।
छत्र चमर भामण्डल भारी, ये तुव प्रातिहार्य मनहारी ॥ 3 ॥

शांति जिनेश शांति सुखदाई, जगत पूज्य पूजौं शिरनाई।
परम शांति दीजै हम सबको, पढ़ै तिन्हें पुनि चार संघ को ॥ 4 ॥

(बंसत तिलका)

पूजैं जिन्हें मुकुट हार किरीट लाके।
इन्द्रादि देव अरु पूज्य पदाब्ज जाके॥
सो शान्तिनाथ वर वंश जगतत्प्रदीप।
मेरे लिए करहिं शांति सदा अनूप ॥ 5 ॥

(इन्द्रव्रजा)

संपूजकों को प्रतिपालकों को, यतीन को औ यतिनायकों को
राजा-प्रजा-राष्ट्र सुदेशको ले, कीजै सुखी हे जिन शांति को दे ॥6॥

होवे सारी प्रजा को सुख बलयुत हो धर्मधारी नरेशा।
होवे वर्षा समय पे तिलभर न रहे व्याधियों का अंदेशा॥

होवै चोरी न जारी सुसमय बरतैं हो न दुष्काल मारी।
सारे ही देश धारैं जिनवरवृषको जो सदा सौख्यकारी॥7॥

घातिकर्म जिन नाश करि, पायो केवलराज।
शांतिकरो सब जगत में, वृषभादिक जिनराज॥8॥

शास्त्रों का हो पठन, सुखदा लाभ सत्संगती का।
सद्वृत्तों का सुजस कहके, दोष ढाकूँ सभी का॥

बोलूँ प्यारे वचन हित के, आपका रूप ध्याऊँ।
तो लौं सेऊँ चरण जिनके, मोक्ष जौ लों न पाऊँ॥9॥

तव पद मेरे हिय में, मम हिय तेरे पुनीत चरणों में।
तब लौं लीन रहौं प्रभु, जब लौं पाया न मुक्ति पद मैंने॥10॥

अक्षर पद मात्रा से दूषित, जो कुछ कहा गया मुझसे।
क्षमा करो प्रभु सो सब, करुणा करि पुनि छुड़ाहु भवदुख से॥11॥

हे जगबन्धु जिनेश्वर! पाऊँ तव चरण शरण बलिहारी।
मरण समाधि सुदुर्लभ, कर्मों का क्षय सुबोध सुखकारी॥12॥

(पुष्पांजलि क्षिपामि)

(यहाँ पर नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करना चाहिए)

विसर्जन पाठ

बिन जाने वा जानके, रही टूट जो कोय।
तुम प्रसाद ते परमगुरु, सो सब पूरन होय॥1॥

पूजन-विधि जानूँ नहीं, नहिं जानूँ आह्वान।
और विसर्जन हूँ नहीं क्षमा करहुँ भगवान॥2॥

मन्त्रहीन धनहीन हूँ, क्रियाहीन जिनदेव।
क्षमा करहुँ राखहु मुझे, देहु चरण की सेव॥3॥

आये जो-जो देवगण, पूजैं भक्ति-प्रमाण।
ते सब जाबहूँ कृपाकर, अपने-अपने थान॥4॥

श्री जिनवर की आशिका, लीजै शीष चढ़ाय।
भव-भव के पातक कटें, दुःख दूर हो जाय॥5॥

(कायोत्सर्गं करोम्यहम्)

स्तुति पाठ

मैं तुम चरण-कमल गुणगाय, बहुविधि भक्ति करी मनलाय।
जनम जनम प्रभु पाऊँ तोय, ये सेवा-फल दीजे मोय॥1॥

कृपा तिहारी ऐसी होय, जामन-मरन मिटावो मोय।
बारबार मैं विनती करूँ, तुम सेवा भवसागर तरूँ॥2॥

नाम लेत सब दुःख मिट जाय, तुम दर्शन देख्यो प्रभु आय।
तुम हो प्रभु देवन के देव, मैं तो करूँ चरण की सेव॥3॥

जिन पूजा तैं सब सुख हाये, जिन पूजा सम और न कोय॥
जिन पूजा तैं स्वर्ग विमान्, अनुक्रम तैं पावै निर्वाण॥4॥

मैं आयो पूजन के काज, मेरो जन्म सफल भयो आज।
पूजा करके नवाऊँ शीश, मम अपराध क्षमहुँ जगदीश॥5॥

सुख देना दुःख मैंटना यही तुम्हारी बान।
मो गरीब की वीनती, सुन लीज्यो भगवान॥

पूजन करते देव की, आदि-मध्य-अवसान।
सुरगन के सुख भोगकर, पावै मोक्ष निधान॥

जैसी महिमा तुम विषै, और धरे नहिं कोय।
जो सूरज में ज्योति है, नहिं तारागण होय॥

नाथ तिहारे नाम तैं, अघ छिन माँहि पलाय।
ज्यों दिनकर परकाशतैं, अंधकार विनशाय॥

बहुत प्रशंसा क्या करूँ, मैं प्रभु बहुत अजान।
पूजन विधि जानूँ नहीं सरन राखि भगवान॥

आरती

अरहंत जय जय, सिद्ध प्रभु जय जय-2
साधु जीवन जय जय, जिन धर्म जय जय।
अरहंत मंगल, सिद्ध प्रभु मंगल-2
साधु जीवन मंगल, जिन धर्म मंगल।
अरहंत उत्तम, सिद्ध प्रभु उत्तम-2
साधु जीवन उत्तम, जिन धर्म उत्तम।
अरहंत शरणं, सिद्ध प्रभु शरणं-2
साधु जीवन शरणं, जिन धर्म शरणं।

।।पूजा से त्रिलोक में पूजा।।

"पूयाफलेण तिलोके सुरपुज्जो हवेइ सुद्धमणो।।"

अर्थ—शुद्ध मन वाले को पूजा का फल, तीन लोक में सुरों से पूजित अरिहंत पद मिलता है।

पढ़ाने योग्य शिष्य

कृतज्ञाः शुचयः प्राज्ञाः कल्या द्रोह विवर्जिताः।
गुरुभिस्त्यकाशाठयाश्चपाठयाःशिष्या विवेकिभिः।।

अर्थ : जो कृतज्ञ हों, पवित्र हों, बुद्धिमान हों, स्वस्थ हों, द्रोहरहित हों, तथा धूर्तता से रहित हों ऐसे शिष्य, विवेकी गुरुओं के द्वारा पढ़ाने के योग्य है।

पढ़ाने हेतु पात्र

विवेकिनो विनीताश्च गुरु भक्ति परायणाः।
ये शिष्याः सद्व्रताचारास्ते पाठयाः पुण्यहेतवे।।

अर्थ : जो विवेकी हैं, विनयवान् हैं, गुरु भक्ति में तत्पर हैं, और समीचीन व्रतों का आचरण करते हैं वे शिष्य पुण्य के हेतु पढ़ाने के योग्य हैं।

गुरु कैसे शिष्य को चाहते हैं?

गुरुभक्तों भवाद्भीतो विनीतो धार्मिकः सुधीः।
शान्तस्वान्तो ह्यतन्द्रालुः शिष्टः शिष्योऽयमिष्यते।।

अर्थ : जो गुरु भक्त हों, संसार में भयभीत हो, विनयवान् हो, धार्मिक हो, बुद्धिमान हो, शान्तचित हो, आलस्य रहित हो तथा सभ्य हो, ऐसा शिष्य गुरुओं के द्वारा चाहा जाता है।

सच्चे जैन का एक ही पंथ–जिनागम पंथ

जयदु जिणगम पंथो

द्वितीय खण्ड

अनादि–अनिधन

जिनागम पंथ जयवंत हो!
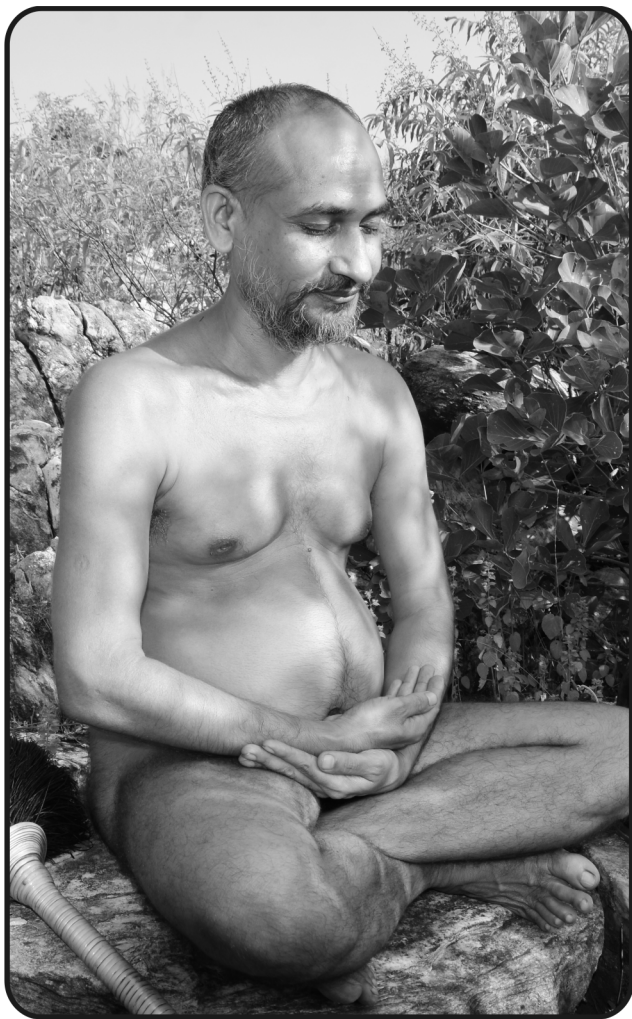
समुच्चय चौबीसी पूजा

ऋषभ अजित संभव अभिनंदन, सुमति पदम सुपार्श्व जिनराय।
चन्द्र पहुप शीतल श्रेयांस जिन, वासुपूज्य पूजित सुरराय॥
विमल अनंत धर्म जस उज्जवल, शांति-कुंथु अर मल्लि मनाय।
मुनिसुव्रत नमि नेमि पार्श्व प्रभु, वर्द्धमान पद पुष्प चढ़ाय॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि-महावीरान्त-चतुर्विंशति-जिन-समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

मुनिमन सम उज्ज्वल नीर, प्रासुक गंध भरा।
भरि कनक कटोरी धीर दीनी धार धरा॥
चौबीसों श्रीजिनचन्द, आनन्दकन्द सही।
पद जजत हरत भवफंद, पावत मोक्षमही॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि-महावीरांतेभ्यो जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

गोशीर कपूर मिलाय, केशर रंगभरी।
जिन चरणन देत चढ़ाय, भव आताप हरी॥चौबीसों.॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि-महावीरांतेभ्यो भवताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

तन्दुल सित सोम-समान, सुन्दर अनियारे।
मुक्ताफल की उनमान, पुंज धरों प्यारे॥चौबीसों.॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि-महावीरांतेभ्यो अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

वरकंज कदंब कुरंड, सुमन सुगन्ध भरे।
जिन अग्र धरों गुनमंड, काम कलंक हरे॥चौबीसों.॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि-महावीरांतेभ्यो कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मन मोदन मोदक आदि, सुन्दर सद्य बने।
रसपूरित प्रासुक स्वाद, जजत क्षुधादि हने॥चौबीसों.॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि-महावीरांतेभ्यो क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तमखंडन दीप जगाय, धारों तुम आगे।
सब तिमिर मोह क्षयजाय, ज्ञानकला जागे॥चौबीसों.॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि-महावीरांतेभ्यो मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

दशगन्ध हुताशन माहिं, हे प्रभु खेवत हों।
मिस धूम करम जरि जाहिं, तुम पद सेवत हों॥चौबीसों.॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि-महावीरांतेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपम् निर्वपामीति स्वाहा।

शुचि पक्व सुरस फल सार, सब ऋतु के ल्यायो।
देखत दृगमन को प्यार, पूजत सुख पायो॥चौबीसों.॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि-महावीरांतेभ्यो मोक्षफल प्राप्तये फलम् निर्वमापीति स्वाहा।

जल फल आठों शुचि सार, ताको अर्घ करों।
तुमको अरपों भवतार, भव तरि मोक्ष वरों॥चौबीसों.॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि, महावीरांतेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा—श्रीमत तीरथनाथ पद, माथ नाय हित हेत।
गाऊँ गुणमाला अबै, अजर अमरपद देत॥

(घत्ता)

जय भव तम भंजन जनमन कंजन, रंजन दिनमनि स्वच्छ करा।
शिवमग-परकाशक अरिगण नाशक, चौबीसों जिनराज वरा॥

(पद्धरि छन्द)

जय ऋषभदेव ऋषिगण नमंत, जय अजित जीत वसु-अरि तुरंत।
जय संभव भवभय करत चूर, जय अभिनंदन आनंदपूर॥
जय सुमति सुमतिदायक दयाल, जय पद्म पद्मदुतितन रसाल।
जय जय सुपास भवपासनाश, जय चंद चंद-तनदुतिप्रकाश॥
जय पुष्पदंत दुतिदंत-सेत, जय शीतल शीतलगुण-निकेत।
जय श्रेयनाथ नुतसहस-भुज्ज, जय वासवपूजित वासुपूज्य॥
जय विमल विमलपद देनहार, जय जय अनंत गुनगन-अपार।
जय धर्म धर्म शिवशर्म देत, जय शांति शांति पुष्टी करेत॥
जय कुंथ कुंथवादिक रखेय, जय अरजिन वसुअरि छयकरेय।
जय मल्लिमल्ल हत मोहमल्ल, जय मुनिसुव्रतव्रतशल्लदल्ल॥
जय नमि नित वासवनुत सपेम, जय नेमिनाथ वृषचक्र नेम।
जय पारसनाथ अनाथनाथ, जय वर्द्धमान शिवनगर साथ॥

(घत्ता)

चौबीस जिनन्दा, आनंदकंदा, पापनिकंदा सुखकारी।
तिनपदजुगचंदा, उदय अमंदा, वासव वंदा, हितकारी॥

ॐ ह्रीं श्री वृषभादि चतुर्विंशति जिनेभ्यो महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोरठा-भुक्ति मुक्ति दातार, चौबीसों जिनराज वर।
तिनपद मनवचधार, जो पूजै सो शिव लहै॥

(इत्याशीर्वादः। पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

आदिनाथ जिन पूजा

(रचयिता-आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज)

हे आदिनाथ तीर्थेश प्रथम, हे धर्मतीर्थ नायक प्रभुवर।
हे नाभिराय मरुदेवी सुत, हे दयासिंधु! हे करुणाकर॥
हे नाथ! स्वाश्रय से तुमने, शिवमार्ग सहज प्रगटाया है।
करके बिहार इस नौका में, भवसागर पार लगाया है॥

मैं भी भवसागर पार करूँ, बनकर स्वामिन्! शिवमगचारी।
पाऊँ रागादिक दोष रहित, निज शुद्ध आत्मा अविकारी॥
मैं अष्ट द्रव्य का थाल सजा, हे नाथ! शरण में आया हूँ।
आओ तिष्ठो हृदयासन पर, शुभभाव हृदय में लाया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

जल

हेप्रभो! आपने दुःखदायी, इस जनम-मरण का नाश किया।
मैं अजर, अमर अविनाशी हूँ, ऐसा चैतन्य प्रकाश किया॥
हे नाथ आपके पथ पर ही, चलकर तुम सम बन पाऊँगा।
जब जन्म-जरा-मृत्यु नाशूँगा, अरिहंत महापद पाऊँगा॥
प्रासुक जल लाया प्रभो! अर्पित है त्रय बार।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-वृत्त, पा होऊँ भव पार॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलम् निर्व. स्वाहा।

चंदन

भव-भव में पाये भव अनंत, लेकिन निज विभव नहीं पाया।
अब शांत करूँ भव ज्वाला को, शीतल चंदन लेकर आया॥
निज में उपयोग सिमट आया, भव-भव का क्षण में नाश हुआ।

शीतल चैतन्य सरोवर में, हे नाथ! सहज आवास हुआ॥
चरणों में अर्पित अहा! चन्दन की यह धार।
बनूँ सिद्ध परमातमा, अविनाशी, अविकार॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्व.स्वाहा।

अक्षत

चिन्मात्र सहज पद पाने को, चिन्मात्र सहज निज को जाना।
हे नाथ! आपने ज्ञायक की, महिमा को जब खुद पहिचाना॥
चक्री, बलभद्र अनेकों पद, मुझको अब इनकी चाह नहीं।
अक्षय शुद्धातम पद पाऊँ, अब मेरी कहीं निगाह नहीं॥
लाया हूँ अक्षत धवल अक्षय पद की आश।
नित्य शुद्ध चिद्रूप की, पाऊँ सहज सुवास।।
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

होकर स्वभाव में लीन प्रभो!, निष्काम भाव प्रगटाया है।
हे नाथ, आपने ब्रह्मचर्य, इसलिए सहज ही पाया है॥
मैं भी निष्काम बनूँ स्वामिन्, नित यही भावना भाता हूँ।
करके अर्पित पुष्पाञ्जलि को, रागादिक भाव मिटाता हूँ॥
सहज शील पालूँ सदा, पाऊँ मुक्ती-धाम।
कामभाव का नाश कर, करूँ आत्मविश्राम॥
ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्व.स्वाहा।

नैवेद्य

झरता शुद्धात्म प्रदेशों से, उपशम रस का झरना झर-झर।
हे विभो! क्षुधा का नाश किया, जब आतम अनुभव हुआ प्रखर॥
मैं क्षुधा रोग का नाश करुँ, इसलिए शरण में आया हूँ।
निज चिदानंद रसपान करुँ, नैवेद्य थाल भर लाया हूँ॥

अरस स्वभावी आतमा, सहज शांति का द्वार।
पुद्‌गल से सुख कामना, है चेतन की हार॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्व. स्वाहा।

दीप

चिद् मोहकर्म के कारण जो, छाया था प्रभु अँधियार घना।
चैतन्य ज्योति के आश्रय से, चिद्‌कर्म सहज ही हुआ फना॥
लाया हूँ कंचन दीप प्रभो!, चरणों इतनी अरदास करूँ।
निर्मोह आत्मा में रमकर, चिद्‌मोह कर्म का नाश करूँ॥
मोहनीय है कर्म जो, सब कर्मों का राज।
ज्ञान-ज्योति के तेज से, मिटे मोह साम्राज॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं! निर्व.स्वाहा।

धूप

आठों कर्मों का मल प्रभु जी, क्षणभर में सहज जला डाला।
जो निर्मल उज्ज्वल चेतन को, करता आया अब तक काला॥
निश्चय निर्बन्ध स्वानुभव से, आठों कर्मों को दहकाऊँ।
मन मोदक धूप चढ़ाता हूँ, निर्बन्ध आत्मा प्रगटाऊँ॥
अष्टकर्म दहकाऊँगा, तुम सम हे भगवान।
आठ गुणों को पाऊँगा, कर निज आतम ध्यान॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्व. स्वाहा।

फल

पर की ममता में फँसकर प्रभु, निज समता को खोता आया।
कर्मों के फल में मस्त रहा, भवसागर में गोता खाया॥
हे नाथ! आपने कर्म और कर्मों का फल जब ठुकराया।
आनन्द कन्द शुद्धातम पा, प्रभु मोक्ष महाफल को पाया॥
कर्म-कर्मफल नाशकर, मोक्ष महाफल पाउँ।
सरस सुगंधित फल चढ़ा, जीवन सफल बनाउँ॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

महार्घ

जग के सारे वैभव को तज, आतम अनर्घ्य पद को पाया।
शुद्धात्म तत्त्व की महिमा को, सुर नर किन्नर सबने गाया॥
स्वातम अनर्घ्य पद मिल जाये, हे नाथ! भावना है मेरी।
नीरादिक अर्घ्य करूँ अर्पण, चिद्रूप साधना है मेरी॥
अष्टद्रव्य का अर्घ्य ले, नाथ! शरण में आय।
पा अनर्घ्य निज आतमा, अष्टम भूमी पाय॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

पंच कल्याणक अर्घ

सर्वार्थ सिद्धि से प्रभु! प्रस्थान किया था।
माता मरुदेवि को धन्य धन्य किया था॥
आषाढ़ वदी दोज को प्रभु गर्भ में आये।
गर्भोत्सव इन्द्रों ने भी आकर के मनाये॥
हे आदिनाथ देव! तेरी वंदना करूँ।
कल्याणकों की भाव से आराधना करूँ॥

ॐ ह्रीं आषाढ़कृष्णा द्वितीयायां गर्भकल्याणक प्राप्ताय श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जब चैत वदी नवमी का शुभ दिन आया।
मरुदेवि माँ की गोद से प्रभु जन्म है पाया॥
जन्मोत्सव इन्द्रों ने भी आकर के मनाया।
स्वर्गों में क्या नरकों में भी आनंद था छाया॥
हे आदिनाथ देव! तेरी वंदना करूँ।
कल्याणकों की भाव से आराधना करूँ॥

ॐ ह्रीं चैत्र कृष्ण नवम्यां जन्मकल्याणक मंडिताय श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

भव भोग रोग जैसा प्रभु आपने जाना।
इन्द्रिय-विषय-कषाय को दुःख रूप ही माना॥
प्रभु! चैत्र कृष्ण नवमी को तप धार लिया जब।
दीक्षा का महा उत्सव इन्द्रों ने किया तब॥
हे आदिनाथ देव! तेरी वंदना करूँ।
कल्याणकों की भाव से आराधना करूँ॥

ॐ ह्रीं चैत्र कृष्ण नवम्यां तप कल्याणक मंडिताय श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

शुद्धात्म ध्यान लीन हो पुरुषार्थ बढ़ाया।
चढ़कर के क्षपक श्रेणि पूर्ण ज्ञान को पाया॥
फाल्गुन वदी एकादशी उत्सव महान था।
धर्मोपदेशना का भी पहला विधान था॥
हे आदिनाथ देव! तेरी वंदना करूँ।
कल्याणकों की भाव से आराधना करूँ॥

ॐ ह्रीं फाल्गुन वदी एकादश्यां ज्ञानकल्याणक मंडिताय श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

सूक्ष्म-क्रिया-प्रतिपाती से फिर योग निरोधा।
व्युपरत-क्रिया-निर्वृत्ति से फिर कर्मों को रोधा॥
थी माघ-कृष्ण-चतुर्दशी मोक्ष को पाया।
इन्द्रादिकों ने मोक्ष-कल्याणक को मनाया॥
हे आदिनाथ देव! तेरी वंदना करूँ।
कल्याणकों की भाव से आराधना करूँ॥

ॐ ह्रीं माघ कृष्ण चतुर्दश्यां मोक्षकल्याणक मंडिताय श्रीआदिनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

भोगभूमि में पुण्य प्रताप, कल्पवृक्षों का रहता योग।
मिला करते सब जीवों को, सहज ही भोग और उपभोग॥
रहा जब भोगभूमि का अन्त, हुये तब हे प्रभु! आदिनाथ।
पा रहे थे तब भविजन क्लेश, समझकर खुद को अरे अनाथ॥
दिया षट्कर्मों का उपदेश, मिटाया क्लेश बने आधार।
कर्मभूमि का है प्रारंभ, बताया काल नियम अनुसार॥
करें कैसे जीवन निर्वाह, मिला था जब ऐसा उपदेश।
असि, मषि, कृषी, शिल्प, वाणिज्य, कला से साधो जीवन शेष॥
प्रजा में छाई शान्ति अपार, कहाये नाथ प्रजापति आप।
सभी ने कीनी जय-जयकार, मिटा सबके मन का संताप॥
तिरासी लाख पूर्व का काल बिताया, राजयोग में नाथ।
भरत-बाहुबलि जैसे पुत्र, पुत्रियाँ ब्राह्मी सुन्दरी साथ॥
सजा करती थी महफिल रोज, अप्सरायें करती थी नृत्य।
सदा नतमस्तक रहते थे, स्वर्ग के देव, इन्द्र बन भृत्य॥
दिवस शुभ आया था तब एक, सजी थी महफिल तब दरबार।
इन्द्र आज्ञा से महफिल में, हुआ नीलांजन का अवतार॥
बजे दम दम दम दम मिरदंग, हुई झन झन झन झन झनकार।
बजे घननं घननं घन घंट, हुई छननं छननं छनकार॥
छिनक में नूपुर युत पदताल, छिनक में जाती थी नभ ओर।
सभी दर्शक जैसे चित्राम्, हो रहे थे अति भाव-विभोर॥
है जीवन जैसे जल की बूँद, करे क्यों कोई अरे विश्वास।
आ रहे आयुकर्म निषेक, न जाने कब हो पूर्ण विनाश॥

नृत्य करती नीलांजन का, आ गया आयुकर्म कराल।
नृत्य रस में न आये विघ्न, अप्सरा प्रगट हुई तत्काल॥
आपको छोड़ किसी को नाथ!, न आया जीवन मृत्यु विचार।
सभी थे नृत्य रंग में लीन, आप वैराग्य सजनि के द्वार॥

वैराग्य भावना

आत्मगुण की अनुपम मणियाँ, रहा करती हैं जगमग नित्य।
पलटती क्षण-क्षण पर्यायें, अरे करती हों जैसे नृत्य॥
हुआ पर्यायों में गाफिल, न जाना चेतन-शुद्ध-स्वरूप।
निरन्जन निर्विकार ध्रुवधाम, अरस अस्पर्श अगंध अरूप॥
पड़ा संसार कीच के बीच, अनादि से चेतन भगवान।
सींचकर जनम-मरण की बेल, महादुःख पाया धर अज्ञान॥
अनादि से निगोद में वास, दुःखों को कहने में असमर्थ।
अरे पृथ्वी, जल, अग्नि, वायु, वनस्पति पर्यय का क्या अर्थ॥
हाय दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय की धर पर्याय।
असंज्ञी पञ्चेन्द्रिय का वेष, ज्ञान बिन किसके माँगू न्याय॥
धरा संज्ञी पंचेन्द्रिय रूप, किया पशुगति पा करुण निनाद।
जगत में सुनने वाला कौन, गाढ़ बन्धन-वध निर्मम नाद॥
नरक में क्षण भर भी न शांति, सहा दुःख छेदन-भेदन हाय।
सुरग में देख-देख ऐश्वर्य अन्य देवों का सहा न जाय॥
हाय पाई मानुष पर्याय, सहा नौ माह गर्भ का वास।
झूलता रहा किये मुख नीच, गर्भ निकसैं पाई अति त्रास॥
रहा करता है मानस क्लान्त, अरे जब होता इष्ट वियोग।
झुलसता हृदय, खड़ा ज्यों वृक्ष आग से, जब अनिष्ट संयोग॥

निभाते साथ कौन कितना, बंधु-बांधव कुटुम्ब परिवार।
व्यर्थ कर आर्त्त-रौद्र परिणाम, हाय दुःख सहे अनेकों बार॥
राज वैभव आज्ञा ऐश्वर्य, पुण्य के हैं सब ही साथी।
बनी सेवक सेना चतुरंग, पियादे रथिक अश्व हाथी॥
पुण्य दे कितनी शीतल छाँव, निराकुल सुख बिन मानस दाह।
भरा दुःख ही दुःख इस जगवास, निराकुल सुख मिलता शिवराह।।
देह अति अशुचि अथिर अपवित्र, घिनावन इसमें न कुछ सार।
क्षीरसागर से करने शुद्ध चला जो उसने मानी हार॥
चाम की सुन्दर आभा में, छुपा रहता कुधातु व्यापार।
जगत में दुर्लभ घृणित पदार्थ, स्रवित होते रहते नवद्वार॥
अशुचि तन में सब करते प्रीति, नहीं दिखते ज्ञायक भगवान।
करे जो तप निश्चय-व्यवहार, सहज पाये निज तत्व महान॥
भोग की गहन वितृष्णा में, कहाँ जाना जीवन अनमोल।
भोग सेवन में लगते इष्ट, किन्तु परिपाक समय विषघोल॥
मोह की होती जब-जब जीत, चेतना जब-जब भी हारी।
लगा करती है सबको हाय, भोग कुसुमाबलि तब प्यारी॥
तजूँ अब पर्यायों का राग, रमूँ निज चेतन जो ध्रुवधाम।
लहूँगा वीतराग चारित्र, करूँगा निज घर में विश्राम॥
आप थे चिन्तवन में लवलीन, देव लौकान्तिक तब आये।
आपके उत्तम भावों की प्रशंसा कर-कर गुण गाये॥
नृत्य के राग रंग में भंग, पड़ा तब हुये आकुलित लोग।
किंतु जब जाना भाव विराग, हुये अत्यंत व्याकुलित लोग॥
बैठकर नाथ! पालकी में, आपने वन को किया बिहार।
इन्द्र देवों ने दीक्षा का मनाया, उत्सव कर जयकार॥

लोंच कर पंचमुष्ठि प्रभु आप, ध्यान में लीन हुए छहमास।
माह छह अंतराय के बाद, हुआ आहार सोम श्रेयांस॥
आपने पाया केवलज्ञान, आपने पाया प्रभु निर्वाण।
आपके चरणों आया नाथ!, करो प्रभु मेरा भी कल्याण॥

गाऊँ मैं नित आरती, करके निर्मल भाव।
सहज स्वानुभव से करूँ, भव का नाथ! अभाव॥

ॐ ह्रीं श्री आदिनाथ जिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपा. स्वाहा।

आदिनाथ भगवान की, पूजा जो नित गाय।
वह 'विमर्श' आतमनिधि, स्वयं सहज प्रगटाय।।

(इत्याशीर्वादः। परिपुष्पांजलि क्षिपामि)

श्री चन्द्रप्रभ जिन पूजा

(रचयिता-आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज)

तर्ज - जहाँ डाल-डाल पर सोने की....

हे चन्द्रप्रभ भगवान हृदय से, तुमको हृदय बुलाऊँ।
हे नाथ ! हृदय में पाऊँ, हे नाथ ! हृदय से ध्याऊँ।
निर्मल भावों से आह्वानन, स्थापन कर पधराऊँ।। हे नाथ...

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननम्।
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

जल

मिथ्यात्व मलिनता के कारण, निज ध्रुवस्वरूप न जाना,
हे नाथ ! असंयम अनुभव से, चारित्र नहीं पहिचाना—
चारित्र नहीं पहिचाना।।
रत्नत्रय जल से जन्म जरा मृतु तीनो रोग नशाऊँ। हे नाथ

ॐ ह्री श्री चन्द्रप्रभजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलम् निर्व. स्वाहा।

चंदन

पर संयोगों की ज्वाला में, झुलसा संताप बढ़ाया,
पर का कर्ता बन-बन करके, उपयोग सदा दहकाया—
उपयोग सदा दहकाया।।
स्वातम शीतलता अनुभव कर संसार ताप विनशाऊँ। हे नाथ...
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चंदनं निर्व.स्वाहा।

अक्षत

दिन-रात आसव्र-भावों का, व्यापार बढ़ाता आया,
कर्मोदय-सत्ता के कारण, संसार-पदों को पाया—
संसार-पदों को पाया।।
अविनाशी अक्षय-पद पाने संसारी पद ठुकराऊँ। हे नाथ...
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुष्प

काषायिक परिणति अनुभव, कर इच्छाओं को उपजाया,
हे नाथ ! चार गति चौरासी-लख, पर्यायों को पाया—
सब पर्यायों को पाया।।
अकषाय स्वभाव करूँ अनुभव, काषायिक भाव हटाऊँ। हे नाथ...
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्व.स्वाहा।

नैवेद्य

हे नाथ ! असाता के कारण नित क्षुधा वेदना पाई,
नहिं जाना भक्ष्य-अभक्ष्य कभी, रसना ने ली अंगडाई—
रसना ने ली अंगड़ाई।।
मैं निजरस-स्वादी बनूँ अहा! यह क्षुधारोग विनशाऊँ। हे नाथ...
ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्व. स्वाहा।

दीप

मोही बनकर भवसागर की लहरों पर नित उछला हूँ,
निर्मोह-स्वभाव नहीं जाना संबंधों में मचला हूँ—
संबंधों में मचला हूँ।।
मोहांधकार हो नाश मेरा नित यही भावना भाऊँ। हे नाथ...

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं ! निर्व.स्वाहा।

धूप

सिद्धों सा वैभव पाकर भी निज स्वाभिमान न जाना,
शुभ-अशुभ विभावों को अपना ऐश्वर्य सदा ही माना—
ऐश्वर्य सदा ही माना।।
आठों कर्मों का दहन करूँ भगवती-आत्मा ध्याऊँ। हे नाथ...

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्व. स्वाहा।

फल

हे नाथ ! बंध फल में अब तक रति-अरति भाव उपजाए,
संवर-निर्जरा मोक्षफल के नहिं उत्तम भाव सुहाए—
नहिं उत्तम भाव सुहाए।।
अब मोक्ष महाफल पाने को मैं परमसमाधि गाऊँ। हे नाथ...

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व. स्वाहा।

अर्घ्य

हाथों में मंगल द्रव्य लिए मंगल भावों को लाया,
दो चंद्रप्रभ भगवान मुझे जो निज अनर्घपद भाया—
जो निज अनर्घपद भाया।।
वसु मंगल द्रव्य समर्पित कर शुद्धात्म शिवालय आऊँ। हे नाथ...

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्व. स्वाहा।

पंच कल्याणक अर्घ

चन्द्रप्रभ गर्भ में आये, उत्सव तिहुँलोकों छाये।
पंचमी वदि चैत सुहाई, माँ सुलक्षणा हर्षाई।।

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्ण पंचम्यां गर्भकल्याणक मंडिताय श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जन्में त्रिभुवन के स्वामी, वदि पौष इकादशि नामी।
पितु महासेन हर्षाये, इन्द्रादिक शीष नवाये।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्ण एकादश्यां जन्मकल्याणक मंडिताय श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

वदि पौष ग्यारसी आई, भगवति जिनदीक्षा पाई।
दुर्द्धर तप को स्वीकारा, रागादि भाव निरवारा।।

ॐ ह्रीं पौषकृष्ण एकादश्यां तप कल्याणक मंडिताय श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

दिन फागुन वदि सप्तमि का, उद्योत ज्ञान रश्मि का।
चउघाति कर्म नशाये, अरिहंत प्रभु कहलाये।।

ॐ ह्रीं फाल्गुन कृष्ण सप्तम्यां केवलज्ञानकल्याणक मंडिताय श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

फाल्गुन सित सप्तमि आई, प्रभु ने भवमुक्ति पाई।
इन्द्रादि महोत्सव कीना, सुख अनुभव नित्य नवीना।।

ॐ ह्रीं फाल्गुन शुक्ल सप्तम्यां मोक्षकल्याणक मंडिताय श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

चन्द्रप्रभ भगवान के चरण कमल सिरनाय।
नाथ ! आप सम बन सकूँ, भाव हृदय हुलसाय।।

जय-जय-जय अष्टम् तीर्थंकर, जय आत्म हितंकर शिवशंकर।
जय करुणासागर भवदुःखहर, जय मुक्ति नागर श्रेयसकर।।

थी चंद्रपुरी नगरी प्यारी, जहाँ आप हुये प्रभु अवतारी।
इन्द्रों ने किया उत्सव हर्षा, तीनों लोकों में सुख वर्षा।।

आयु दस लाख पूर्व पाई, तन शत-पचास धनु ऊँचाई।
पितु महासेन रोमांच करें, माँ सुलक्षणा उर हर्ष धरें।।

बिजली की चमक दिखी जिस क्षण, वैराग्य हृदय जागा तत्क्षण।
आ देव ऋषि अनुमोद करें, ध्रुव-अध्रुव क्या प्रभु शोध करें।।

यह सब क्षण भंगुर जीवन है, अध्रुव है अहो ! विनाशी है।
चैतन्य प्राण से अनुप्राणित, जीवन अखंड अविनाशी है।।

अब नित्य त्रिकाली शुद्ध-बुद्ध, भगवान आत्मा ध्याऊँगा।
जो सिद्ध असंख्य प्रदेश बसा, शरणागत हो प्रगटाऊँगा।।

विमला शिविका पर हो सवार, सर्वार्थ नाम उद्यान गये।
अपरान्ह भगवती जिनदीक्षा, संग सहस नृपति मुनिराज भये।।

त्रय दिवस बाद क्षीरान्न लिया, पंचाश्चर्य तव प्रगट हुये।
नृप सोमदत्त गृह तीर्थ हुआ, नलिनापुर वासी धन्य हुये।।

अपरान्ह प्रगट कैवल्यज्ञान, छद्मस्थ काल त्रय माह रहा।
जिस-जिसने झेली दिव्यध्वनि, सब भविकों का कल्याण अहा।।

सम्मेद शिखर का ललितकूट, निर्वाण स्थली कहलाता।
निर्वाण मार्ग वह पाता जो, निर्वाण भावना को भाता।।

हे चंद्रप्रभ भगवान हमें, निर्वाण महापद मिल जाये।
श्री चरणों में कोटि प्रणाम, निज आतम बगिया खिल जाये।।

ॐ ह्रीं श्री चन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

चंद्रप्रभ भगवान की, करे भक्ति निज भाव।
शुभ 'विमर्श' शुभ आचरण, मिले मुक्ति की छाँव।।

(परि पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री शान्तिनाथ जिन पूजा

(रचयिता-आचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज)

अनुपम शिवशांति प्रदायक प्रभु, हे 'शांतिनाथ' दो शांति हमें।
चैतन्य जलधि में वास करूँ, दे दो सम्यक् विश्रान्ति हमें॥
चक्री तीर्थंकर कामदेव, त्रयपद के धारी कहलाते।
प्रभु! मुझको पद की चाह नहीं, हम तो पद रज पाने आते॥
हे नाथ! आपकी पद-रज से, रत्नत्रय पद को पाऊँगा।
आह्वानन् स्थापन सन्निधि करके, प्रभु को हृदय बुलाऊँगा॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

(परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

शुचिज्ञान जलधि से जलभरकर, लाया हूँ नाथ चढ़ाने को।
दुःखदायक जन्म-जरा-मृत्यु, अपने त्रय रोग मिटाने को॥
हे शांतिनाथ! दुःख के हर्ता, अब मेरा भवदुःख हरण करो।
मैं शुद्धातम में रमण करूँ, हे नाथ! समाधिमरण वरो॥1॥

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

रागादिक सर्व विभाव भाव, कहलाते हैं भव ताप प्रभो!।
अर्पित चरणों शीतल चन्दन, मेंटो अब भव संताप विभो॥
हे शांतिनाथ!... ॥2॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय भवताप विनाशनाय चन्दनं निर्व. स्वाहा।

पद की ममता में फँसकर प्रभु! शुद्धातम पद खोता आया।
अक्षय पद की अब चाह मुझे, अक्षत मोती सम भर लाया॥
हे शांतिनाथ!... ॥3॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्व. स्वाहा।

निज ब्रह्मचर्य की शक्ति से, प्रभु तुमने काम नशाया है।
पुष्पांजलि अर्पित करने को, यह भक्त शरण में आया है॥
हे शांतिनाथ!... ॥4॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्व. स्वाहा।

रसना की तृष्णा के कारण, अणु-अणु को ग्रास बना डाला।
नहिं क्षुधा वेदना हुई शमन, मानो पावक में घी डाला॥
हे शांतिनाथ!... ॥5॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्व. स्वाहा।

मोहान्धकार में भटक-भटक, चारों गति में भरमाया हूँ।
अज्ञान मोह का नाश करूँ, मैं जगमग दीपक लाया हूँ॥
हे शांतिनाथ!... ॥6॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्व. स्वाहा।

काषायिक भाव रहित ऐसी, स्वाभाविक अग्नि जलाई है।
कर्माष्ट धूप खेकर तुमने, त्रिभुवन में गंध उड़ाई है॥
हे शांतिनाथ!... ॥7॥

ॐ ह्रीं श्री शान्तिनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्व. स्वाहा।

सारे फल निष्फल हुये प्रभो! अब शिवफल की है चाह मुझे।
उत्तम-उत्तम भावों के फल, भावों से अर्पित करूँ तुझे॥
हे शांतिनाथ!... ॥8॥

ॐ ह्रीं श्रीशान्तिनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व. स्वाहा।

नीरादिक आठों द्रव्य मिला, शुभ अर्घ्य लिये गुणगान करूँ।
पाऊँ अनर्घ्य पद हे स्वामिन्!, अर्पित कर तेरा ध्यान करूँ॥
हे शांतिनाथ!... ॥9॥

ॐ ह्रीं श्रीशांतिनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

पञ्चकल्याणक

भादों श्यामा सप्तमि को, सर्वार्थ त्याग गजपुर को।
माँ ऐरा गर्भ समाये, हम पूजें ध्यान लगाये॥1॥

ॐ ह्रीं भाद्रपद कृष्णा सप्तम्यां गर्भकल्याणक प्राप्ताय श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जन्मे त्रिभुवन सुखदाई, वदि जेठ चतुर्दशि आई।
इन्द्रों ने जोड़े हाथा, हम चरण झुकायें माथा॥2॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठ कृष्ण चतुर्दश्यां जन्मकल्याणक प्राप्ताय श्रीशांतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

थी जेठ चतुर्दशि काली, शुद्धात्म ध्यान खुशहाली।
वन में तपयोग सम्हारा, हम पूजें सौख्य अपारा॥3॥

ॐ ह्रीं ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दश्यां तप कल्याणक प्राप्ताय श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दिन पौष शुक्ल दसमी का, उद्योत ज्ञान रश्मि का।
प्रभु घाती कर्म नशाया, सुर नर किन्नर यश गाया॥4॥

ॐ ह्रीं पौष शुक्ला दशम्यां ज्ञान कल्याणक प्राप्ताय श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

थी जेठ चतुर्दशि कारी, सम्मेद गिरी सुखकारी।
प्रभु कर्म अघाति नशाये, मुक्ती पद तत्क्षण पाये॥5॥

ॐ ह्री ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दश्यां मोक्ष कल्याणक प्राप्ताय श्री शांतिनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(तर्ज–हे दीन बन्धु...)

हे शांतिदाता शांतिनाथ जय हो तुम्हारी।
भव्यों के त्राता शांतिनाथ जय हो तुम्हारी॥

करुणा निधान शांतिनाथ जय हो तुम्हारी।
त्रिभुवन की शान शांतिनाथ जय हो तुम्हारी॥

आदित्यगति मुनि को जब आहार दिया था।
आहारदान में प्रसिद्ध नाम किया था॥

श्री षेण की पर्याय को तुमने सफल किया।
स्वामिन्! असाता कर्म को तुमने विफल किया॥

तुम विश्वसेन पिता, माँ ऐरा की शान हो।
सोलहवें तीर्थेश हो, जग में महान हो॥

बारहवें कामदेव कहाते हो आप ही।
चक्री हो पाँचवे, है पुण्य का प्रताप ही॥

होकर के कामदेव तुमने काम को मारा।
छह खण्ड भोग करके भी निज ब्रह्म निहारा॥

तीर्थंकरों में तीन पद धारी प्रथम हुये।
सम्यक्त्व बल से भाव सहज ही प्रशम हुये॥

आया विरागभाव फिर किसी की न सुनी।
ममता को त्याग करके बन गये महामुनि॥

चिद्रूप साधना का फल दिखाया आपने।
जब पूर्ण ज्ञान को सहज ही पाया आपने॥

भव सिन्धु में पतित हुऐ जीवों को बचाया।
जब धर्मदेशना में मोक्ष मार्ग बताया॥

ध्याया जो शुक्लध्यान अघाति को नशाया॥
सम्मेद शैल से प्रभु! निर्वाण को पाया॥

आनन्दकन्द आत्मा के आप हो धनी।
चैतन्यरस की हो रही वर्षा घनी-घनी॥

हे नाथ! अपने जैसा आत्मध्यान दीजिये।
आया हूँ शरण आपकी कल्याण कीजिये॥

दोहा

हर्ष भाव से ही किया, जयमाला गुणगान।
है 'विमर्श' चरणों यही, पाऊँ प्रभु निर्वाण॥

ॐ ह्रीं शांतिनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शांतिनाथ तुमको नमूँ, धर चरणों में शीष।
शांति करो मम हृदय में, करुणासिंधु ऋषीश॥

(परिपुष्पांजलि क्षिपामि)

"चैत्य गुरु प्रवचन पूजादि लक्षणा सम्यक्त्ववर्धनी क्रिया सम्यक्त्व क्रिया।"

अर्थ—चैत्य, गुरु और शास्त्र की पूजा आदि रूप क्रिया सम्यक्त्व को बढ़ाने वाली है, अतः सम्यक्त्व क्रिया है।

श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनपूजा

(रचयिता : आचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज)

स्थापना

व्यवहार व्रतों की बगिया में निश्चय व्रत पुष्प खिला करते।
कालादि लब्धियों से ऐसे, सुखकर संयोग मिला करते।।
हे नाथ! आपने यह सच्चा, शिवमार्ग जगत् को बतलाया।
जिसने जितना पुरुषार्थ किया, उसने उतना ही फल पाया।।
निष्कांक्ष भाव की सरिता में, अपने मन को नहलाता हूँ।
हे मुनिसुव्रत प्रभु ! सुव्रत वरो, भावों से हृदय बुलाता हूँ।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ-तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव-भव-वषट् सन्निधिकरणं।

(परि पुष्पांजलिं क्षिपामि)

रागादि भावमल से अब तक, स्वातम को मलिन किया स्वामी।
ज्ञायक होकर ज्ञायक जल से, नहलाया न अंतर्यामी।।
हे मुनिसुव्रत प्रभु! सुव्रत वरो, रागादिक मल प्रक्षाल करूँ।
भगवान आत्मा में रमकर, जन्मादिक भव जंजाल हरूँ।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

परद्रव्यों-पर्यायों में ही, उपयोग लगाता आया हूँ।
अपनी वैभाविक परिणति से, भवताप बढ़ाता आया हूँ।।

हे मुनिसुव्रत प्रभु सुव्रत वरो, निज अभवस्वभावी जाप करूँ।
शुद्धात्म द्रव्य गुण पर्यय से, आतम ध्याऊँ भवताप हरूँ।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय संसार ताप विनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

जब हुआ निरतिशय पुण्योदय, लौकिक पद पाकर इतराया।
जो अक्षय पद का साधन है, उसको मैं जान नहीं पाया।।
हे मुनिसुव्रत प्रभु! सुव्रत वरो, अब पुण्य सातिशय पाऊँ मैं।
है अक्षय पद, शिवदायी जो, वह शुद्ध निजातम ध्याऊँ मैं।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

कामादि विभावों का वेदन, आकुलता को उपजाता है।
जितना जितना रस लेता हूँ, उतना उतना झुलसाता है।।
हे मुनिसुव्रत प्रभु! सुव्रत वरो, शुद्धातम अनुभूति पाऊँ।।
ध्रुव ज्ञायक प्रभु में रम जाऊँ, चैतन्य सुधारस बरसाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

आनंदित हो-होकर मैंने, रसना इन्द्रिय को तृप्त किया।
घी, दुग्ध आदि शीतलरस की, धाराओं से अभिषिक्त किया।।
हे मुनिसुव्रत प्रभु! सुव्रत वरो, अब शुद्ध चिदारस पान करूँ।
हो शांत क्षुधा ज्वाला मेरी, ऐसा पुरुषार्थ महान करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय क्षुधा रोग विनाशाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

स्वातम-अनात्म के भेद बिना अब तक अतत्व श्रद्धान किया।
दर्शन मोहांध बढ़ाया है, नहिं सम्यक् दर्शन ज्ञान किया।।

हे मुनिसुव्रत प्रभु! सुव्रत वरो, अब मोहनीय अवसान करूँ।
सम्यक्त्वाचरण प्रगट करके, संयमाचरण का ध्यान करूँ।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय मोहांधकार विनाशाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ और अशुभ भावों द्वारा, वसुकर्म बढ़ाता आया हूँ।
सविपाक निर्जरा अनुभव कर, निज शक्ति घटाता आया हूँ।।
हे मुनिसुव्रत प्रभु! सुव्रत वरो, मुनि मन सम उत्तम तप पाऊँ।
अविपाक निर्जरा के द्वारा, आठों कर्मों को दहकाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय अष्ट कर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

शुभ कर्मफलों की चाहत में, उत्तम शिवफल ठुकराया है।
इन्द्रिय सुख का अनुभव करके, अपना संसार बढ़ाया है।।
हे मुनिसुव्रत प्रभु! सुव्रत वरो, यह मानव जीवन सफल करूँ।
मुनिव्रत धारूँ, शिवमार्ग चलूँ, शिवफल पाऊँ निज अचल रहूँ।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय महामोक्ष फल प्राप्ताय फलं निर्व. स्वाहा।

अर्घ

पाने निज ज्ञान चेतना प्रभु, शुद्धोपयोग हो कर्म मेरा।
हो रत्नत्रय व्यवहार प्रगट, निश्चय रत्नत्रय धर्म मेरा।
हे मुनिसुव्रत प्रभु! सुव्रत वरो, सिद्धों सम अष्ट सुगुण पाऊँ।
अर्पित जल चंदन अष्ट द्रव्य, अष्टम भू पा थिर हो जाऊँ।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्ताय अर्घं निर्व.स्वाहा।

पंचकल्याणक

श्रावण कृष्णा द्वितीया गर्भ स्थान लिया।
माँ धन्य महापद्मा गर्भ कल्याण किया।।

हे प्रभु मुनिसुव्रतनाथ, हम पूजैं चरणा।
मिट जाये गर्भावास, आये तव शरणा।

ॐ ह्रीं वैशाख कृष्ण द्वितीयां गर्भ मंगल मण्डिताय श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

बैसाख वदी दशमी जन्म उत्सव छाया।
सुर असुर इन्द्र सबका हृदय अति हर्षाया।।
हे प्रभु मुनिसुव्रतनाथ हम पूजैं चरणा।
हो जन्म रोग का नाश आये तव शरणा।।

ॐ ह्रीं वैशाख कृष्ण दशम्यां जन्म मंगल मंडिताय श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

बैशाख वदी दशमी आपने तप धारा।
जीता चारित्र विमोह चारित्र स्वीकारा।
हे प्रभु मुनिसुव्रतनाथ हम पूजै चरणा।
हो स्वातम बोधि प्रकाश आये तव शरणा।।

ॐ ह्रीं वैशाख कृष्ण दशम्यां तपोमंगल मंडिताय श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

बैशाख वदी नवमी केवलज्ञान लिया।
घाते सब घातिकर्म हर्षे भव्य हिया।
हे प्रभु मुनिसुव्रतनाथ हम पूजै चरणा।
हो पंचम ज्ञान उजास आये तव शरणा।

ॐ ह्रीं वैशाख कृष्ण नवम्यां केवलज्ञान कल्याणक प्राप्ताय श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

फागुन कृष्णा द्वादश मुक्ति को पाया।
सिद्धालय क्षेत्र महान इन्द्रों ने गाया।

हे प्रभु सुव्रतनाथ हम पूजै चरणा।
हो पंचमगति में वास आये तव शरणा।

ॐ ह्रीं फाल्गुन कृष्ण द्वादश्यां मोक्ष मंगल मंडिताय श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

बीसं तीर्थंकर अहा, श्री मुनिसुव्रतनाथ।
सुव्रत स्वात्मसिद्धि वरो, पादयुगल नत माथ।।

आये प्राणत स्वर्ग से, काल लब्धि को पाय।
माँ श्यामा हर्षित हुई, पितु सुमित्र हर्षाय।।

राजगृही में बह चली, गंधित मंद बयार।
जन्म लिया तब इन्द्र ने, उत्सव किया अपार।।

अतिसुंदर नीलाभ तन, बीस धनुष ऊँचाई।
तीस हजार बरस प्रभो! आयु आपने पाई।।

सात सहस संग पाँच सो, वर्षकाल कौमार्य।
राज्य किया पंद्रह सहस वर्ष आपने आर्य।।

हुआ पूर्वभव स्मरण, जागा हृदय विराग।
चंपक तरूतल नीलवन, दिए वसन सब त्याग।।

आत्मलीन होकर किया, तेला का उपवास।
प्रथम पारणा खीर से, वृषभसेन आवास।।

ग्यारह महीने तप किया, फिर तेला उपवास।
पाया तव कैवल्यपद, कर्म घातिया नाश।।

सात सहस संग पाँच सौ वर्ष रहा जो काल।
उसमें ग्यारह माह कम, कहा केवली काल।।

अजितंजय श्रोता प्रमुख, गणधर मल्लि प्रधान।
प्रमुख पुष्पदत्तार्या, सबका पुण्य महान।।

एक मास पहले किया स्वामी योग निरोध।
मोक्ष गए सम्मेद गिरि, हुआ पूर्ण शिव शोध।।

आत्म लीन हो आप सम, पायें हम निर्वाण।
तजैं प्राण व्यवहार दस, वरैं चेतना प्राण।।

ॐ ह्रीं श्री मुनिसुव्रतनाथ जिनेन्द्राय जयमाला पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मुनिसुव्रत भगवान की जो नित स्तुति गाय।
भाव सहित पूजा करे, स्वयं पूज्य बन जाय।।

(परि पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

श्री पार्श्वनाथ जिन पूजा

(रचियता-आचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज)

आदर्शों की गौरव गाथा, जग में जब गाई जायेगी।
उपसर्गजयी बामा सुत की, तब याद सहज ही आयेगी॥

जिनने समता को धारणकर, जग को समता पथ दिखलाया।
दसभव का बैरी कमठ स्वयं, अपनी करनी पर पछताया॥

चिंतामणि पारसनाथ तुम्हें, हिरदय में आज बिठाऊँगा।
अर्चन पूजन वन्दन करके, यह जीवन सफल बनाऊँगा॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

हे प्रभो! आपने जन्म जरा मृत्यु का क्षण में नाश किया।
आनन्दकन्द निज चेतन में, रमकर चैतन्य प्रकाश किया॥

चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल-व्याकुल हूँ भव-भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा॥
भोगों की आशा में अब तक, भवताप बढ़ाता आया हूँ।
मिट जाये भव संताप मेरा, भावों का चंदन लाया हूँ॥

चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल-व्याकुल हूँ भव-भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय संसारताप विनाशनाय चन्दनं निर्व.स्वाहा।
इन्द्रादिक पद पाये लेकिन, अक्षय स्वातम पद न पाया।
है चाह मुझे अक्षय पद की, अक्षत का थाल सजा लाया॥

चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल-व्याकुल हूँ भव-भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्र अक्षयपद प्राप्तये अक्षतं निर्व. स्वाहा॥
है नाथ! स्वानुभव सुमनों से कामादिक भाव नशाने को।
आया हूँ द्वार तुम्हारे प्रभु, लाया हूँ पुष्प चढ़ाने को॥

चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल-व्याकुल हूँ भव-भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्व.स्वाहा॥
जब हुआ असाता मोह उदय, तब क्षुधा तृषा का जोर हुआ।
रसना को तृप्त किया लेकिन, पौरुष उतना कमजोर हुआ॥

चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल-व्याकुल हूँ भव-भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्व.स्वाहा॥
मैं जगमग-जगमग ज्ञान ज्योति, अपने में नित्य रहा करता।
पर्यायों में प्रभु! मोह तिमिर मेरा धन हाय हरा करता॥

चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल-व्याकुल हूँ भव-भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्व. स्वाहा॥
निश्चय तप की अग्नि में प्रभु! आठों कर्मों को दहकाया।
पाकर अनुपम चैतन्य सुरभि, तीनों लोकों को महकाया॥

चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल-व्याकुल हूँ भव-भव, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्व. स्वाहा॥
शुद्धोपयोग का सम्यक्फल, प्रभु तुमने ही चख पाया है।
नानाफल की इच्छाओं में हमने, दुःख ही दुःख पाया है॥

चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल-व्याकुल हूँ भव-भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्व. स्वाहा॥
जल चन्दन आठों द्रव्य लिये, आया अनर्घ्य पद पाने को।
गुण और गुणी का भेद प्रभो! आया हूँ आज मिटाने को॥

चिंतामणि पारसनाथ प्रभो! मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ।
आकुल-व्याकुल हूँ भव-भव से, हे नाथ! निराकुल सुख पाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा॥

पंचकल्याणक अर्घ

चयकर प्राणत स्वर्ग से, बामा के उर आय।
दोज वदी वैशाख दिन, उत्सव गर्भ मनाय॥
ॐ ह्रीं वैशाख-कृष्णा-द्वितीयायां गर्भमंगल-मण्डिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पौष कृष्ण एकादशी, जन्म लिया प्रभु आप।
तीन लोक संग नारकी, मिटा क्षणिक संताप॥
ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां जन्ममंगलमण्डिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय

अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जान लिया जब आपने, यह नश्वर संसार।
पौष कृष्ण एकादशी, पाया दीक्षा सार॥

ॐ ह्रीं पौषकृष्णैकादश्यां तपोमंगलमण्डिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

किया आत्म अनुभूति में, चिदानन्द रसपान।
चैत्र चतुर्थी कृष्ण को, प्रगटा केवलज्ञान॥

ॐ ह्रीं चैत्रकृष्णाचतुर्थ्यां केवलज्ञान-प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रावण शुक्ला सप्तमी, किया कर्म का नाश।
सम्मेदाचल से अचल मोक्षपुरी में वास॥

ॐ ह्रीं श्रावणशुक्लासप्तम्यां मोक्षमंगलमंडिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

जय जय पारस, जय जय पारस, जय चिंतामणि पारस देवा।
सुर नर किन्नर गुण गाते हैं, करते नित चरणों की सेवा॥

जब आप बनारस जन्म लिया, माता बामा अति हरषाई।
धनपति ने रत्नों की वर्षा, छह माह पूर्व ही बरसाई॥

पन्द्रह मासों तक रत्नवृष्टि तीर्थंकर पुण्य महान कहा।
मेरूगिरि पर जन्माभिषेक क्षीरोदधि से स्नान अहा॥

इन्द्रादिक देवों ने मिलकर, प्रभु अतिशय मोद मनाया था।
पितु अश्वसेन घर नगरी में, शुभ आनन्द मंगल छाया था॥

जिस-जिस ने भी तुमको देखा, उनके सुख का कोई पार न था।
यौवन जब आया तब बचपन, जाने को भी तैयार न था॥

हे नाथ! आप सम्यक्त्व निधि अपने संग लेकर आये थे।

निश्चय व्यवहार अहिंसा के परिणाम सहज ही पाये थे॥
परद्रव्य हमें सुख देता है, ऐसा निश्चय श्रद्धान न था।
निज पर निज का अनुशासन था, निज बिन पर को स्थान न था।
जब मात-पिता ने निजघर में वधु लाने की मन में ठानी।
कह दिया लाऊँगा मुक्तिवधु, जो रही आज तक अनजानी॥
इक दिवस साथियों संग जाते, देखा निर्मल गंगा पानी।
मिल गया राह में इक तापस, कर रहा तपस्या मनमानी॥
बैठा पंचाग्नि तप करने, चहुँ ओर लकड़ियाँ जलती हैं।
गंगा-जमुना भी जल जायें, यों भीषण ताप उगलती हैं॥
लकड़ी की कोटर में बैठा, जल रहा नाग-नागिन जोड़ा।
हे पार्श्व! आपने जान लिया संबोधा तापस को थोड़ा॥
रे तापस! खोटा तप करके, क्यों इतना पाप कमाता है?।
जो ऐसा हिंसक तप करता, वह दुर्गति से दुःख पाता है॥
तापस बोला मेरा यह तप, हिंसक कैसे हो सकता है?।
तब कहा नाग-नागिन जोड़ा, अग्नि में अरे झुलसता है॥
फिर तापस बोला रे बालक!, क्यों झूठ यहाँ पर बोल रहा।
लक्कड़ जब चीरा अहि जोड़ा, देखा प्राणों को छोड़ रहा॥
हे पार्श्व! आपने णमोकार उनको तत्काल सुनाया था।
वे पद्मावति धरणेन्द्र हुये, नागेन्द्र भवन को पाया था॥
यह देख किन्तु मूरख तापस, अपना अपमान समझता है।
बदले की आग में जलकर के, संक्लेश भाव से मरता है॥
था तापस पूरब का भाई, पर वर्तमान में नाना था।
तुम करते रहे क्षमा लेकिन, इसका तो बैर पुराना था॥

प्रभु तुमको जब वैराग्य हुआ, आये लौकांतिक देव तभी।
ऐसी पर्याय हमें भी हो, अनुमोदन करने लगे सभी॥

निर्ग्रन्थ महामुनि होकर जब निज आत्मध्यान में लीन हुये।
हे स्वामिन्! कर्मों के बंधन स्वयमेव अरे निर्जीर्ण हुये॥

करके विहार प्रभु चार-माह, फिर सात दिवस का योग धरा।
जाता था शम्बर-देव कहीं, अटका विमान नीचे उतरा॥

हे नाथ! आपकी वीतराग मुद्रा को वह न लख पाया।
पूरब का बैरी जान तुम्हें, बैरी का बैर उमड़ आया॥

घनघोर वायु भीषण वर्षा, आवाज भयंकर करता था।
ओले शोले पत्थर पानी बरसाते मन न भरता था॥

धरती काँपी, अम्बर काँपा, धरणेन्द्रासन भी काँपा था।
उपसर्ग सात दिन किया किंतु, शत्रु का हृदय न काँपा था॥

इक ओर आत्मा की शक्ति, इक ओर क्रोध की ज्वाला थी।
प्रगटा प्रभु केवलज्ञान अरे, झुक गया कमठ मतवाला भी॥

कोई कहता यह होनी है, कोई कहता यह अनहोनी।
हे नाथ! अपेक्षायें सारी, हैं स्याद्वाद सम्मुख बौनी॥

व्यवहार और निश्चय से जो, वस्तुस्वरूप को जानेगा।
वस्तु का वह प्रतिपक्ष धर्म, सच्ची श्रद्धा से मानेगा॥

निश्चय स्वरूप में रहना ही, वस्तु की होनी कहलाती।
शुभ-अशुभ भाव वा उनका फल, अनहोनी है माँ बतलाती॥

होनी-हो चाहे अनहोनी, जो होना होकर रहता है।
होनी अनहोनी टालूँगा, यह कौन घमण्डी कहता है?॥

हे नाथ! द्रव्यगुण-पर्यय से अुण-अणु स्वतंत्र बतलाया है।
जिसको निश्चय श्रद्धान अहा! उसने मुक्ति पद पाया है॥

सम्मेदाचल से ज्यौं तुमने, निर्वाण महापद को पाया।
हमको भी पद निर्वाण मिले, मेरा भी मन प्रभु ललचाया॥

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथ जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

पार्श्वनाथ को भक्तिवश, करता कोटि प्रणाम।
है 'विमर्श' नित प्रति यही, मिले आत्म विश्राम॥

(परि पुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ पूजन

स्थापना

हे पार्श्वनाथ करुणानिधान महिमा महान मंगलकारी।
शिव भर्तारी, सुख भंडारी सर्वज्ञ सुखारी त्रिपुरारी॥
तुम धर्मसेत, करुणानिकेत आनन्द हेत अतिशय धारी।
तुम चिदानंद आनंदकन्द दुख-द्वन्द्व फन्द संकटहारी॥
आह्वानन् करके आज तुम्हें अपने मन में पधराऊँगा।
अपने उर के सिंहासन पर गद-गद हो तुम्हें बिठाऊँगा॥
मेरा निर्मल मन टेर रहा हे नाथ ! हृदय में आ जाओ।
मेरे सूने मन मन्दिर में पारस भगवान समा जाओ॥

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

भव वन में भटक रहा हूँ मैं, भर सकी न तृष्णा की खाई।
भवसागर के अथाह दुख में, सुख की जल बिन्दु नहीं पाई॥

जिस भाँति आपने तृष्णा पर, जय पाकर तृषा बुझाई है।
अपनी अतृप्ति पर, अब तुमसे जय पाने की सुधि आई है॥
ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा ॥1॥

क्रोधित हो क्रूर कमठ ने जब, नभ से ज्वाला बरसाई थी।
उस आत्मध्यान की मुद्रा में, आकुलता तनिक न आई थी॥
विघ्नों पर बैर-विरोधों पर, मैं साम्यभाव धर जय पाऊँ।
मन की आकुलता मिट जाये, ऐसी शीतलता पा जाऊँ॥
ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय संसार-ताप विनाशनाय चंदनं निर्वमापीति स्वाहा ॥2॥

तुमने कर्मों पर जय पाकर, मोती सा जीवन पाया है।
यह निर्मलता मैं भी पाऊँ, मेरे मन यही समाया है॥
यह मेरा अस्तव्यस्त जीवन, इसमें सुख कहीं न पाता हूँ।
मैं भी अक्षय पद पाने को, शुभ अक्षत तुम्हें चढ़ाता हूँ॥
ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्ताय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा ॥3॥

अध्यात्मवाद के पुष्पों से, जीवन फुलवारी महकाई।
जितना जितना उपसर्ग सहा, उतनी उतनी दृढ़ता आई॥
मैं इन पुष्पों से वंचित हूँ, अब इनको पाने आया हूँ।
चरणों में अर्पित करने को, कुछ पुष्प संजोकर लाया हूँ॥
ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय कामबाण विनाशनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा ॥4॥

जय पाकर चपल इन्द्रियों पर, अन्तर की क्षुधा मिटा डाली।
अपरिग्रह की आलोक शक्ति, अपने अन्दर ही प्रगटा ली॥
भटकाती फिरती क्षुधा मुझे, मैं तृप्त नहीं हो पाया हूँ।
इच्छाओं पर जय-पाने को, मैं शरण तुम्हारी आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्रपार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा ॥5 ॥

अपने अज्ञान अंधेरे में वह, कमठ फिरा मारा मारा।
व्यन्तर विमानधारी था पर, तप के उजियारे से हारा॥
मैं अंधकार में भटक रहा, उजियारा पाने आया हूँ।
जो ज्योति आप में दर्शित है, वह ज्योति जगाने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा ॥6 ॥

तुमने तपके दावानल में कर्मों की धूप जलाई है।
जो सिद्ध-शिला तक जा पहुँची, वह निर्मल गंध उड़ाई है॥
मैं कर्म बन्धनों में जकड़ा, भव बन्धन से घबराया हूँ।
वसु-कर्म दहन के लिए तुम्हें, मैं धूप चढ़ाने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा ॥7 ॥

तुम महा तपस्वी शान्ति मूर्ति, उपसर्ग तुम्हें न डिगा पाये।
तप के फल ने पद्मावति के इन्द्रों के आसन कम्पाये॥
ऐसे उत्तम फल की आशा, मैं मन में उमड़ी पाता हूँ।
ऐसा शिवसुख फल पाने को, फल की शुभ भेंट चढ़ाता हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा ॥8 ॥

संघर्षों में उपसर्गों में, तुमने समता का भाव धरा।
आदर्श तुम्हारा अमृत बन, भक्तों के जीवन में बिखरा॥
मैं अष्ट द्रव्य से पूजा का, शुभ थाल सजाकर लाया हूँ।
जो पदवी तुमने पाई है, मैं भी उस पर ललचाया हूँ।

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र-पार्श्वनाथ-जिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्ताय अर्घ्यं निर्वपामीतिस्वाहा ॥9 ॥

पंचकल्याणक

वैशाख कृष्ण दुतिया के दिन तुम वामा के उर में आये।
श्री अश्वसेन नृप के घर में, आनन्द भरे मंगल छाये॥

ॐ ह्रीं वैशाख-कृष्ण-द्वितीयायां गर्भ मंगल मण्डिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥1॥

जब पोष कृष्ण एकादशि को, धरती पर नया प्रसून खिला।
भूले भटके भ्रमते जग को, आत्मोन्नति का आलोक मिला॥

ॐ ह्रीं पौष-कृष्ण-एकादश्यां जन्म मंगल मण्डिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥2॥

एकादशि पौष कृष्ण के दिन, तुमने संसार अथिर पाया।
दीक्षा लेकर आध्यात्मिक पथ, तुमने तप द्वारा अपनाया॥

ॐ ह्रीं पौष-कृष्णा-एकादशी दिने तपो मंगल मण्डिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥3॥

अहिच्छत्र धरा पर जी भर कर, की क्रूर कमठ ने मनमानी।
तब कृष्णा चैत्र चतुर्थी को, पद प्राप्त किया केवल ज्ञानी॥
यह वन्दनीय हो गई धरा, दश भव का बैरी पछताया।
देवों ने जय जयकारों से, सारा भूमण्डल गुञ्जाया॥

ॐ ह्रीं श्री चैत्र कृष्णा चतुर्थी दिवसे श्री अहिच्छत्रतीर्थे ज्ञान साम्राज्य प्राप्ताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥4॥

श्रावण शुक्ला सप्तमि के दिन, सम्मेद शिखर ने यश पाया।
'सुवरण भद्रकूट गिर' से जब, शिवमुक्ति रमा को परिणाया॥

ॐ ह्रीं श्रावण शुक्ला सप्तम्यां सम्मेद शिखरस्य सुवरण भद्र कूटात् मोक्षमंगल मण्डिताय श्री पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा॥5॥

जयमाला

सुरनर किन्नर गणधर फणधर, योगीजन ध्यान लगाते हैं।
भगवान तुम्हारी महिमा का, यशगान मुनीश्वर गाते हैं॥1॥

जो ध्यान तुम्हारा ध्याते हैं, दुख उनके पास न आते हैं।
जो शरण तुम्हारी रहते हैं, उनके संकट कट जाते हैं॥2॥

तुम कर्मदली, तुम महाबली, इन्द्रिय सुख पर जय पाई है।
मैं भी तुम जैसा बन जाऊँ, मन में यह आज समाई है॥3॥

तुमने शरीर औ आत्मा के, अंतर स्वभाव को जाना है।
नश्वर शरीर का मोह तजा, निश्चय स्वरूप पहिचाना है॥4॥

तुम द्रव्य मोह, औ भाव मोह, इन दोनों से न्यारे न्यारे।
जो पुद्‌गल के निमित्त कारण, वे राग-द्वेष तुम से हारे॥5॥

तुम पर निर्जर वन में बरसे, ओले-शोले पत्थर पानी।,
आलोक तपस्या के आगे, चल सकी न शठ की मनमानी॥6॥

यह सहन शक्तियों का बल है, जो तप के द्वारा आया था।
जिसने स्वर्गों में देवों के, सिंहासन को कम्पाया था॥7॥

'अहि' का स्वरूप धर कर, तत्क्षण धरणेन्द्र स्वर्ग से आया थ।
ध्यानस्थ आपके ऊपर प्रभु, फण-मंडप बन कर छाया था॥8॥

उपसर्ग कमठ का नष्ट किया, मस्तक पर फण-मंडप रचकर।
पद्मादेवी ने उठा लिया, तुमको सिर के सिंहासन पर॥9॥

तप के प्रभाव से देवों ने, व्यंतर की माया विनशाई।
पर प्रभु आपकी मुद्रा में, तिल मात्र न आकुलता आई॥10॥

उपसर्गों का आतंक तुम्हें, हे प्रभु तिल भर न डिगा पाया।
अपनी विडम्बना पर बैरी, असफल हो मन में पछताया॥11॥

शठ कमठ, बैर के वशीभूत, भौतिक बल पर बौराया था।
अध्यात्म आत्मबल का गौरव, यह मूरख समझ न पाया था॥12॥

दशभव तक जिसने बैर, किया पीड़ायें देकर मनमानी।
फिर हार मानकर चरणों में, झुक गया स्वयं वह अभिमानी॥13॥

यह बैर महा दुखदायी है, यह बैर न बैर मिटाता है।
यह बैर निरन्तर प्राणी को, भवसागर में भटकाता है॥14॥

जिनको भव सुख की चाह नहीं, दुख से न जरा भय खाते हैं।
वे सर्व-सिद्धियों को पाकर, भवसागर से तिर जाते हैं॥15॥

जिसने भी शुद्ध मनोबल से, ये कठिन परीषह झेली हैं।
सब ऋद्धि-सिद्धियाँ नत होकर, उनके चरणों पर खेली हैं॥16॥

जो निर्विकल्प चैतन्य रूप, शिव का स्वरूप तुमने पाया।
ऐसा पवित्र पद पाने को, मेरा अन्तर मन ललचाया॥17॥

कार्माण वर्गणायें मिलकर भव, वन में भ्रमण कराती हैं।
जो शरण तुम्हारी आते हैं, ये उनके पास न आती हैं॥18॥

तुमने सब बैर विरोधों पर, समदर्शी बन जय पाई है।
मैं भी ऐसी समता पाऊँ, यह मेरे हृदय समाई है॥19॥

अपने समान ही तुम सबका, जीवन विशाल कर देते हो।
तुम हो तिखाल-वाले बाबा, जग को निहाल कर देते हो॥20॥

तुम हो त्रिकालदर्शी तुमने, तीर्थंकर का पद पाया है।
तुम हो महान अतिशय धारी, तुम में आनंद समाया है॥21॥

चिन्मूरति आप अनन्त गुणी, रागादि न तुमको छू पाये।
इस पर भी हर शरणागत पर, मन माने सुख साधन आये॥22॥

तुम राग-द्वेष से दूर-दूर, इनसे न तुम्हारा नाता है।
स्वयमेव वृक्ष के नीचे जग, शीतल छाया पा जाता है॥23॥

अपनी सुगंध क्या फूल कहीं, घर-घर आकर बिखराते हैं।
सूरज की किरणों को छूकर, सुमन स्वयं खिल जाते हैं॥24॥

भौतिक पारसमणि तो केवल, लोहे को स्वर्ण बनाती है।
हे पार्श्व प्रभो ! तुमको छूकर, आत्मा कुन्दन बन जाती है॥25॥

तुम सर्व शक्तिधारी हो, प्रभु ऐसा बल मैं भी पाऊँगा।
यदि यह बल मुझको भी दे दो, फिर कुछ न माँगने आऊँगा॥26॥

कह रहा भक्ति के वशीभूत, हे दया सिन्धु स्वीकारो तुम।
जैसे तुम जग से पार हुये, मुझको भी पार उतारो तुम॥27॥

जिसने भी शरण तुम्हारी ली, वह खाली हाथ न आया है।
अपनी अपनी आशाओं का, सबने वांछित फल पाया है॥28॥

बहुमूल्य सम्पदायें सारी, ध्याने वालों ने पाई हैं।
पारस के भक्तों पर निधियाँ, स्वयमेव सिमट कर आई हैं॥29॥

जो मन से पूजा करते हैं, पूजा उनको फल देती है।
प्रभु पूजा भक्त पुजारी के, सारे संकट हर लेती है॥30॥

जो पथ तुमने अपनाया है, वह सीधा शिव को जाता है।
जो इस पथ का अनुयायी है, वह परम मोक्ष पद पाता है॥31॥

ॐ ह्रीं श्री अहिच्छत्र पार्श्वनाथ जिनेन्द्राय महार्घ्यं निर्वपा. स्वाहा।

दोहा

पार्श्वनाथ भगवान को जो पूजे धर ध्यान।
उसे लोक परलोक के मिलें सकल वरदान॥

(इत्याशीर्वादः। पुष्पांजलिं क्षिपेत्)

"गुरुजन रोषनुत्तरदान मभ्युपपत्तिश्चौषधम्।"

अर्थ—गुरुजनों के कुपित होने पर जबाब न देना और उनकी सेवा करना उनके क्रोध शान्ति की औषधि है।

श्री रविव्रत पूजन

यह भविजनहितकार, सु रविव्रत जिन कही।
करहु भव्यजन सर्व, सुमन देकें सही।।
पूजो पार्श्व जिनेन्द्र, त्रियोग लगायके।
मिटैं सकल सन्ताप, मिलै निधि आयके।।
मति सागर इक सेठ, सु ग्रन्थन में कहो।
उनने भी यह पूजा कर आनन्द लहो।।
तातें रविव्रत सार, सो भविजन कीजिए।
सुख सम्पति संतान, अतुल निधि लीजिए।।
प्रणमों पार्श्व जिनेश को, हाथ जोड़ सिर नाय।
परभव सुख के कारने, पूजा करूँ बनाय।।
रविवार व्रत के दिना, ये ही पूजन ठान।
ता फल सम्पत्ति को लहैं, निश्चय लीजे मान।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव-भव वषट्। सन्निधिकरणं।

उज्ज्वल जल भरकें अतिलायो, रतन कटोरन माहीं।
धार देत अति हर्ष बढ़ावत, जन्म जरा मिट जाहीं।।
पारसनाथ जिनेश्वर पूजो, रविव्रत के दिन भाई।
सुख सम्पत्ति बहु होय तुरत ही, आनन्द मंगल दाई।।1।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

मलयागिर केशर अति सुन्दर, कुंकुम रंग बनाई।
धारदेत जिन चरनन आगे, भव आताप नशाई।। पारस.।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय भवातापविनाशनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

मोतीसम अति उज्ज्वल तंदुल, लावो नीर पखारो।
अक्षयपद के हेतु भावसों, श्रीजिनवर ढिग धारो।। पारस.।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

बेला अरु मचकुंद चमेली, पारिजात के ल्यावो।
चुनचुनश्रीजिन अग्र चढ़ाऊँ, मनवांछित फल पावो।।पारस.।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

बावर फैनी गुजिया आदिक, घृत में लेत पकाई।
कंचन थार मनोहर भरके, चरनन देत चढ़ाई।। पारस.।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मणिमय दीप रतनमय लेकर, जगमग जोति जगाई।
जिनके आगे आरति करके, मोहतिमिर नश जाई।। पारस.।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

चूरन कर मलयागिर चंदन, धूप दशांग बनाई।
तट पावक में खेय भाव सों, कर्मनाश हो जाई।।पारस.।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अष्टकर्मदहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि बदाम सुपारी, भांति भांति के लावो।
श्रीजिन चरन चढ़ाय हरषकर, तातें शिव फल पावो।।पारस.।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंधादिक अष्ट द्रव्य ले, अर्घ बनावो भाई।
नाचत गावत हर्षभाव सों, कंचन थार भराई।। पारस.।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

मन वचन काय त्रिशुद्ध करके, पार्श्वनाथ सु पूजिये।
जल आदि अर्घ बनाय भविजन, भक्तिवंत सु हूजिये।।
पूज्य पारसनाथ जिनवर, सकल सुखदातार जी।

जे करत हैं नर नारि पूजा, लहत सौख्य अपार जी।।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

यह जग में विख्यात हैं पारसनाथ महान।
तिन गुण की जयमालिका, भाषा करूँ बखान।
जय जय प्रणमो श्री पार्श्व देव, इन्द्रादिक तिनकी करत सेव।
जय जय सु बनारस जन्म लीन, तिहुँ लोक विषैं उद्योत कीन।।
जय जिनके पितु श्री अश्वसेन, तिनकेघर भये सुखचैन देन।
जय वामा देवी मात जान, तिनके उपजे पारस महान।।
जय तीन लोक आनन्द देन, भविजन के दाता भये ऐन।
जय जिनने प्रभु का शरणलीन, तिनकी सहाय प्रभुजीसो कीन।
जय नाग नागिनी भये अधीन, प्रभु चरणन लाग रहे प्रवीन।
तज देह देवगति गए जाय, धरणेन्द्र पद्मावति पद लहाय।।
जय अंजन चोर अधम अजान, चोरी तज प्रभु को धरो ध्यान।
जय मृत्यु भये वह स्वर्ग जाय, ऋद्धी अनेक उनने सो पाय।।
जय मतिसागर इक सेठ जान, तिन अशुभकर्म आयो महान।
तिनके सुत थे परदेश मांहि, उनसे मिलने की आश नांहि।।
जय रविव्रत पूजन करी सेठ, ता फल कर सब से भई भेंट।
जिन जिनने प्रभु का शरणलीन, तिन ऋद्धिसिद्धि पाई नवीन।।
जय रविव्रत पूजा करहिं जेय, ते सौख्य अनंतानंत लेय।
धरणेन्द्र पद्मावति हुए सहाय, प्रभुभक्त जान तत्काल आय।।
पूजा विधान इहिविधि रचाय, मन वचन काय तीनों लगाय।
जो भक्ति भावजयमाल गाय, सोहीसुख सम्पति अतुल पाय।।
बाजत मृदंग बीनादि सार, गावत नाचत नाना प्रकार।
तन नन नन नन नन ताल देत, सन नन नन नन सुर भर सो लेत।।
ता थेई थेई थेई पग धरत जाय, छमछमछमछम घुंघरू बजाय।

जे करहिं निरत इतिभांतभांत, ते लहहिं सुक्खशिवपुर सुजात।।

रविव्रत पूजा पार्श्व की, करै भविक जन जोय,
सुख सम्पति इह भव लहैं, आगे सुर पद होय।

ॐ ह्रीं श्रीपार्श्वनाथजिनेन्द्राय पूर्णार्घं निर्वपामीति स्वाहा।

रविव्रत पार्श्वजिनेन्द्र, पूज भवि मन धरें।
भव भव के आताप, सकल छिन में टरें।।
होय सुरेन्द्र नरेन्द्र, आदि पदवी लहे।
सुख सम्पत्ति सन्तान, अटल लक्ष्मी रहे।।
फेर सर्व विधि पाय, भक्ति प्रभु अनुसरें।
नानाविध सुख भोग, बहुरि शिवतिय वरे।।

पुष्पांजलिं क्षिपेत्।।

श्री महावीर जिन पूजा

(रचयिता-आचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज)

हे वर्धमान! अतिवीर वीर महावीर सन्मति मतिदायक
शिवपथ परिचायक, सुखदायक जय वर्तमान शासन नायक॥

तुम धीर-वीर हम हैं अधीर मम हरो पीर मुक्तिदायक।
भवसिंधु तीर दो कर्मवीर तुम सम हम बन जायें ज्ञायक॥

खुद जियो और जीने दो, यह संदेश देशना में आया।
निश्चय व्यवहार अहिंसा का सम्यक् पथ तुमने दिखलाया॥

इस पथ का राही बनना है, यह भाव सजा कर लाया हूँ।
आओ हृदयासन पर आओ, गुणपूजा करने आया हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

(परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

हूँ द्रव्यदृष्टि से जन्म रहित ऐसा प्रभु तुमने जाना था।
पर्यायदृष्टि से जन्म-मरण वस्तु में होता माना था॥
यह संसारी पर्याय मेरी नित जनम-मरण दुःख देती है।
निज द्रव्याश्रित पर्याय मिले, जो आतम सुख को देती है॥
जन्म जरा मृतु नाश हो, दो ऐसा वरदान।
जल से तव गुण पूजता, महावीर भगवान॥1॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय जन्मजरामृत्यु विनाशनाय जलं निर्व. स्वाहा।

चैतन्य जलधि के आश्रय से, तुमने भवताप मिटाया है।
भव-भव की पीड़ा को स्वामिन्, क्षणभर में आप नशाया है॥
हम भववारिधि के आश्रय से, संसार बढ़ाते आये हैं।
चैतन्यजलधि-भववारिधि का अन्तर यह समझ न पाये हैं॥
भववारिधि-चेतनजलधि भेदज्ञान से जान।
चन्दन ले गुण पूजता, महावीर भगवान॥2॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्व. स्वाहा।

अक्षय अखण्ड शुद्धातम जब निज पर्यायों में आता है।
तब सहज सिद्ध भगवानों सा अक्षय पद भी मिल जाता है॥
अक्षय पद की अब चाह मुझे, त्रयलोक पदों से अकुलाया।
सुन महिमा सुयश तुम्हारा प्रभु, अक्षत भावों को भर लाया॥
आत्मज्ञान से अब हुआ, अक्षय पद का भान।
अक्षत ले गुण पूजता, महावीर भगवान॥3॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अक्षयपद प्राप्तये अक्षतान् निर्व. स्वाहा।

निष्काम आत्मा के आश्रित, निश्चय ब्रह्मचर्य प्रगटता है।
पर से उपयोग स्वयं हटता, निज में उपयोग सिमटता है॥

कामादिक भावों के कारण, आकुलता अब तक पाई है।
सब काम भाव विध्वंस करूँ, मन में अब यही समाई है॥
ब्रह्मचर्य से हो सहज, कामभाव अवसान।
पुष्प लिये गुण पूजता, महावीर भगवान॥4॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय कामबाण विध्वंसनाय पुष्पं निर्व. स्वाहा।

हो चिदानन्द आश्रित तुमने, निज चिदानन्द रसपान किया।
न क्षुधा रोग छू सका तुम्हें, ऐसा पुरुषार्थ महान किया॥
मिष्ठान्न व्यंजनों से अब तक, मैं क्षुधा मिटाता आया हूँ।
चेतन का उत्तम उपशम रस, हे नाथ! लुटाता आया हूँ॥
क्षुधा रोग का नाश हो, जो सब दुःख की खान।
गुण पूजूँ नैवेद्य ले, महावीर भगवान॥5॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यं निर्व. स्वाहा।

जब तुम चैतन्य प्रकाश किया, मोहान्धकार का नाश हुआ।
जिस मोह कर्म के कारण ही, चेतन पुद्‍गल का दास हुआ॥
हम भी यह मोह तिमिर स्वामिन्!, अब आज हटाने आये हैं।
चेतन प्रकाश उजियाला हो, यह भाव हृदय में लाये हैं॥
दर्शन चारित मोह को नाशूँ कर निज ध्यान।
दीपक ले गुण पूजता, महावीर भगवान॥6॥

ॐ ह्रीं श्री महावीरजिनेन्द्राय मोहांधकारविनाशनाय दीपं निर्व. स्वाहा।

आठों कर्मों के कारण ही, चारों गति में भरमाया हूँ।
निज वैभाविक परिणति से प्रभु, क्लेशित हूँ बहुत सताया हूँ॥
आश्रित हो ज्ञान चेतना के आठों कर्मों को दहकाया।
मैं भी ऐसा पुरुषार्थ करूँ, इसलिए नाथ चरणों आया॥
अष्टकर्म दहकाउँगा, कर शुद्धातम ध्यान।
धूप लिये गुण पूजता, महावीर भगवान॥7॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अष्टकर्म विध्वंसनाय धूपं निर्व. स्वाहा।

शाश्वत शिवफल को पा तुमने, निष्फल जग को ठुकराया है।
व्यवहार और निश्चय पथ को, मुक्ति का साधन गाया है॥
हे नाथ! इसी पथ पर चलकर, मैं भी मुक्तिफल पाऊँगा।
तुम सम अरिहन्त दशा पाकर, सिद्धत्व अवस्था पाऊँगा॥
सच्चाफल शिवफल अहा, निज अनुभूति प्रधान।
फल ले तव गुण पूजता, महावीर भगवान॥8॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं निर्व. स्वाहा।

जल चन्दन अक्षत पुष्प चरु, शुभ दीप धूप फल लाया हूँ।
आठों द्रव्यों का अर्घ्य बना, मैं कनकथाल भर लाया हूँ॥
दैदीप्य अर्घ अर्पित करता, स्वामिन् अनर्घ्यपद पाने को।
निर्दोष आत्मा पाना है, आया हूँ दोष मिटाने को॥
इक अनर्घ्यपद चाहता शुद्ध स्वरूप समान।
अर्घ्य लिये गुण पूजता, महावीर भगवान॥9॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय अनर्घपद प्राप्ताय अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

पंचकल्याणक अर्घ

आषाढ़ शुक्ल षष्ठी गर्भ में प्रभु आये।
सुरपति - सुर - गर्भोत्सव मनाकर हर्षाये।।
त्रिशला उर में रहते मोती ज्यों सीप बसा।
हम पूजैं प्रभु भावी अहा अरिहंत दशा।।

ॐ ह्रीं आषाढ़-शुक्ला-षष्ठ्यां गर्भावतरण-मंगल-मंडिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥1॥

सित तेरस चैत महान तुमने जन्म लिया।
सिद्धार्थ पिता घर द्वार तुमने धन्य किया॥
कुण्डलपुर जन्मोत्सव मनाता इन्द्र लसा।
हम पूजैं प्रभु भावी अहा अरिहंत दशा॥

ॐ ह्रीं चैत्र-शुक्ला-त्रयोदश्यां जन्म-मंगल-मंडिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥2॥

मंगसिर कृष्णा दसमी तुमने तप धारा।
थी तीस वर्ष आयु तजा घर-परिवारा॥
तप कल्याणक पूजा देव करते हर्षा।
हम पूजैं तप के साथ अहा अरिहंत दशा॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णादशम्यां तपोमंगलमंडिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥3॥

वैशाख शुक्ल दसमी, घाति क्षय कर डाला।
प्रभु प्रगटा केवलज्ञान फैला उजियाला॥
चौथा कल्याणक देव पूजैं अति हर्षा।
हम पूजैं प्रभु तेरी अहा अरिहंत दशा॥

ॐ ह्रीं वैशाख-शुक्ला-दशम्यां ज्ञानकल्याणक-प्राप्ताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥4॥

कार्तिक कृष्णामावश मुक्ति को पाया।
पावापुर हुआ पवित्र, तीरथ कहलाया॥
प्रभु कल्याणक निर्वाण पूजैं सुर हर्षा।
हम पूजैं धरि शुभ भाव प्रभु निर्वाण दशा॥

ॐ ह्रीं कार्तिक-कृष्णा-अमावस्यां मोक्ष मंगल मंडिताय श्री महावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥5॥

जयमाला

जय त्रिशलानन्दन वीर प्रभो!, सिद्धार्थ तनय महावीर प्रभो!।
जय भवसागर के तीर प्रभो!, जय गुणसागर अतिवीर प्रभो॥

तुम कुण्डलपुर में जन्म लिया, देवों ने उत्सव खूब किया।
होती थी रत्नों की वर्षा, हर जन-जन था हर्षा-हर्षा॥

सुर नर किन्नर गुण गाते थे, हर्षाते मोद मनाते थे।
वीणा सारंगी ढोल वाद्य बजते थे नृत्य दिखाते थे॥

झननं झननं झंकार सजे, घननं घननं घनघंट बजे।

तननं तननं ततता वितता, छननं छननं अतता सुगता॥
धृगतां धृगतां धृगतां धृगतां, दृगतां दृगतां दृगतां दृगतां।
ताथेई ताथेई सुर चाल चलें, चटपट अटपट नभ में उछलें॥
फिर झुक-झुक जय-जयकार करें, स्तुति गा हर्ष अपार धरें।
सब ही प्रभु तुमको ध्याते थे, अपना कल्याण मनाते थे॥
जब तीस वर्ष में तप धारा, तज दिया मोह घर-परिवारा।
न रोक सकी माँ की ममता, प्रगटी अन्तस में दृढ़ समता॥
उपसर्ग न तुमको डिगा सके, भय के अंकुर न उगा सके।
परिषह समता से सहते थे, मुख से कुछ भी न कहते थे॥
चन्दनबाला को तार दिया, जाकर द्वारे आहार लिया।
बारह वर्षों तप ध्यान किया, निज चिदानन्द रसपान किया॥
चउ कर्म प्रकृति त्रेसठ नाशी, पाई केवलनिधि अविनाशी।
तुम आचारांग प्रथम गाया, खुद जियो जीने दो बतलाया॥
आतम-अनात्म का ज्ञान करो, निर्णय कर लो श्रद्धान करो।
सुन दिव्यध्वनि भवि हर्षाये, व्रत संयम के उत्सव छाये॥
कोई धर्मध्यान में लीन हुये, कोई शुक्लध्यान प्रवीण हुये।
प्रभुजी तुमने उपकार किया, भव्यों को भव से तार दिया॥
थी कार्तिक कृष्णा त्रयोदशी, तब योग निरोध किया प्रभुजी।
फिर अंतिम शुक्लध्यान छुआ, पावापुर से निर्वाण हुआ॥

ॐ ह्रीं श्री महावीर जिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरपति श्री पद पूजते, मन वच काय त्रियोग।
मम 'विमर्श' चरणों यही, मिटे कर्म संयोग॥
(परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

श्री गौतम गणधर पूजा

(आचार्यश्री विमर्शसागर कृत)

दिन कार्तिक कृष्ण अमावस का, कल्याणक बन कर आया था।
निर्वाण हुआ महावीरा को, गौतम केवलि पद पाया था॥
भारत भू पर दीपावलि का, तब से शुभ-पर्व महान हुआ।
प्रभु महावीर-गौतम के संग, भवि जीवों का कल्याण हुआ॥
दीपावली का शुभ दिवस आज, गौतम पद पुष्प चढ़ाता हूँ।
शुभ ज्ञानलक्ष्मी को ध्याकर, निज ज्ञान-लक्ष्मी पाता हूँ॥

ॐ ह्रीं श्री गौतम स्वामी जिनेन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं श्री गौतम स्वामी जिनेन्द्र। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं श्री गौतम स्वामी जिनेन्द्र! अत्र मम् सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं

(परि पुष्पांजलि क्षिपामः)

अति उज्ज्वल प्रासुक नीर, कंचन कलश भरे।
मिल जाये प्रभु भवतीर, चरणान अग्र धरे॥
जय-जय श्री गौतम-देव, तुम तो ज्ञायक हो।
हमको ज्ञायक की चाह, तुम मम् नायक हो॥

ॐ ह्रीं श्री गौतम स्वामी जिनेन्द्राय जन्म जरा मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चंदन गोशीर कपूर, केसर घिस लाये।
मिट जाये प्रभु भवताप, पूजै गुण गाये॥
जय-जय श्री गौतम-देव, तुम तो ज्ञायक हो।
हमको ज्ञायक की चाह, तुम मम् नायक हो॥

ॐ ह्रीं श्री गौतम स्वामी जिनेन्द्राय संसारताप विनाशाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

शशि के सम तंदुल श्वेत, पूर्व सुबीन करे।
प्रभु अक्षय पद के हेत, पदतर आन धरे॥
जय-जय श्री गौतम-देव तुम तो ज्ञायक हो।
हमको ज्ञायक की चाह तुम मम् नायक हो॥

ॐ ह्रीं श्री गौतम स्वामी जिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्व. स्वाहा।

मंदार नमेरू आदि सुरद्रुम सुमनन सौं।
नाशन कामादिक भाव पूजे प्रभु मनसौं॥
जय-जय श्री गौतम-देव तुम तो ज्ञायक हो।
हमको ज्ञायक की चाह तुम मम् नायक हो॥

ॐ ह्रीं श्री गौतम स्वामी जिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्व. स्वाहा।

षट्रस व्यंजन नैवेद्य थाल भरा लाये।
निज क्षुधा विनाशन हेत पूजन को आये॥
जय-जय श्री गौतम-देव तुम तो ज्ञायक हो।
हमको ज्ञायक की चाह तुम मम् नायक हो॥

ॐ ह्रीं श्री गौतम स्वामी जिनेन्द्राय क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यम् निर्वपामीति स्वाहा।

मणिदीपक ज्योति प्रकाश मैंटे तम कारा।
हो मोहतिमिर का नाश सम्यक् उजियारा॥
जय-जय श्री गौतम-देव तुम तो ज्ञायक हो
हमको ज्ञायक की चाह तुम मम् नायक हो॥

ॐ ह्रीं श्री गौतम स्वामी जिनेन्द्राय मोहान्धकार विनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा।

कृष्णागर चन्दन लौंग धूप दशांग बना।
खेवत हों अग्नि माहिं दहके कर्म घना॥
जय-जय श्री गौतम-देव तुम तो ज्ञायक हो
हमको ज्ञायक की चाह तुम मम् नायक हो॥

ॐ ह्रीं श्री गौतम स्वामी जिनेन्द्राय अष्टकर्म-दहनाय धूपं निर्व. स्वाहा।

बादाम छुआरा दाख, उत्तम फल प्रभु जी।
लाये पूजन को आज, दो शिवफल प्रभु जी।।
जय - जय श्री गौतम - देव तुम तो ज्ञायक हो
हमको ज्ञायक की चाह तुम मम् नायक हो॥
ॐ ह्रीं श्री गौतम स्वामी जिनेन्द्राय महामोक्षफल प्राप्तये फलं निर्व. स्वाहा।
जल-फल वसु द्रव्य मिलाय, तव गुण ध्यावत हों।
अष्टम अवनि को पाय, सिर को नावत हों।
जय - जय श्री गौतम - देव तुम तो ज्ञायक हो
हमको ज्ञायक की चाह तुम मम् नायक हो॥
ॐ ह्रीं श्री गौतम स्वामी जिनेन्द्राय अनर्घ्य पद प्राप्तये अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

गणधर अर्घ्य

श्रावण कृष्णा एकम् को, चकचूरा मान अहम् को।
वीरा का दर्शन पाया, बन गणधर सार सुनाया॥
ॐ ह्रीं श्री दिव्यध्वनि प्राप्तये गौतम स्वामी जिनेन्द्राय अर्घं निर्व. स्वाहा।
श्री कार्तिक कृष्ण अमावस, तुम चार घातिया को नश।
निज ज्ञान श्री प्रगटाई, संध्या बेला सुखदाई।।
ॐ ह्रीं श्री केवलज्ञान प्राप्तये गौतम स्वामी जिनेन्द्राय अर्घं निर्व. स्वाहा।
जब योग निरोध किया जी, तब शुक्ल ध्यान लिया जी।
हुआ पावन क्षेत्र गुणावा, निर्वाण महापद पावा॥
ॐ ह्रीं गौतम स्वामी जिनेन्द्राय मोक्षपद प्राप्तये अर्घं निर्व. स्वाहा।

जयमाला

(तर्ज-हे दीनबंधु...)

द्वीपों में द्वीप एक जम्बुद्वीप कहा है।
क्षेत्रों में क्षेत्र एक भरतक्षेत्र महा है।।

इसमें भी आर्यखंड का प्रभुत्व जानिये।
भारत के नाम से प्रसिद्ध देश जानिये।।

भारत में मगध देश जो अतिशय महान था।
वसुभूति–पृथ्वी ब्राह्मण का श्रेष्ठ नाम था।।

इनके ही पुत्र इन्द्र, अग्नि, वायुभूति थे।
वेदान्त विद्या के धनी अद्‌भुत विभूति थे।।

वैशाख सुदी दसमी वीर ज्ञान को पाया।
धनपति ने आके शीघ्र समवसरण रचाया।।

द्वादश सभा प्रभु को निहारें आश से भरी।
छ्‌यासठ दिवस प्रभु की देशना नहीं खिरी।।

चिंतित सा हुआ इन्द्र अवधिज्ञान से जाना।
गणधर न प्रभू की सभा में इन्द्र ने माना।।

गणधर बनेंगे इन्द्रभूति ज्ञान में आया।
धर वृद्ध वेष इन्द्र, जा श्लोक सुनाया।।

त्रैकाल्यं द्रव्य–षट्‌कं नवपद सहितं जीवषट्‌कायलेश्याः।
पञ्चान्ये चास्तिकाया व्रत समिति गति ज्ञान चारित्र भेदाः॥

हे देव! इसका अर्थ हमें शीघ्र बताओ।
महावीर प्रभु मौन हैं तुम राह दिखाओ।।
सुनकर ये इन्द्रभूति की कुछ समझ न आया।
महावीर को बतलाऊँगा कह पैर बढ़ाया॥

ले इन्द्र, इन्द्रभूति को पहुँचा समवसरण।
देखा जो मानस्तंभ मान का हुआ क्षरण।।
महावीर प्रभु का निर्विकारी रूप जो लखा।
अपलक निहारता रहा आनंद रस चखा॥

होकर मुनि दिगंबर गणधर प्रथम हुये।
प्रभु! अष्ट ऋद्धि चार ज्ञान धारी तुम हुये।।
श्रावण बदी एकम् को वीर देशना खिरी।
प्रभु! द्वादशांग रूप रचना आपने ही की॥

फिर अग्नि-वायुभूति साथ शिष्य मण्डली।
महावीर प्रभु को जीतने वो हर्ष से चली।।
सुनकर के वीर वाणी मुनि रूप को धरा।
जीता स्वयं, स्वयं को रहा मान न जरा॥
शुचिदत्त, मौर्यपुत्र, माण्डव्य, अकम्पन।
मेदार्य व अचल प्रभास सुधर्म मुनीजन।।
इन ग्यारह गणधरों से सुशोभित हुई सभा।
महावीर की फैली थी अलौकिक अहा प्रभा॥

भव्यों को तीस वर्ष प्रभु देशना मिली।
मिथ्यात्व हुआ नाश खिली ज्ञान की कली।।
पावापुरी से वीर को निर्वाण जब हुआ।
संध्या में आपको भी पूर्णज्ञान तब हुआ।।

हे नाथ! बानवे वर्ष थी आयु आपकी।
श्री क्षेत्र गुणावा से हुई मुक्ति आपकी।।
हे देव! हमें पूर्णज्ञान मुक्ति दीजिए।
भव सिंधु में भटकूँ नहीं कल्याण कीजिये॥

ॐ ह्रीं श्री गौतम स्वामी जिनेन्द्राय जयमालाये पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

महावीर भगवान के, गणधर प्रथम महान।
पुष्पांजलि चरणा धरूँ, पाने ज्ञान निधान॥
(परि पुष्पांजलि क्षिपामि:)

सोलहकारण पूजा

अडिल्ल

सोलहकारण भाय तीर्थंकर जे भये
हरषे इन्द्र अपार मेरु पै ले गये।
पूजा करि निज धन्य लख्यो बहु चावसों,
हमहूँ षोडशकारण भावैं भावसों॥

ॐ ह्लीं दर्शनविशुद्ध्यादि-षोडशकारणानि अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(पुष्पांजलिं क्षिपामि)

कंचन-झारी निर्मल नीर, पूजूँ जिनवर गुण-गंभीर।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥
दरश-विशुद्धि भावना भाय, सोलह तीर्थंकर पद पाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥

ॐ ह्लीं दर्शनविशुद्धि 1, विनयसम्पन्नता 2, शीलव्रतेष्वनतिचार 3, अभीक्ष्णज्ञानोपयोग 4, संवेग 5, शक्तितस्त्याग 6, शक्तितस्तप 7, साधुसमाधि 8, वैयावृत्यकरण 9. अर्हद्भक्ति 10. आचार्यभक्ति 11, बहुश्रुतभक्ति 12, प्रवचनभक्ति 13, आवश्यकापरिहाणि 14, मार्गप्रभावना 15, प्रवचनवात्सल्य 16, इति षोडशकारणेभ्यः नमः जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन घिसों कपूर मिलाय, पूजों श्रीजिनवर के पाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥दर्शवि.

ॐ ह्लीं दर्शनविशुद्ध्यादि-षोडशकारणेभ्यः चन्दनं निर्वपा. स्वाहा।

तंदुल धवल अखंड अनूप, पूजूँ जिनवर तिहुँ जग भूप।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥ दर्शवि.

ॐ ह्लीं दर्शनविशुद्ध्यादि-षोडशकारणेभ्यः अक्षतं निर्वपा. स्वाहा।

फूल सुगन्ध मधुप-गुञ्जार, पूजूँ जिनवर जग आधार।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥दर्शवि.
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि-षोडशकारणेभ्यः पुष्पं निर्वपा. स्वाहा।
सद नेवज बहु विधि पकवान, पूजूँ श्रीजिनवर गुणखान।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥दर्शवि.
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि-षोडशकारणेभ्यः नैवेद्यं निर्वपा. स्वाहा।
दीपक ज्योति तिमिर क्षयकार, पूजूँ श्रीजिन केवल धार।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥दर्शवि.
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि-षोडशकारणेभ्यः दीपं निर्वपा. स्वाहा।
अगर कपूर गन्ध शुभ खेय, श्री जिनवर आगे महकेय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥दर्शवि.
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि-षोडशकारणेभ्यः धूपं निर्वपा. स्वाहा।
श्रीफल आदि बहुत फल सार पूजूँ जिन वांछित दातार।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥दर्शवि.
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि-षोडशकारणेभ्यः फलं निर्वपा. स्वाहा।
जल फल आठों द्रव्य चढ़ाय, 'द्यानत' वरत करो मन लाय।
परम गुरु हो, जय जय नाथ परम गुरु हो॥दर्शवि.
ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि-षोडशकारणेभ्यः अर्घ्यं निर्वपा. स्वाहा।

जयमाला

दोहा

षोडशकारण गुण करैं, हरै चतुरगति वास।
पाप पुण्य सब नाश कै, ज्ञान भानु परकाश॥1॥

चौपाई

दरश विशुद्धि धरे जो कोई, ताको आवागमन न होई।
विनय महा धारे जो प्राणी, शिव-वनिता की सखी बखानी॥2॥

शील सदा दृढ़ जो नर पाले, सो औरन की आपद टाले।
ज्ञानाभ्यास करे मन माहीं, ताके मोह-महातम नाहीं॥3॥
जो संवेग-भाव विस्तारै, स्वर्ग-मुक्ति-पद आप निहारै।
दान देय मन हर्ष विशेखै, इहभव जश परभव सुख देखै॥4॥
जो तप तपै खपै अभिलाषा, चूरे कर्मशिखर गुरु भाषा।
साधुसमाधि-सदा मन लावै, तिहुँजग भोग भोगि शिवजावै॥5॥
निशदिन वैयावृत्य करैया, सो निश्चय भवनीर तिरैया।
जो अरहंत-भक्तिमन आनै, सो जन विषय कषाय न जानै॥6॥
जो आचारज-भक्ति करै है, जो निरमल आचार धरै है।
बहुश्रुतवन्त-भक्ति जो करई, सो नर संपूरण श्रुत धरई॥7॥
प्रवचन भक्ति करै जो ज्ञाता, लहै ज्ञान परमानन्द-दाता।
षट आवश्यक काल जो साधै, सोही रत्नत्रय आराधै॥8॥
धर्म प्रभाव करै जो ज्ञानी, तिन शिव-मारग रीति पिछानी।
वत्सलअंग सदा जो ध्यावै, सो तीर्थंकर पदवी पावै॥9॥

ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यादि-षोडशकारणेभ्य: पूर्णार्घ्यं निर्वपा. स्वाहा।

दोहा

ये ही षोडश भावना, सहित धरै व्रत जोय।
देव-इन्द्र नर-वंद्य पद, 'द्यानत' शिव पद होय॥

पुष्पांजलिं क्षिपेत्

(सवैया इकतीसा)

सुन्दर षोडशकारण भावना निर्मल चित्त सुधारक धारै,
कर्म अनेक हने अतिदुर्धर जन्म जरा भय मृत्यु निवारै।
दुख दारिद्र विपत्ति हरै भवसागर को तर पार उतारै,
'ज्ञान' कहे यहि षोडशकारण कर्म निवारण सिद्धि सुधारै॥

(इत्याशीर्वाद:)

जाप्य— 1. ॐ ह्रीं दर्शनविशुद्ध्यै नमः।
2. ॐ ह्रीं विनयसम्पन्नतायै नमः।
3. ॐ ह्रीं शीलव्रताय नमः।
4. ॐ ह्रीं अभीक्ष्णज्ञानोपयोगाय नमः।
5. ॐ ह्रीं संवेगाय नमः।
6. ॐ ह्रीं शक्तितस्त्यागाय नमः।
7. ॐ ह्रीं शक्तितस्तपसे नमः।
8. ॐ ह्रीं साधुसमाध्यै नमः।
9. ॐ ह्रीं वैयावृत्यकरणाय नमः।
10. ॐ ह्रीं अर्हद्भक्त्यै नमः।
11. ॐ ह्रीं आचार्यभक्त्यै नमः।
12. ॐ ह्रीं बहुश्रुतभक्त्यै नमः।
13. ॐ ह्रीं प्रवचनभक्त्यै नमः।
14. ॐ ह्रीं आवश्यकापरिहाण्यै नमः।
15. ॐ ह्रीं मार्गप्रभावनायै नमः।
16. ॐ ह्रीं प्रवचनवत्सलत्वाय नमः।

पंचमेरु पूजा

तीर्थङ्करों के न्हवन जलतै, भये तीरथ सर्वदा।
तातै प्रदच्छन देत सुर-गन, पंचमेरुन की सदा॥
दो जलधि ढाई द्वीप में सब गनत-मूल विराजहीं।
पूजौं असी जिनधाम-प्रतिमा, होंहि सुख दुख भाजहीं॥

ॐ ह्रीं पंचमेरु संबंधि जिन चैत्यालयस्थ-जिनप्रतिमा समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं। ॐ ह्रीं पंचमेरु संबंधि जिन चैत्यालयस्थ-जिनप्रतिमा-समूह! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं। ॐ ह्रीं पंचमेरु-संबंधि-जिन-चैत्यालयस्थ-जिनप्रतिमा समूह! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं

(अथाष्टक, चौपाई आंचलीबद्ध 15 मात्रा)

शीतल-मिष्ट-सुवास मिलाय, जलसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥
पाँचों मेरु असी जिनधाम, सब प्रतिमा को करों प्रणाम।
महासुख होय, देखे नाथ परम सुख होय॥1॥

ॐ ह्रीं सुदर्शन, विजय, अचल, मन्दर, विद्युन्माली, पंचमेरु सम्बन्धी अस्सी जिन चैत्यालयेभ्य: जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्व.स्वाहा।

जल केशर कर्पूर मिलाय, गन्धसों पूजों श्री जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥पाँचों॥2॥

ॐ ह्रीं पंचमेरु सम्बन्धि जिन-चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्य: चंदनं निर्व. स्वाहा।

अमल अखण्ड सुगंध सुहाय, अक्षतसौं पूजों जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥पाँचों.॥3॥

ॐ ह्रीं पंचमेरु सम्बन्धि जिन-चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्य: अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

बरन अनेक रहे महकाय, फूलनसों पूजों जिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥पाँचों.॥4॥

ॐ ह्रीं पंचमेरु सम्बन्धि जिन-चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्य: पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

मनवांछित बहु तुरत बनाय, चरुसों पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥पाँचों.॥5॥

ॐ ह्रीं पंचमेरु सम्बन्धि जिन-चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्य: नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

तमहर उज्ज्वल ज्योति जगाय, दीपसों पूजों श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥पाँचों.॥6॥

ॐ ह्रीं पंचमेरु सम्बन्धि जिन-चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्य: दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

खेऊँ अगर अमल अधिकाय, धूपसों पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥पाँचों.॥7॥

ॐ ह्रीं पंचमेरु सम्बन्धि जिन-चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

सुरस सुवर्ण सुगंध सुभाय, फलसौं पूजौं श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥पाँचों.॥8॥

ॐ ह्रीं पंचमेरु सम्बन्धि जिन-चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठ दरबमय अरघ बनाय, 'द्यानत' पूजों श्रीजिनराय।
महासुख होय, देखे नाथ परमसुख होय॥पाँचों.॥9॥

ॐ ह्रीं पंचमेरु सम्बन्धि जिन-चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

प्रथम सुदर्शन-स्वामि, विजय अचल मन्दर कहा।
विद्युन्माली नाम, पंचमेरु जग में प्रकट॥

(बेसरी छन्द)

प्रथम सुदर्शन मेरु विराजे, भद्रशाल वन भूपर छाजै।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी।।

ऊपर पाँच शतक पर सोहै, नन्दनवन देखत मन मोहे।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वन्दना हमारी॥

साढ़े बासठ सहस ऊँचाई, वन सुमनस शोभै अधिकाई।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वन्दना हमारी॥

ऊँचा योजन सहस छत्तीसं, पांडुकवन सोहैं गिरिशीषं।
चैत्यालय चारों सुखकारी, मन वच तन वन्दना हमारी॥

चारों मेरु समान बखानों, भूपर भद्रशाल चहुँ जानों।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वन्दना हमारी॥
साढ़े पचपन सहस उत्तंगा, वन सोमनस चार बहुरंगा।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वंदना हमारी।।
ऊँचे पाँच शतक पर भाखे, चारों नन्दनवन अभिलाखे।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वन्दना हमारी॥
उच्च अठाइस सहस बताये, पाँडुक चारों वन शुभ गाये।
चैत्यालय सोलह सुखकारी, मन वच तन वन्दना हमारी॥
सुर नर चारन वन्दन आवै, सो शोभा हम किह मुख गावैं।
चैत्यालय अस्सी सुखकारी, मन वच तन वन्दना हमारी॥

ॐ ह्रीं पंचमेरु सम्बन्धि जिन-चैत्यालयस्थ-जिनबिम्बेभ्यो अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

पंचमेरु की आरती, पढ़ै सुनै जो कोय।
'द्यानत' फल जानै प्रभू, तुरत महासुख होय॥

नन्दीश्वरद्वीप पूजा

(अडिल्ल छन्द)

सरव परव में बड़ो अठाई परव है।
नन्दीश्वर सुर जांहि लिये वसु दरव है॥
हमें शक्ति सों नाहिं इहाँ करि थापना।
पूजों जिनगृह प्रतिमा है हित आपना॥

ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीप-द्विपंचाशत-जिनालयस्थ जिनप्रतिमा समूह! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र हम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

कंचन-मणिमय भृङ्गार, तीरथ नीर भरा।
तिहुँ धार दई निरवार, जामन मरन जरा॥
नन्दीश्वर श्री जिनधाम, बावन पुंज करों।
वसु दिन प्रतिमा अभिराम, आनंदभाव धरों॥
नन्दीश्वर द्वीप महान चारों दिशि सोहें।
बावन जिनमंदिर जान सुरनर मनमोहें।।

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे जिनालयस्थ-जिन-प्रतिमाभ्य: जन्म-जरा-मृत्यु विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

भवतपहर शीतल वास, सो चन्दन नाहीं।
प्रभु यह गुन कीजै सांच, आयो तुम ठाहीं॥नन्दी.॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे जिनालयस्थ-जिन-प्रतिमाभ्य: चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।

उत्तम अक्षत जिनराज, पुंज धरे सोहै।
सब जीते अक्ष-समाज, तुम सम अरु को है॥नन्दी.॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे जिनालयस्थ-जिन-प्रतिमाभ्य: अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

तुम काम विनाशक देव, ध्याऊँ फूलनसों।
लहुँ शील लक्ष्मी एव, छूटूँ शूलनसों॥नन्दी.॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे जिनालयस्थ-जिन-प्रतिमाभ्य: पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज इन्द्रिय-बलकार, सो तुमने चूरा।
चरु तुम ढिंग सोहै सार, अचरज है पूरा॥नन्दी.॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे जिनालयस्थ-जिन-प्रतिमाभ्य: नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीपक की ज्योति प्रकाश, तुम तन माहिं लसै।
टूटे करमन की राश, ज्ञानकणी दरसै॥नन्दी.॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे जिनालयस्थ-जिन-प्रतिमाभ्यः दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

कृष्णागरु धूप सुवास, दशदिशि नारि वरें।
अति हरषभाव परकाश, मानों नृत्य करें॥नन्दी.॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे जिनालयस्थ-जिन-प्रतिमाभ्यः धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

बहुविधिफल ले तिहुँकाल, आनन्द राचत हैं।
तुम शिवफल देहु दयाल, तुहि हम जाचत हैं॥नन्दी.॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे जिनालयस्थ-जिन-प्रतिमाभ्यः फलं निर्वपामीति स्वाहा।

यह अर्घ कियो निज हेत, तुमको अरपतु हों।
'द्यानत' कीज्यो शिवखेत, भूमि समरपतु हों॥नन्दी.॥

ॐ ह्रीं श्री नन्दीश्वरद्वीपे जिनालयस्थ-जिन-प्रतिमाभ्यः अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

कार्तिक फागुन साढ़के, अन्त आठ दिन माहिं।
नन्दीश्वर सुर जात हैं, हम पूजैं इह ठाहिं॥

एकसौ त्रेसठ कोड़ि जोजनमहा, लाख चौरासिया एकदिशि में लहा।
आठमों द्वीप नंदीश्वरं भास्वरं, भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं॥1॥

चारदिशि चार अंजनगिरी राज हीं, सहस चौरासिया एकदिशि छाजहीं।
ढोलसम गोल ऊपर तले सुन्दरं, भौन बावन्न प्रतिमा नमों सुखकरं॥2॥

एक इक चारदिशि चारशुभ बावरी, एक इकलाख जोजनअमल जल भरी।
चहुँ-दिशा चारवन लाखजोजन वरं, भौनबावन्नप्रतिमानमों सुखकरं॥3॥

सोलवापीनमधिसेलगिरिदधिमुखं, सहसदसमहाजोजनलखतहीसुखं।
बावरीकोन दो माहिं दो रतिकरं, भौन बावन्नप्रतिमानमों सुखकरं॥4॥

शैलबत्तीसइकसहसजोजनकहे, चार सोलै मिले सर्व बावन लहे।
एक इक सीस पर एक जिनमंदिरं, भौन बावन्नप्रतिमानमों सुखकरं॥5॥

बिम्ब अठ एकसौ रत्नमयि सोहही, देव देवी सरव नयन मन मोहही।
पाँच सौ धनुषतनपदमआसनपरं, भौनबावन्नप्रतिमानमोंसुखकरं॥6॥

लालनख-मुखनयनश्यामअरुश्वेत हैं, श्यामरंगभौंहसिर-केशछविदेत हैं।
वचन बोलतमनो हँसतकालुषहरं, भौन बावन्नप्रतिमानमों सुखकरं॥7॥
कोटिशशिभानु-दुति-तेजछिपजात है, महावैराग्यपरिणामठहरात है।
वचन नहिं कहैं लखिहोतसम्यकधरं, भौनबावन्नप्रतिमानमों सुखकरं॥8॥
ॐ ह्रीं श्रीनन्दीश्वरद्वीपे जिनालयस्थ-जिन-प्रतिमाभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सोरठा

नन्दीश्वर-जिनधाम, प्रतिमा महिमा को कहै।
'द्यानत' लीनोनाम, यही भगतिसब सुखकरै॥
(परिपुष्पाञ्जलिं क्षिपामि)

ऐरावत हाथी का स्वरूप

मुँह 100-प्रत्येक मुँह में 8 दाँत—100 × 8 = 800 दाँत
प्रत्येक दांत पर एक-एक सरोवर—800 सरोवर
एक सरोवर में 125 कमलिनी (बेलें)-800×125 = 100000 कमलिनी
एक कमलिनी में 25 कमल - 100000×2500000 कमल
एक कमल में 108 पंखुड़ियाँ-2500000×108=270000000 पंखुड़ियाँ
एक-एक पंखुड़ी पर एक-एक अप्सरा नृत्य करती है।

दशलक्षण धर्म पूजा

उत्तम क्षमा मार्दव आर्जव भाव हैं।
सत्य शौच संयम तप त्याग उपाव हैं॥
आकिंचन ब्रह्मचर्य धरम दस सार हैं।
चहुँगति दुखतैं काढ़ि मुकति करतार हैं॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्म! अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्म! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षणधर्म! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

सोरठा

हेमाचल की धार, मुनिचित सम शीतल सुरभि।
भव-आताप निवार, दश-लक्षण पूजों सदा॥1॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्यादि-दशलक्षणधर्माय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

चन्दन केशर गार, होय सुवास दशों दिशा।
भव-आताप निवार, दश-लक्षण पूजों सदा॥2॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षण-धर्माय चंदन निर्वपामीति स्वाहा।

अमल अखंडित सार, तंदुल चंद्र समान शुभ।
भव-आताप निवार, दश-लक्षण पूजों सदा॥3॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षण-धर्माय अक्षतान् निर्वपा. स्वाहा।

फूल अनेक प्रकार, महकै ऊरध-लोकलों।
भव-आताप निवार, दश-लक्षण पूजों सदा॥4॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षण-धर्माय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज विविध निहार, उत्तम षटरस-संजुगत।
भव-आताप निवार, दश-लक्षण पूजों सदा॥5॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षण-धर्माय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

बाति कपूर सुधार, दीपक जोति सुहावनी।
भव-आताप निवार, दश-लक्षण पूजों सदा॥6॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षण-धर्माय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
अगर धूप विस्तार, फैले सर्व सुगन्धता।
भव-आताप निवार, दश-लक्षण पूजों सदा॥7॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षण-धर्माय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
फल की जाति अपार, घ्राण नयन मनमोहने।
भव-आताप निवार, दश-लक्षण पूजों सदा॥8॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षण-धर्माय फलं निर्वपामीति स्वाहा।
आठों दरब संवार, 'द्यानत' अधिक उछाहसों।
भव-आताप निवार, दश-लक्षण पूजों सदा॥9॥
ॐ ह्रीं उत्तमक्षमादि-दशलक्षण-धर्माय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

अङ्गपूजा-सोरठा

पीड़ै दुष्ट अनेक, बाँधि मार बहुविधि करै।
धरिये छिमा विवेक, कोप न कीजै पीतमा॥

चौपाई मिश्रित गीता छन्द

उत्तम छिमा गहो रे भाई, इहभव जस परभव सुखदाई।
गाली सुनि मन खेद न आनो, गुनको औगुन कहैअयानो॥
कहि है अयानो वस्तु छीनै, बाँध मार बहुविधि करे।
घर तैं निकारै तन विदारै, बैर जो न तहाँ धरै॥
तैं करम पूरब किये खोटे, सहै क्यों नहिं जीयरा।
अतिक्रोध अगनि बुझाय प्रानी, साम्य जल ले सीयरा॥
ॐ ह्रीं उत्तम-क्षमा-धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।
मान महाविषरूप, करहिं नीचगति जगत में।
कोमल सुधा अनूप, सुख पावैं प्राणी सदा॥
उत्तम मार्दवगुन मन माना, मान करनको कौन ठिकाना।

बस्यो निगोद माहिं तैं आया, दमरी रूकन भाग बिकाया॥
रूकन बिकाया भाग वशतैं, देव इकइन्द्री भया।
उत्तम मुआ चांडाल हूआ, भूप कीड़ो में गया॥
जीतव्य जोवन धन गुमान कहा करे जल बुदबुदा।
करि विनय बहुगुन, बड़े जनकी, ज्ञान का पावैं उदा॥

ॐ ह्रीं उत्तम-मार्दव-धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कपट न कीजै कोय, चोरन के पुर ना बसे।
सरल सुभावी होय, ताके घर बहु सम्पदा॥
उत्तम आर्जव रीति बखानी, रञ्चक दगा बहुत दुखदानी।
मन में होय सो वचन उचरिये, वचन होय सो तनसों करिये॥
करिये सरल तिहुँ जोग अपने, देख निरमल आरसी।
मुख करै जैसा लखै तैसा, कपट प्रीति अंगारसी॥
नहिं लहै लक्ष्मी अधिक छलकर, करमबंध विशेषता।
भय त्यागि दूध बिलाव पीवै, आपदा नहिं देखता॥

ॐ ह्रीं उत्तम-आर्जव-धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

कठिन वचन मत बोल, पर निंदा अरु झूठ तज।
सांच जवाहर खोल, सतवादी जग में सुखी॥
उत्तम सत्यवरत पालीजे, पर-विश्वास-घात नहिं कीजे।
साँचे झूँठें मानुष देखो, आपन पूत स्वपास न पेखो॥
पेखो तिहायत पुरुष सांचे, को दरब सब दीजिये।
मुनिराज श्रावक की प्रतिष्ठा, सांचगुण लख लीजिये॥
ऊँचे सिंहासन बैठि वसुनृप, धरम का भूपति भया।
वच झूँठ सेती नरक पहुँचा, सुरग में नारद गया॥

ॐ ह्रीं उत्तम-सत्य-धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

धरि हिरदै संतोष, करहुँ तपस्या देहसों।
शौच सदा निरदोष, धरम बड़ो संसार में॥

उत्तम शौच सर्व जग जाना, लोभ पाप को बाप बखाना।
आशा पास महा दुखदानी, सुख पावै संतोषी प्रानी॥
प्रानी सदा शुचि शील जप तप, ज्ञान-ध्यान-प्रभावतें।
नित गंगजमुन समुद्र न्हाये, अशुचि दोष सुभावतैं॥
ऊपर अमल मल भर्‍यो भीतर, कौन विधि घट शुचि कहैं।
बहु देह मैली सुगुन थैली, शौचगुन साधू लहैं॥

ॐ ह्रीं उत्तम-शौच-धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

काय छहों प्रतिपाल, पंचेन्द्री मन वश करो।
संजम-रतन संभाल, विषय चोर बहु फिरत हैं॥
उत्तम संजम गहु मन मेरे, भव भव के भाजैं अघ तेरे।
सुरग-नरकपशुगति में नाहीं, आलस-हरन करन सुख ठाहीं॥
ठाहिं पृथ्वी जल आग मारुत, रूख त्रस करुना धरो।
सपरसन रसना घ्रान नैना, कान मन सब वश करो॥
जिस बिना नहिं जिनराज सीझे, तू रुल्यो जग कीच में।
इक घरी मत विसरो करो नित, आयु जममुख बीच में॥

ॐ ह्रीं उत्तम-संयम-धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा

तप चाहैं सुर राय, करमशिखर को वज्र है।
द्वादशविधि सुखदाय, क्यों न करे निज शक्तिसम॥
उत्तम तप सब माहिं बखाना, करमशैल को वज्र समाना।
बस्यो अनादि निगोद मंझारा, भू-विकलत्रय-पशु-तन धारा॥
धारा मनुष तन महादुर्लभ, सुकुल आयु निरोगता।
श्री जैनवाणी तत्त्व ज्ञानी, भई विषय-पयोगता॥
अति महादुर्लभ त्याग विषय, कषाय जो तप आदरैं।
नरभव अनूपम कनक घर पर, मणिमयी कलशा धरैं॥

ॐ ह्रीं उत्तम-तप-धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दान चार परकार, चार संघ को दीजिये।

धन बिजली उनहार, नरभव लाहो लीजये॥
उत्तम त्याग कह्यो जग सारा, औषधि शास्त्र अभय आहारा।
निहचै राग-द्वेष निरवारै, ज्ञाता-दोनों-दान-संभारै।
दोनों संभारे कूप जलसम, दरब घर में परिनया।
निज हाथ दीजे साथ लीजे, खाया खोया बह गया॥
धनि साध शास्त्र अभयदिवैया, त्याग राग विरोध को।
बिन दान श्रावक साधु दोनों, लहैं नाहीं बोधको॥

ॐ ह्रीं उत्तम-त्याग-धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

परिग्रह चौबीस भेद, त्याग करैं मुनिराजजी।
तिसनाभाव उछेद, घटती जान घटाइये॥
उत्तम आकिञ्चन गुण जानो, परिग्रह-चिन्ता दुख ही मानो।
फांस तनक सी तन में सालै, चाह लंगोटी की दुख भालै॥
भालै न समता सुख कभी नर, बिना मुनि-मुद्रा धरैं।
धनि नगन पर-तन नगन ठाड़े, सुर असुर पायनि परै॥
घरमाहिं तिसना जो घटावै, रुचि नहीं संसार सौं।
बहु धन बुरा हू भला कहिये, लीन पर-उपकारसौं॥

ॐ ह्रीं उत्तम-आकिंचन्य-धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

शील बाढ़ नौ राख, ब्रह्मभाव अन्तर लखो।
करि दोनों अभिलाख, करहु सफल नर भव सदा॥
उत्तम ब्रह्मचर्य मन आनौ, माता बहिन सुता पहिचानो।
सहैं वान-वर्षा बहु सूरे, टिकै न नयन-बान लखि कूरे॥
कूरे तिया के अशुचि-तन में, कामरोगी रति करें।
बहु मृतक सड़हिं मसानमाहीं, काग ज्यों चोंचैं भरैं॥
संसार में विष बेलि नारी, तजि गये जोगीश्वरा।
'द्यानत' धरम दशपैंडि चढ़िकैं, शिवमहल में पगधरा॥

ॐ ह्रीं उत्तम-ब्रह्मचर्य-धर्माङ्गाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

दशलच्छन बन्दौं सदा, मनवांछित फलदाय।
कहौं आरती भारती, हम पर होहु सहाय॥

बेसरी छन्द

उत्तम क्षमा जहाँ मन होई, अन्तर बाहर शत्रु न कोई।
उत्तम मार्दव विनय प्रकासै, नानाभेद ज्ञान सब भासे॥

उत्तम आर्जव कपट मिटावै, दुरगति त्यागि सुगति उपजावे।
उत्तम सत्य-वचन मुख बोले, सो प्रानी संसार न डोले॥

उत्तम शौच लोभ-परिहारी, संतोषी गुण रतन भण्डारी।
उत्तम संयम पालै ज्ञाता, नरभव सफल करै ले साता।।

उत्तम तप निरवांछित पालै, सो नर करम-शत्रु को टालै।
उत्तम त्याग करै जो कोई, भोग-भूमि-सुर-शिवसुख होई।।

उत्तम आकिञ्चन व्रत धारै, परम समाधि दशा विस्तारै।
उत्तम ब्रह्मचर्य मन लावै, नरसुर सहित मुकतिफल पावै॥

ॐ ह्रीं उत्तमक्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, शौच, संयम, तप, त्याग, आकिंचन्य, ब्रह्मचर्य-दशलक्षणधर्माङ्गाय पूर्णार्घ्यं नि.स्वाहा।

दोहा

करै करम की निरजरा, भव पींजरा विनाशि।
अजर अमरपद को लहै, 'द्यानत' सुख की राशि॥

(इत्याशीर्वादः। परिपुष्पांजलिं क्षिपामिः)

रत्नत्रय पूजा

दोहा

चहुँगति-फणि-विष-हरन-मणि, दुख-पावक-जलधार।
शिवसुख - सुधा - सरोवरी, सम्यक् त्रयी निहार॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रय! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

सोरठा

क्षीरोदधि उनहार, उज्ज्वल जल अति सोहनो।
जनम रोग निरवार, सम्यक्रत्नत्रय भजूँ॥1॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपा. स्वाहा।

चन्दन केशर गारि, परिमल महा सुगन्धमय।
जनम रोग निरवार, सम्यक्रत्नत्रय भजूँ॥2॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय भवतापविनाशनाय चंदनं निर्वपा. स्वाहा।

तंदुल अमल चितार, वासमती सुखदास के।
जनम रोग निरवार, सम्यक्रत्नत्रय भजूँ॥3॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपा. स्वाहा।

महकै फूल अपार, अलि गुंजै ज्यों थुति करै।
जनम रोग निरवार, सम्यक्रत्नत्रय भजूँ॥4॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपा. स्वाहा।

लाडू बहु विस्तार, चीकन मिष्ट सुगन्धयुत।
जनम रोग निरवार, सम्यक्रत्नत्रय भजूँ॥5॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं निर्वपा. स्वाहा।

दीप रतनमय सार, जोत प्रकाशै जगत में।
जनम रोग निरवार, सम्यक्रत्नत्रय भजूँ॥6॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय मोहांधकार विनाशनाय दीपं निर्वपा. स्वाहा।

धूप सुवास विथार, चन्दन अगर कपूर की।
जनम रोग निरवार, सम्यक्रत्नत्रय भजूँ॥7॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय अष्टकर्म विनाशनाय धूपं निर्वपा. स्वाहा।

फल शोभा अधिकाय, लोंग छुहारे जायफल।
जनम रोग निरवार, सम्यक्रत्नत्रय भजूँ॥8॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय मोक्षफल प्राप्तये फलं निर्वपा. स्वाहा।

आठ दरब निरधार, उत्तमसों उत्तम लिये।
जनम रोग निरवार, सम्यक्रत्नत्रय भजूँ॥9॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय अनर्घ्यपद प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपा. स्वाहा।

सम्यक्दर्शन ज्ञान, व्रत शिवमग तीनों मयी।
पार उतारन यान 'द्यानत' पूजों व्रत सहित॥10॥

ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

समुच्चय जयमाला

दोहा

सम्यक् दर्शन ज्ञान व्रत, इस बिन मुकति न होय।
अन्ध, पंगु अरु आलसी, जुदे जलै दव-लोय॥1॥

(चौपाई)

जापै ध्यान सुथिर बन आवै, ताके करमबंध कट जावै।
तासौं शिवतिय प्रीति बढ़ावै, जो सम्यक् रत्नत्रय ध्यावै॥2॥
ताको चहुँगति के दुख नाहीं, सो न परै भवसागर माहीं।
जनम-जरा-मृत दोष मिटावै, जो सम्यक् रत्नत्रय ध्यावै॥3॥
सोई दशलच्छन को साधै, सो सोलहकारण आराधै।
सो परमातम-पद उपजावै, जो सम्यक् रत्नत्रय ध्यावै॥4॥
सोई शक्र-चक्रि-पद लेई, तीन लोक के सुख विलसेई।
सो रागादिक भाव बहावै, जो सम्यक् रत्नत्रय ध्यावै॥5॥

सोई लोकालोक निहारै, परमानन्द दशा विस्तारै।
आप तिरै औरन तिरवावै, जो सम्यक् रत्नत्रय ध्यावै॥6॥
ॐ ह्रीं सम्यग्रत्नत्रयाय महार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दोहा

एक स्वरूप प्रकाश निज, वचन कह्यो नहिं जाय।
तीन भेद व्योहार सब 'द्यानत' को सुखदाय॥7॥
(पुष्पांजलि क्षिपेत्)

सम्यग्दर्शन पूजा

दोहा

सिद्ध अष्टगुणमय प्रकट, मुक्त-जीव-सोपान।
ज्ञान चरित्र जिहँ बिन अफल, सम्यग्दर्श प्रधान॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शन! अत्र अवतरावतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शन! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शन! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

सोरठा

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यक् दर्शन सार, आठ अङ्ग पूजौं सदा॥1॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।
जल केसर घनसार, ताप हरै शीतल करै
सम्यक् दर्शन सार, आठ अङ्ग पूजौं सदा॥2॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।
अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यक् दर्शन सार, आठ अङ्ग पूजौं सदा॥3॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पुहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यक् दर्शन सार, आठ अङ्ग पूजौं सदा॥4॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।
नेवज विविध प्रकार, क्षुधा हरै थिरता करै।
सम्यक् दर्शन सार, आठ अङ्ग पूजौं सदा॥5॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।
दीपज्योति तमहार, घट पट परकाशै महा।
सम्यक् दर्शन सार, आठ अङ्ग पूजौं सदा॥6॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
धूप घ्राण-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यक् दर्शन सार, आठ अङ्ग पूजौं सदा॥7॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
श्री फल आदि विथार, निहचै सुर शिवफल करै।
सम्यग्दर्शन सार, आठ अंग पूजौं सदा॥8॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।
जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यक् दर्शन सार, आठ अङ्ग पूजौं सदा॥9॥
ॐ ह्रीं अष्टांग सम्यग्दर्शनाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

आप आप निहचै लखै, तत्त्वप्रीति व्योहार।
रहित दोष पच्चीस है, सहित अष्टगुण सार॥1॥

चौपाई

सम्यग्दर्शन रतन गहीजै, जिन-वच में सन्देह न कीजै।
इह भव विभव-चाह दुखदानी, पर-भव भोग चहै मत प्रानी॥

गीता छन्द

प्रानी गिलान न करि अशुचि लखि, धरम गुरु प्रभु परखिये।
परदोष ढकिये धरम डिगतै, को सुथिर कर हरखिये॥
चउसंघ को वात्सल्य कीजै, धरम की परभावना।
गुण आठसौं गुन आठ लहि कै, इहाँ फेर न आवना॥2॥

ॐ ह्रीं अष्टांगसहित-पंचविंशतिदोषरहित सम्यग्दर्शनाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यग्ज्ञान पूजा

पञ्चभेद जाके प्रकट, ज्ञेय प्रकाशन भान।
मोह-तपन-हर-चन्द्रमा, सोई सम्यक् ज्ञान॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञान! अत्र अवतरावतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञान! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञान! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

सोरठा

नीर सुगंध अपार, तृषा हरै मल क्षय करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥1॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केशर घनसार, ताप हरै शीतल करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥2॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥3॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पहुप सुवास उदार, खेद हरै मन शुचि करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥4॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

नेवज विविध प्रकार, क्षुधा हरै थिरता करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥5॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

दीप ज्योति तमहार, घट-पट परकाशै महा।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥6॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप घ्राण-सुखकार, रोग विघन जड़ता हरै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥7॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल आदि विथार, निहचै सुर शिवफल करै।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥8॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यग्ज्ञान विचार, आठ भेद पूजौं सदा॥9॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

आप आप जानै नियत, ग्रन्थ पठन व्योहार।
संशय विभ्रम मोह विन, अष्ट अङ्ग गुनकार॥1॥

चौपाई

सम्यग्ज्ञान रतन मन भाया, आगम तीजा नैन बताया।
अक्षर अरथ शुद्ध पहिचानो, अक्षर अरथ उभय संग जानो॥

गीता छन्द

जानो सुकाल पठन जिनागम, नाम गुरु न छिपाइये।
तपरीति गहि बहुमान देके, विनय गुन चित लाइये॥
ये आठ भेद करम उछेदक, ज्ञान दर्पण देखना।
इन ज्ञानही सों भरत सीझा और सब पट पेखना॥

ॐ ह्रीं अष्टविध सम्यग्ज्ञानाय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

सम्यक्चारित्र पूजा

दोहा

विषयरोग औषधि महा, दव-कषाय-जल-धार।
तीर्थङ्कर जाको धरै, सम्यक् चारितसार॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक्चारित्र! अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक्चारित्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक्चारित्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

सोरठा

नीर सुगन्ध अपार, तृषा हरै मल छय करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा॥1॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक्चारित्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

जल केशर घनसार, ताप हरै शीतल करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा॥2॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक्चारित्राय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अछत अनूप निहार, दारिद नाशै सुख भरै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा॥3॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक्चारित्राय अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

पहुप सुवास उदार, खैद हरै मन शुचि करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा॥4॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक्चारित्राय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।
नेवज विविध प्रकार, क्षुधा हरै थिरता करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा॥5॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक्चारित्राय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।
दीप ज्योति तमहार, घट-पट परकाशै महा।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा॥6॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविधि सम्यक्चारित्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।
धूप घ्राण-सुखकार, रोग विघ्न जड़ता हरै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा॥7॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक्चारित्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।
श्रीफल आदिविथार, निश्चय सुर शिवफल करै।
सम्यक्चारित सार, तेरह विधि पूजौं सदा॥8॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक्चारित्राय फलं निर्वपामीति स्वाहा।
जल गंधाक्षत चारु, दीप धूप फल फूल चरु।
सम्यक् चारित्र सार, तेरह विधि पूजों सदा॥9॥
ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक्चारित्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

दोहा

आप आप थिर नियत नय, तप संजम व्योहार।
स्व-पर दया दोनों लिये, तेरह विध दुखहार॥1॥

चौपाई

सम्यक्चारित रतन संभालो, पाँच पाप तजि के व्रत पालो।
पंचसमिति त्रय गुप्ति गहीजै, नर भव सफल करहु तन छीजै॥

गीता छन्द

छीजै सदा तनको जतन यह, एक संयम पालिये।
बहु रुल्यौ नरक निगोद माहीं, विषय कषायनि टालिये॥
शुभ करम-जोग सुघाट आयो, पार हो दिन जात है।
'द्यानत' धरम की नाव बैठो, शिवपुरी कुशलात है॥2॥

ॐ ह्रीं त्रयोदशविध सम्यक्चारित्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

नन्दीश्वर व्रत (अष्टाह्निक व्रत) जाप्य मंत्र

1. ॐ ह्रीं नन्दीश्वर-सञ्ज्ञाय नमः,
2. ॐ ह्रीं अष्टममहाविभूति-सञ्ज्ञाय नमः
3. ॐ ह्रीं त्रिलोकसार-सञ्ज्ञाय नमः
4. ॐ ह्रीं चतुर्मुख-सञ्ज्ञाय नमः
5. ॐ ह्रीं पंचमहालक्षण-सञ्ज्ञाय नमः
6. ॐ ह्रीं स्वर्गसोपान-सञ्ज्ञाय नमः
7. ॐ ह्रीं श्री सिद्धचक्राय नमः
8. ॐ ह्रीं इन्द्रध्वज-सञ्ज्ञाय नमः

रत्नत्रय जाप्य मंत्र

ॐ ह्रीं श्री सम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्रेभ्यो नमः।

दसलक्षण जाप्य मंत्र

ॐ ह्रीं अर्हन् मुखकमल समुद्गताय उत्तमक्षमा-धर्माङ्गाय नमः
अथवा ॐ ह्रीं उत्तमक्षमा-धर्माङ्गाय नमः।
इसी प्रकार 'उत्तममार्दव' आदि धर्मों का मन्त्र जपना चाहिए।

सर्व सिद्धि दायक मन्त्र

ॐ ह्रीं क्लीं श्री अर्हं श्री वृषभनाथ तीर्थंकराय नमः।

मानस्तम्भ पूजन

(गीतिका छन्द)

मानस्तम्भ में जिन चतुर्दिश हैं महाशुभ सोहना,
जिनलखत मान पलात मानिन होय हिय निर्मोहना।
तिसमूलमाहि जिनेश प्रतिमालखें आनंद हो घना,
करके आह्वानन थाप पूजों लहें शिवसुख सोहना।।
मानस्थम्भ के मूल में प्रतिमा श्रीभगवान्।
कर आह्वानन जोरकर तिष्ठ तिष्ठ ते आन।।

ॐ ह्रीं मानस्तम्भचतुर्दिक स्थित जिनेन्द्र ! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वानम्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनम्। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणम्।

(योगीरासा)

कंचनझारी उज्जवल जल ले श्रीजिन चरण चढ़ाऊँ।
भाव सहित श्रीजिनवर पूजों जनम जनम सुख पाऊँ।।
मानस्तम्भ सोहनो सुन्दर चारों दिश जिन पाऊँ।
पूजत हर्ष होत भवि जीवन सुर शिव लक्ष्मी पाऊँ।।

ॐ ह्रीं चतुर्दिक् मानस्तम्भजिनेन्द्रेभ्यो जलं निर्वपामीति स्वाहा।

कुमकुम केशर सरससुवासी खासी लेकर धारो।
भव आताप विनाशन कारण श्रीजिनचरण पखारो।।मान.।।

ॐ ह्रीं चतुर्दिक् मानस्तम्भजिनेन्द्रेभ्यो चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

मुक्ताफल उनहार सुतंदुल कान्ति चन्द्रसमधारें।
पुंज करों जिनवर पद आगे अक्षय पद विस्तारें।।मान.।।

ॐ ह्रीं चतुर्दिक् मानस्तम्भजिनेन्द्रेभ्यो अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।

कमल केतकी बेल चमेली भ्रमर गुंजारत जापें।
पूजत श्रीजिन चरण मनोहर काम न आवे तापे।।मान.।।

ॐ ह्रीं चतुर्दिक् मानस्तम्भजिनेन्द्रेभ्यो पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

फेनी घेवर मुरत सु घी के लाडू गोझा लावे।
क्षुधारोग निरवारन कारन श्रीजिन चरण चढ़ावे।।मान.।।

ॐ ह्रीं चतुर्दिक् मानस्तम्भजिनेन्द्रेभ्यो नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

मणिमय दीप अमोलक लेकर कनक रकावी धरिये।
मोह अंध के नाशन कारण जगमग ज्योति उजरिये।।मान.।।

ॐ ह्रीं चतुर्दिक् मानस्तम्भजिनेन्द्रेभ्यो दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

धूप सुगन्ध समूह अनूपम खेय अगनि में घालो।
अष्टकर्म ये दुष्ट भयानक इनको तुरतहि जालो।।मान.।।

ॐ ह्रीं चतुर्दिक् मानस्तम्भजिनेन्द्रेभ्यो धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

श्रीफल लोंग लायची सुन्दर पिस्ता जात घनेरा।
पूजि जिनेश मोक्षफल पाये स्वर्गादिक सुख केरा।।मान.।।

ॐ ह्रीं चतुर्दिक् मानस्तम्भजिनेन्द्रेभ्यो फलं निर्वपामीति स्वाहा।

आठ द्रव्य मिला अरघ संजोयो पूजों श्रीजिनभाई।
भवसागर से पार उतारो जय जय जय जिन राई।।मान.।।

ॐ ह्रीं चतुर्दिक् मानस्तम्भजिनेन्द्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

मानस्तम्भ सुहावनो चारों दिश जिन थान।
सुर नर मुनि खग हर्षयुत पूजें आनन्द ठान।।

(पद्धरि छन्द)

जय जय जय मानस्तम्भसार, शोभित नीचे चौकोर धार।
जय ऊपर गोलाकार जान, जय अति उतंग देदीप्यमान।।

जय ऊपर महा अति जगमगात, जय वज्रमयी नीचे सुहात।
जयलसैफटिकमय बीचमान, मणि वैडूरजसम ऊर्ध्व जान।।
जय तापर कमल बनें स्वरूप, जय तापर है कलशा अनूप।
जय दंड ध्वजा तापर सुहात, जय जगमग जगमग लहलहात।।
जय घंटा छत्र सु चमर जान, जय बँधी रतनमाला प्रमान।
जय नानामणिमय शोभकार, राजत सो मानस्तम्भ सार।।
तामूल सु चारों दिश निहार, जिन प्रतिमा सोहैं परम सार।
सुरगण पूजत जयजय उचार, कर नृत्यताल स्वर को सम्हार।।
सननं सननं बाजै सितार, घननं घननं घन घंट धार।
द्रम द्रम द्रम द्रम बाजत मृदंग, करताल तबल अरु मूहचंग।।
छमछम छमछम नूपुर बजाय, क्षण भूमिक्षणकआकाश जाय।
जहाँ नाचत मघवा आप आन, तिहि शोभा कोवरनें महान।
इम नृत्य गान उत्सव महान, पूजन कर सुरपति हरष ठान।
जयपंच रतन मय अतिसुरंग, जय मानस्तम्भ दिपै अभंग।।
जय मानी जय सब मान छोड़, देखत नावत शिर हाथ जोड़।
जय तातें मानस्तम्भ नाम, सार्थक कीन्हों शोभाविराम।।
जय ऐसो मानस्तम्भ सार, सोहै चारों दिश जिन निहार।
जिनराज विभव देखत जु सार, महिमा वरनत पावे न पार।।

श्री जिनमानस्तम्भ की गुणमाला सुविशाल।
जो नर पहिरे कंठ में सुर शिव पावे हाल।।

ॐ ह्रीं चतुर्दिक्स्थित मानस्तम्भजिनेन्द्रेभ्यो अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

।।पुष्पांजलिं क्षिपेत्।।

श्री रक्षांबधन पर्व महापूजा

(रचयिता- आचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज)

निष्काम साधना के साधक, आराधक शुद्धातम पथ के।
जिनधर्म ध्वजा फहराने तुम, सारथि थे रत्नत्रय रथ के॥
मुनिराज सात सौ इस रथ पर, होकर सवार जब चलते थे।
दर्शन करने को श्रावक क्या? स्वर्गों के देव मचलते थे॥
अनहोनी थी कर्मोदय ने, करके उपसर्ग परीक्षा ली।
तुम संघ सहित निज में अविचल विष्णुकुमार ने रक्षा की॥
आचार्य अकम्पन नाम अहा, शिवपथिकों के मन भाता था।
जो चरण धूल पा जाता था, अपना सौभाग्य मनाता था॥
मैं भी चरणोदक पाने को, पूजा का थाल सजा लाया।
रत्नत्रय का वरदान मिले, हो स्वानुभूति मंगल छाया॥

ॐ ह्रीं श्री अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनि समूह एवं विष्णुकुमार मुनीन्द्र! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं।

ॐ ह्रीं श्री अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनि समूह एवं विष्णुकुमार मुनीन्द्र! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं।

ॐ ह्रीं श्री अकम्पनाचार्यादि सप्तशतकमुनि समूह एवं विष्णुकुमार मुनीन्द्र! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

(परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

मिथ्यामल को धोकर तुमने, निजशुद्ध चेतना को पाया।
निज वीतराग की परिणति से, चारित्र मोह को नहलाया॥
आचार्य अकंपन विष्णु नमूँ, मुनिराज सात सौ ध्याऊँ मैं।
नश जाये जन्म जरा मृत्यु, शुद्धातम अनुभव गाऊँ मैं॥1॥

ॐ ह्रीं श्री अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक मुनिभ्यो एवं विष्णुकुमार मुनीन्द्राय जलं निर्वपामीति स्वाहा।

निज चिदानन्द के चन्दन से, तुमने भवताप मिटाया है।
शुद्धातम बल को हे स्वामिन्! निज पौरुष से प्रगटाया है॥
आचार्य अकंपन विष्णु नमूँ, मुनिराज सात सौ ध्याऊँ मैं।
संसार ताप का नाश करूँ, चिन्मय स्वरूप निज पाऊँ मैं॥2॥

ॐ ह्रीं श्री अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक मुनिभ्यो एवं विष्णुकुमार मुनीन्द्राय चन्दनं निर्वपामीति स्वाहा।

अक्षय ज्ञायक पद सुखदायी, अनुभव से तुमने जान लिया।
इन्द्रादिक पद दुःखदायी हैं, शुभकर्मों का फल मान लिया॥
आचार्य अकंपन विष्णु नमूँ, मुनिराज सात सौ ध्याऊँ मैं।
अक्षयपद निज से प्रगटाऊँ, अविनाशी सुख को पाऊँ मैं॥3॥

ॐ ह्रीं श्री अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक मुनिभ्यो एवं विष्णुकुमार मुनीन्द्राय अक्षतं निर्वपामीति स्वाहा।

निज ज्ञानानंद स्वभाव सहज, अनुभव से तुमने जाना था।
कामादिक भाव विनष्ट हुये, निजधर्म ही निज का माना था॥
आचार्य अकपंन विष्णु नमूँ, मुनिराज सात सौ ध्याऊँ मैं।
यह कामबाण विध्वंस करूँ, निष्काम दशा को पाऊँ मैं॥4॥

ॐ ह्रीं श्री अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक मुनिभ्यो एवं विष्णुकुमार मुनीन्द्राय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।

रसना के रस में रस लेकर, अब तक निज रस को न जाना।
तुमने निजरस का पान किया, रसना रस में सुख न माना॥
आचार्य अकंपन विष्णु नमूँ, मुनिराज सात सौ ध्याऊँ मैं।
इस क्षुधारोग का नाश करूँ, निज उपशम रस चख गाऊँ मैं॥5॥

ॐ ह्रीं श्री अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक मुनिभ्यो एवं विष्णुकुमार मुनीन्द्राय नैवेद्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जिस मोहकर्म ने अर्द्धचक्रि-चक्री को भी मजबूर किया।
चेतन प्रकाश प्रगटा तुमने उस मोह तिमिर को दूर किया॥

आचार्य अकंपन विष्णु नमूँ, मुनिराज सात सौ ध्याऊँ मैं।
मोहान्धकार का नाश करूँ, निर्मोह आत्मा पाऊँ मैं॥6॥

ॐ ह्रीं श्री अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक मुनिभ्यो एवं विष्णुकुमार मुनीन्द्राय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।

साधक व्यवहार महातप से प्रगटाई निश्चय तप ज्वाला।
जब आत्मलीनता में तुमने कर्मों का संवर कर डाला॥
आचार्य अकंपन विष्णु नमूँ, मुनिराज सात सौ ध्याऊँ मैं।
आठों कर्मों को दहकाने, निश्चय संवर को पाऊँ मैं॥7॥

ॐ ह्रीं श्री अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक मुनिभ्यो एवं विष्णुकुमार मुनीन्द्राय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।

अविकार अचल अविकल अनुपम स्वाधीन सहज सुख पाने को।
तुम परमसमाधि लीन हुये हे नाथ! मुक्तिफल पाने को॥
आचार्य अकंपन विष्णु नमूँ, मुनिराज सात सौ ध्याऊँ मैं।
सम्यक् शिवफल हो प्रगट मुझे, वह परमसमाधि पाऊँ मैं॥8॥

ॐ ह्रीं श्री अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक मुनिभ्यो एवं विष्णुकुमार मुनीन्द्राय फलं निर्वपामीति स्वाहा।

उपसर्गों में संघर्षों में, तुमने समभाव बनाया है।
हे स्वामिन्! यह समभाव स्वयं बनकर अनर्घ्यपद आया है॥
आचार्य अकंपन विष्णु नमूँ, मुनिराज सात सौ ध्याऊँ मैं।
ऐसा अनर्घ्य पद मिल जाये, भावों से अर्घ्य चढ़ाऊँ मैं॥9॥

ॐ ह्रीं श्री अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक मुनिभ्यो एवं विष्णुकुमार मुनीन्द्राय अनर्घ्य प्राप्तये अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

सूरि अंकपन संघ पर, हुआ घोर उपसर्ग।
दूर किया विष्णु मुनि, किया श्रेष्ठ उत्सर्ग॥

एक था मालवदेश प्रसिद्ध, राजधानी थी उज्जैनी।
श्री वर्मा नृप करता राज्य, धर्मपालक सच्चा जैनी॥

वृहस्पति नमुचि बलि प्रहलाद, महाचातुर थे मंत्री चार।
श्री वर्मा नृप का आदेश, उन्हें था हरपल ही स्वीकार॥

किन्तु जिनधर्म और निर्ग्रन्थ, मुनि के प्रति था उनको द्वेष।
इसी कारण से मन ही मन, रहा करता था उनको क्लेश॥

तीर्थाटन करते आचार्य, अकंपन संघ सहित आये।
नगर उपवन में किया प्रवेश, नगर में उत्सव थे छाये॥

अहा धर्मीजन की टोली, नाचतीं थीं उमगाती थीं।
गुँजाती नभभेदी जयकार, साधु दर्शन को जाती थीं।

नृपति ने बुला मंत्रियों को, कही साधु दर्शन की बात।
अमंगल होगा दर्शन से, विनय से बोले मंत्री साथ॥

आग दर्शन, विष दर्शन से, हुआ है प्राणहीन कब कौन?
सुना नृपमुख से ऐसा प्रश्न, निरुत्तर हो मंत्री थे मौन॥

निष्पृही संतों का दर्शन, जगत् में होता मंगलमय।
चला नृप निज मंगल करने, प्रजा मंत्री संग हो निर्भय॥

अकंपन गुरु ने दिया आदेश, मौन हो करो निजातम ध्यान।
नृपति धर्मी है किन्तु मंत्री, धर्म से हीन, नहीं श्रद्धान॥

सात सौ मुनि थे निज में लीन, अकंपन गुरु के वचन प्रमाण।
वीतरागी मुनिचर्या से हुआ, नृप को रोमांच महान॥

सुअवसर जान मंत्री बोले, सभी मुनि मूरख अज्ञानी।
जान नृप आया दर्शन हेतु, मौन हैं सब बगुला ध्यानी॥

किया इन सब नंगों ने आज, हे राजन्! श्री पति तव अपमान।
इन्हें देकर के मृत्युदण्ड, करो राजन्! इनका कल्याण॥

नृपति ने कहा मंत्रियों से रखो, अपनी जुबान तुम बन्द।
रंक-राजा के प्रति समभाव, धन्य हैं वीतरागी मुनिवृन्द॥

नगर को जाता था सम्राट, मिले श्रुतसागर जी मुनिराज।
हुआ मंत्री से वाद-विवाद, हार से हुए मंत्री नाराज॥

अकंपन गुरु को मुनिवर ने बताई घटना सारी बात।
जान-अनहोनी गुरु बोले योगधर वहीं बिताओ रात॥

उधर अपमानित चारों मंत्री हाथ में ले नंगी तलवार।
देख मुनि को निज शत्रु जान अन्य मुनियों का तजा विचार॥

मारने को चारों मंत्री उठाते हाथ लिये तलवार।
हुये कीलित पछताये खूब मचा नगरी में हाहाकार॥

मुनि ने किया क्षमा, नृप ने दिया निर्वास दण्ड अनुसार।
हस्तिनापुर जाकर राजा पद्म की करते जय-जयकार॥

पद्म राजा के शत्रु को बना लाये बन्दी जब साथ।
लिया मुँह माँगा वर, बलि ने कहा जब चाहूँ तब दो नाथ॥

योगवश संघ सहित आचार्य अकंपन इसी नगर आये।
नृपति संग दर्श हेतु कैसे जायेंगे? मंत्री घबराये॥

पद्म नृप से रक्षित वरदान बलि ने माँग लिया तत्काल।
राज सिंहासन का उपभोग करूँगा सात दिवस नरपाल॥

हुआ नरमेघ यज्ञ आरंभ अस्थि मज्जा पशुओं का होम।
हुये ध्यानस्थ सभी मुनिराज धुयें से थर्राया था व्योम॥

गूँजते हा-हा-हा-हा शब्द देखकर मुनियों का उपसर्ग।
बलि दे रहा किमिच्छक दान किन्तु हिंसक थे सारे अर्घ॥

विक्रिया ऋद्धि के धारी महामुनिवर थे विष्णु कुमार।
धन्य है वात्सल्य का भाव धरा याचक वामन अवतार॥

माँगकर तीन पाँव भूमि प्रथम पग रखा सुमेरु पर।
दूसरा मानुषोत्तर और तीसरा बलिनृप के ऊपर॥

क्षमा की करता बलि गुहार हुआ है मुझसे भारी पाप।
करूँगा मुनियों की रक्षा हृदय में उपजा पश्चाताप॥

सभी ने कीनी नवधाभक्ति दिया मुनिराजों को आहार।
बाँधकर सबको रक्षा सूत्र किया था सबने मंगलाचार॥

पुनः मुनिव्रत धारण करके किया तप मुनिवर विष्णुकुमार।
नष्टकर अष्टकर्म बंधन पा लिया सिद्धसदन शिवकार॥

श्रवण शुक्ला पूनम का दिन बना रक्षाबंधन त्यौहार।
रखो सब वात्सल्य का भाव करो मुनिराजों की जयकार॥

जयति जय जय अंकपनाचार्य सात सौ मुनि की जय जयकार।
जयति जय वात्सल्य का भाव जयति जय मुनिवर विष्णुकुमार॥

वात्सल्य का शुभ दिवस, रक्षाबन्धन पर्व।
मुनिरक्षा संकल्प से, हो अन्तर में गर्व॥

ॐ ह्रीं श्री अकम्पनाचार्यादि सप्तशतक मुनिभ्यो एवं विष्णुकुमार मुनीन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा।

निर्वाण क्षेत्र पूजा

(सोरठा)

परम पूज्य चौबीस, जिहँ जिहँ थानक शिव गये।
सिद्धभूमि निशदीस, मन वच तन पूजा करौ॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थङ्कर-निर्वाण क्षेत्राणि! अत्र अवतर अवतर संवौषट् आह्वाननं। ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थङ्कर-निर्वाण क्षेत्राणि! अत्र तिष्ठ तिष्ठ ठः ठः स्थापनं! ॐ ह्रीं चतुर्विंशति-तीर्थङ्कर-निर्वाण क्षेत्राणि! अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं।

(गीता छन्द)

शुचि क्षीर दधि सम नीर निरमल, कनकझारी में भरौं।
संसार पार उतार स्वामी, जोर कर विनती करौं॥
सम्मेदगढ़ गिरनार, चम्पा, पावापुरि कैलाश कों।
पूजों सदा चौबीसजिन, निर्वाण-भूमि निवासकों॥1॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थङ्कर-निर्वाण क्षेत्रेभ्यः जलं निर्वपामीति स्वाहा।

केशर कपूर सुगंध चंदन, सलिल शीतल विस्तरौं।
भवताप कौ संताप मेटो, जोरकर विनती करौं॥सम्मेद.॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थङ्कर-निर्वाण क्षेत्रेभ्यः चंदनं निर्व. स्वाहा।

मोती-समान अखंड तंदुल, अमल आनन्दधरि तरौं।
औगुन हरौ गुन करौ हमको, जोरकर विनती करौं॥सम्मेद.॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थङ्कर-निर्वाण क्षेत्रेभ्यः अक्षतान् निर्व. स्वाहा

शुभ फूल रास सुवास वासित, खेद सब मन की हरौं।
दुखधामकामविनाश मेरो, जोरकर विनती करौं॥सम्मेद.॥

ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थङ्कर-निर्वाण क्षेत्रेभ्यः पुष्पं निर्व.स्वाहा।

नेवज अनेक प्रकार जोग, मनोग धरि भय परिहरौं।
यह भूख दूखन टार प्रभुजी, जोरकर विनती करौं॥सम्मेद.॥
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थङ्कर-निर्वाण क्षेत्रेभ्य: नैवेद्यं निर्व. स्वाहा।
दीपक-प्रकाशउजास उज्ज्वल, तिमिरसेती नहिं डरौं।
संशयविमोहविभर्म-तमहर, जोरकर विनती करौं॥सम्मेद.॥
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थङ्कर-निर्वाण क्षेत्रेभ्य: दीपं निर्व. स्वाहा।
शुभ धूप परम अनूप पावन, भाव पावन आचरौं।
सब करमपुञ्ज जलाय दीज्यो, जोरकर विनती करौं॥सम्मेद.॥
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थङ्कर-निर्वाण क्षेत्रेभ्य: धूपं निर्व. स्वाहा।
बहुफल मँगाय चढ़ाय उत्तम, चारगतिसों निरवरौं।
निहचै मुकतिफल देहु मोकों, जोरकर विनती करौं॥सम्मेद.॥
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थङ्कर-निर्वाण क्षेत्रेभ्य: फलं निर्व. स्वाहा।
जल गंध अक्षत पुष्प चरु फल, दीप धूपायन धरौं।
'द्यानत' करो निरभय जगतसों, जोरकर विनती करौं॥सम्मेद.॥
ॐ ह्रीं श्री चतुर्विंशति तीर्थङ्कर-निर्वाण क्षेत्रेभ्य: अर्घ्यं निर्व. स्वाहा।

जयमाला

(सोरठा)

श्री चौबीसजिनेश, गिरिकैलाशादिक नमों।
तीरथ महाप्रदेश, महापुरुष निरवाणतैं॥

(चौपाई 16 मात्रा)

नमों ऋषभ कैलाशपहारं, नेमिनाथ गिरनार निहारं।
वासुपूज्य चंपापुर बन्दौं, सन्मति पावापुर अभिनन्दौं॥2॥

बन्दौं अजित अजित पद दाता, बन्दौं संभव भवदुखघाता।
बन्दौं अभिनन्दन गणनायक, बन्दौं सुमति सुमति के दायक ॥3॥

बन्दौं पदम मुकति-पदमाकर, बन्दौं सुपास आश पासाहर।
बन्दौं चन्द्रप्रभ प्रभुचन्दा, बन्दौं सुविधि सुवधिनिधि कन्दा ॥4॥

बन्दौं शीतल अघतपशीतल, बन्दौंश्रियांस श्रियांस महीतल।
बन्दौं विमल विमल उपयोगी, बन्दौं अनंत अनंत सुखभोगी ॥5॥

बन्दौं धर्म-धर्म-विस्तारा, बन्दौं शान्ति-शान्ति मनधारा।
बन्दौं कुन्थु-कुन्थु-रखवालं, बन्दौं अर अरि-हर गुणमालं ॥6॥

बन्दौं मल्लि काममलचूरन, बन्दौं मुनिसुव्रत व्रतपूरन।
बन्दौं नमि जिन नमित सुरासुर, बन्दौं पास-पास-भ्रमजगहर ॥7॥

बीसौं सिद्धभूमि जा ऊपर, शिखर समेद महागिरि भूपर।
एक बार बन्दे जो कोई, ताहि नरकपशुगति नहिं होई ॥8॥

नरपति नृप सुरशक्र कहावै, तिहुँजग भोग भोगि शिव जावै।
विघन विनाशक मंगलकारी, गुण-विलास बन्दौं भवतारी ॥9॥

ॐ ह्रीं चतुर्विंशति तीर्थङ्कर-निर्वाण क्षेत्रेभ्यः पूर्णार्घ्यं निर्व. स्वाहा।

घत्ता

जो तीरथ जावै, पाप मिटावै ध्यावै गावै भक्ति करै।
ताको जस कहिये संपत्ति लहिये, गिरिके गुण को बुधउचरै ॥

(परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

तीस चौबीसी पूजा

पाँच भरत शुभ क्षेत्र पाँच ऐरावते,
आगत नागत वर्तमान जिन शास्वते।
सो चौबीसी तीस जजों मन लायके,
आह्वानन विधि करूँ बार त्रय गायके।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिदशक्षेत्रस्य सप्तशतविंशतिजिनेन्द्राः अत्रावतरावतर संवौषट् आह्वाननं। अत्र तिष्ठ तिष्ठ, ठः ठःस्थापनं। अत्र मम सन्निहितो भव भव वषट् सन्निधिकरणं। (परिपुष्पांजलिं क्षिपामि)

नीर दधि क्षीर सम लायो, कनक के भृंग भरवायो।
जरामृतु रोग सतायो, अबै तुम चर्ण ढिग आयो।
द्वीप अढाई सरस राजै, क्षेत्र दश ताँ विषैं छाजै।
सातशत बीस जिनराजै पूजतां पाप सब भाजै।।1।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिदशक्षेत्रस्य सप्तशतविंशतिजिनेन्द्रेभ्यो जन्मजरामुत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा।।

सुरभि जुत चंदन लायो, संग करपूर घसवायो।
धार तुम चरण उरवायो, भव आतप नसवायो।। द्वीप.2।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिदशक्षेत्रस्य सप्तशतविंशतिजिनेन्द्रेभ्यो संसारतापविनाशनाय चंदनं निर्वपामीति स्वाहा।।

चन्द सम तन्दुल सारं, किरण मुक्ता जु उनहारं।
पुंज तुमचरण ढिग धारं, अखै पद काजकेकारं।।द्वीप.3।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिदशक्षेत्रस्य सप्तशतविंशतिजिनेन्द्रेभ्यो अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् निर्वपामीति स्वाहा।।

पुष्प शुभ गंध जुत सोहे, सुगन्धित तास मन मोहे।
जजत तुम मदन छय होवे, मुक्तिपुर पलक में जोवे।।द्वीप.।।4।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिदशक्षेत्रस्य सप्तशतविंशतिजिनेन्द्रेभ्यो कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं निर्वपामीति स्वाहा।।

सरस व्यंजन लिया ताजा, तुरत बनवाइया खाजा।
चरण तुम जजों महाराजा, क्षुधा दुखपलक में भाजा।।द्वीप.।।5।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिदशक्षेत्रस्य सप्तशतविंशतिजिनेन्द्रेभ्यो क्षुधारोगविनाशनाय नैवैद्यं निर्वपामीति स्वाहा।।

दीप तम नाशकारी है, सरस शुभ ज्योति धारी है।
होय दशदिश उजारी है, धूम्र मिस पाप जारी है।।द्वीप.।।6।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिदशक्षेत्रस्य सप्तशतविंशतिजिनेन्द्रेभ्यो मोहान्धकारविनाशनाय दीपं निर्वपामीति स्वाहा।।

सरस शुभ धूप दशअंगी, जराऊँ अग्नि के संगी।
कर्म की सेन चतुरंगी चरण तुम पूजते अंगी।।द्वीप.7।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिदशक्षेत्रस्य सप्तशतविंशतिजिनेन्द्रेभ्यो अष्टकर्म दहनाय धूपं निर्वपामीति स्वाहा।।

मिष्ट उत्कृष्ट फल ल्यायो, अष्ट अरि दुष्ट नसवायो।
श्रीजिन भेंट करवाये, मनोवांछित फल पायो।।द्वीप.8।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिदशक्षेत्रस्य सप्तशतविंशतिजिनेन्द्रेभ्यो मोक्षफलं प्राप्तये फलं निर्वपामीति स्वाहा।।

द्रव्य आठों जू लीना है, अर्घ कर में नवीना है।
पूजते पाप छीना है, 'भानुमल' जोड़ कीना है।।द्वीप. 9।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिदशक्षेत्रस्य सप्तशतविंशतिजिनेन्द्रेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।।

आदि सुदर्शन मेरू तनि दक्षिण दिशा,
भरत क्षेत्र सुखदाय सरस सुन्दर बसा।
तिहं चौबीसी तीन तने जिनरायजी,
बहत्तरि जिन सर्वज्ञ नमो सिरनायजी।।1।।

ॐ ह्रीं प्रथमसुदर्शनमेरुदक्षिणक्षेत्रस्य भरतक्षेत्रसम्बन्धि- त्रिचतुर्विंशतेः द्वासप्तति जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।1।।

ताहि मेरु उत्तर ऐरावत सोहनो,
आगत नागत वर्तमान मन मोहनो।
तिहँ चौबीसी तीन तने जिनरायजी,
बहत्तरि जिन सर्वज्ञ नमों सिरनायजी।।2।।

ॐ ह्रीं प्रथमसुदर्शनमेरुदक्षिणक्षेत्रस्य ऐरावतक्षेत्रसम्बन्धि- त्रिचतुर्विंशतेः द्वासप्तति जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

कुसुमलता छन्द

खण्ड धात की विजय मेरु के दक्षिण दिशा भरत शुभ जान,
तहैं चौबीसी तीन बिराजै, आगत नागत अरु वर्तमान।
तिनके चरण कमल को निशदिन, अर्घ चढ़ाय करूँ उर ध्यान।
इस संसार भ्रमणतैं तारो, अहो जिनेश्वर करुणावान।।3।।

ॐ ह्रीं धातकीखंडपूर्वदिशायां द्वितीयविजयमेरु- दक्षिणक्षेत्रस्य भरतक्षेत्रसम्बन्धि- त्रिचतुर्विंशतेः द्वासप्तति जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

इसी द्वीप की प्रथम शिखर के उत्तर ऐरावत जो महान।
आगत नागत वर्तमान जिन बहत्तरि सदा शास्वते जान।
तिनके चरण कमल को निशदिन अर्घ चढ़ाय करूँ उर ध्यान।
इससंसार भ्रमणतैं तारों अहो जिनेश्वर करुणावान।।4।।

ॐ ह्रीं धातकीखंडपूर्वदिशायां द्वितीयविजयमेरु-उत्तर क्षेत्रस्य ऐरावतक्षेत्रसम्बन्धि- त्रिचतुर्विंशतेः द्वासप्तति जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

खण्ड धात गिर अचल जु मेरु, दक्षिण तास भरत बहु घेर।
तामे चौबीसी त्रय जान, आगत नागत अरु वर्तमान।।5।।

ॐ ह्रीं धातकीखंडपश्चिमदिशायां तृतीयअचलमेरु- दक्षिणक्षेत्रस्य भरतक्षेत्रसम्बन्धि-त्रिचतुर्विंशतेः द्वासप्तति जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

अचलमेरु उत्तर दिश जाय, ऐरावत शुभ क्षेत्र बताय।
तामें चौबीसी त्रय जान, आगत नागत अरु वर्तमान।।6।।

ॐ ह्रीं धातकीखंडपश्चिमदिशायां तृतीयअचलमेरु- उत्तरक्षेत्रस्य ऐरावतक्षेत्रसम्बन्धित्रिचतुर्विंशतेः द्वासप्तति जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

सुन्दरी छन्द

द्वीप पुस्कर की पूरब दिशा, मन्दिर मेरू की दक्षिण भरतसा।
ता विषै चौबीसी तीनजू, अर्घ लेय जजों परवीन जू।।7।।

ॐ ह्रीं पुष्करार्द्धद्वीपपूर्वदिशायां चतुर्थमंदिरमेरुदक्षिणक्षेत्रस्य भरतक्षेत्रसम्बन्धि-त्रिचतुर्विंशतेः द्वासप्तति जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

गिर सुमन्दिर उत्तर जानियो, क्षेत्र ऐरावत सु बखानियो।
ता विषै चौबीसी तीन जू, अर्घ लेय जजों परवीन जू।।8।।

ॐ ह्रीं पुष्करार्द्धद्वीपपूर्वदिशायां चतुर्थमंदिरमेरुदक्षिणक्षेत्रस्य ऐरावतक्षेत्रसम्बन्धि-त्रिचतुर्विंशतेः द्वासप्तति जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

पश्चिम पुष्कर गिर विद्युतमाल, ता दक्षिण भरत वन्यो रसाल।
तामें चौबीसी है जू तीन, वसु द्रव्य लेय पूजों प्रवीन।।9।।

ॐ ह्रीं पुष्करार्द्धद्वीपपश्चिमदिशायां पंचमविद्युन्मालीमेरु- दक्षिणक्षेत्रस्य भरतक्षेत्रसम्बन्धित्रिचतुर्विंशतेः द्वासप्तति जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

याही गिरके उत्तर जु ओर, ऐरावत क्षेत्र तनी सु ठौर।
तामें चौबीसी है जू तीन, वसु द्रव्य लेय पूजों प्रवीन।।10।।

ॐ ह्रीं पुष्करार्द्धद्वीपपश्चिमदिशायां पंचमविद्युन्मालीमेरु- उत्तरक्षेत्रस्य ऐरावतक्षेत्रसम्बन्धित्रिचतुर्विंशतेः द्वासप्तति जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

कुण्डलिया छन्द

द्वीप अढाई के विषैं, पाँच मेरु हितदाय।
दक्षिण उत्तर तासुके, भरत ऐरावत भाय।
भरत ऐरावत भाय एक क्षेत्र के माँही।
चौबीसी हैं तीन तीन दशही के माँही।
अर्घलेयकर जोर जजोंरविमल मन शुधकर।।11।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिदशक्षेत्रस्य सप्तशतविंशति-जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घपदप्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

जयमाला

चौबीसी तीसों तनी, पूजा परम रसाल।
मन वच तनसों शुद्ध कर, अब बरनों जयमाल।।

जय द्वीप अढ़ाई मे जु सार, गिर पंच मेरु उन्नत अपार।
ता गिर पूरब पश्चिम जु ओर, शुभ क्षेत्र विदेह बसे जु ठोर।।1।।

ता दक्षिण क्षेत्र भरत सुजान, है उत्तर ऐरावत महान।
गिर पाँच तने दशक्षेत्र जोय, ताको वर्णन सुनि भव्य लोय।।2।।

जो भरत तनों वरनन विशाल, तैसो ही ऐरावत रसाल।
इक क्षेत्र बीच विजयार्द्ध एक, ता ऊपर विद्याधर अनेक।।3।।

इक क्षेत्र तने षट् खण्ड जान, तहाँ छहों काल बरते समान।
जो तीन काल में भोगभूमि, दश जाति कल्पतरु रहे भूमि।।4।।

जब चौथो काल लगे जु आय, तब कर्मभूमि बरते सु आय।
जब तीर्थंकरको जनम होय, सुरलेय जजैं गिर मेरु सोय।।5।।

वह भक्ति करें सब देव आय, ता थेई थेई थेई तान लाय।
हरि तांडव नृत्य करे अपार, सब जीवन मन आनन्दकार।।6।।

इत्यादि भक्ति करिके सुरिंद, जिन थान जाययुत देव वृन्द।
या विधि पाँचों कल्यान जोय, हरि भक्ति करे अति हर्ष होय।।7।।

या काल विषैं पुण्यवंत जीव, नर जन्मधर शिव लहैअतीव।
सब त्रेसठ पुरुष प्रवीन जोय, सब याही काल विषैं जु होय।।8।।

जब पंचम काल करे प्रवेश, मुनि धर्म तनों नहिं रहे लेश।
विरले कोई दक्षिण देश माँहिं, जिनधर्मीजन बहुते जुनाहिं।।9।।

जब आवत है षष्ठम जु काल, दुःख में दुःख प्रगटे अति कराल।
तब मांस भक्षि नर तहाँ होय, जहाँ धर्म नाम नहिं सुने कोय।।10।।

याही विधि से षटकाल जोय, दश क्षेत्रों में इकसार होय।
सब क्षेत्रन में रचना समान, जिनवाणी भाख्यो सो प्रमान।।11।।

चौबीसी हैं इक क्षेत्र तीन, दश क्षेत्र तीस जानों प्रवीन।
आगत नागत जिन बरतमान, सब सात शतक अरु बीस जान।।12।।

सबही जिनराज नमों त्रिकाल, मोहि भव वारिधितैं ल्यो निकाल।
यह वचन हिये में धारि लेव, मम रक्षा करो जिनेन्द्र देव।।13।।

रविमल की विनती सुनो नाथ, मैं पांय पड़ूँ जुग जोरि हाथ।
मनवांछित कारज करो पूर, यह अरज हिया में धरि हजूर।।14।।

।।धत्ता।।

शत सात जु बीस, श्री जगदीश, आगत नागत वरततु हैं
मन वच तन पूजें, सुध मन हूजै, सुरग मुक्ति पद धारत हैं।।15।।

ॐ ह्रीं पंचमेरुसम्बन्धिदशक्षेत्रस्य सप्तशतविंशति-जिनेन्द्रेभ्यो अनर्घपद प्राप्तये अर्घं निर्वपामीति स्वाहा।

सच्चे जैन का एक ही पंथ–जिनागम पंथ

जयदु जिणगम पंथो

अनादि–अनिधन

जिनागम पंथ जयवंत हो!
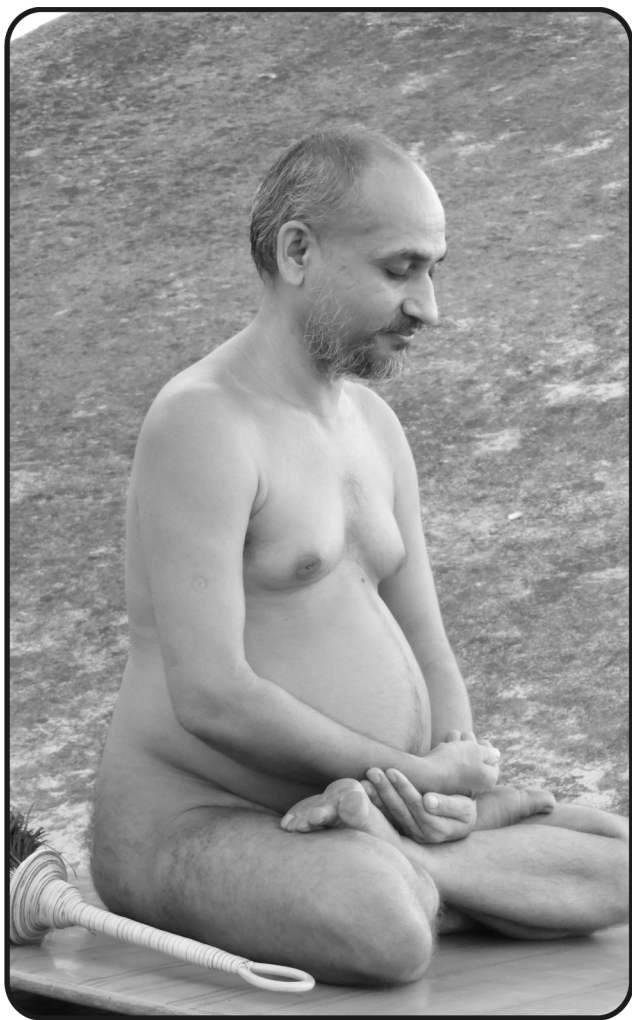
श्री सुप्रभात स्तोत्र

यत्स्वर्गावतरोत्सवे यदभवज्जन्माभिषेकोत्सवे,
यद्दीक्षा-ग्रहणोत्सवे यदखिल-ज्ञानप्रकाशोत्सवे।
यन्निर्वाणगमोत्सवे जिनपतेः, पूजाद्भुतं तद्भवैः,
सङ्गीत स्तुति मंगलैः प्रसरतां, मे सुप्रभातोत्सवः ॥1॥

श्रीमन्नतामर-किरीट-मणिप्रभाभि-
रालीढपाद-युग दुर्द्धर-कर्मदूर।
श्रीनाभिनंदन! जिनाजित! शम्भवाख्य!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥2॥

छत्रत्रय प्रचल चामर वीज्यमान,
देवाभिनन्दनमुने! सुमते! जिनेन्द्र।
पद्मप्रभा-रुणमणि-द्युतिभासुरांग,
त्वद्ध्यानतोस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥3॥

अर्हन् सुपार्श्व! कदलीदलवर्ण-गात्र,
प्रालेयतारगिरि-मौक्तिक वर्णगौर।
चन्द्रप्रभ! स्फटिक पाण्डुर पुष्पदन्त !,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥4॥

सन्तप्त-काञ्चनरुचे जिन शीतलाख्य!
श्रेयान्विनष्ट दुरिताष्ट कलंक पंक।
बंधूक-बंधुररुचे जिन वासुपूज्य!,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥5॥

उद्दण्ड दर्प-करिपो विमलामलांग,
स्थो मन्ननन्तजिदनन्त-सुखाम्बुराशे।
दुष्कर्म कल्मष विवर्जित-धर्मनाथ!,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥6॥

देवामरी-कुसुम सन्निभ-शान्तिनाथ!
कुन्थो! दयागुण-विभूषण-भूषितांग।
देवाधिदेव भगवन्नर तीर्थनाथ,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥7॥

यन्मोह-मल्ल मदभञ्जन मल्लिनाथ!
क्षेमङ्करा - वितथ - शासन-सुव्रताख्य।
सत्सम्पदा प्रशमितो नमि नामधेय,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥8॥

तापिच्छ-गुच्छरुचिरोज्ज्वल-नेमिनाथ!
घोरोपसर्ग-विजयिन् जिन पार्श्वनाथ।
स्याद्वाद-सूक्ति-मणि दर्पण-वर्द्धमान!
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥9॥

प्रालेय नील-हरितारुण-पीतभासं,
यन्मूर्तिमव्यय-सुखावसथं मुनीन्द्राः।
ध्यायन्ति सप्ततिशतं जिनवल्लभानां,
त्वद्ध्यानतोऽस्तु सततं मम सुप्रभातम्॥10॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, माङ्गल्यं परिकीर्तितम्।
चतुर्विंशतितीर्थानां, सुप्रभातं दिने दिने॥11॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, श्रेयः प्रत्यभिनन्दितम्।
देवता ऋषयः सिद्धाः, सुप्रभातं दिने दिने॥12॥

सुप्रभातं तवैकस्य, वृषभस्य महात्मनः।
येन प्रवर्तितं तीर्थं, भव्यसत्त्व-सुखावहम्॥13॥

सुप्रभातं जिनेन्द्राणां, ज्ञानोन्मीलित चक्षुषाम्।
अज्ञान-तिमिरांधानां, नित्यमस्तमितो रविः॥14॥

सुप्रभातं जिनेन्द्रस्य, वीरः कमललोचनः।
येन कर्माटवी दग्धा, शुक्लध्यानोग्रवह्निना॥15॥

सुप्रभातं सुनक्षत्रं, सुकल्याणं सुमङ्गलम्।
त्रैलोक्य हित कर्त्तृणां, जिनानामेव शासनम्॥16॥

(इतिश्री सुप्रभात स्तोत्र)

श्री सुप्रभात स्तोत्र

(पद्यानुवाद-आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज)

हे जिनेन्द्र! स्वर्गावतरण-तव, हुआ जन्म अभिषेकोत्सव,
दीक्षाग्रहण समय उत्सव जो, केवलज्ञान प्रभा उत्सव।
गायन संग हुई जो पूजा, संस्तुतियाँ निर्वाणोत्सव,
उसी तरह हो मंगलकारी, मेरा सुप्रभात उत्सव॥1॥

देवगणों के मुकुट जहाँ पर, नत होते हों आनंदित,
खचित महामणि आभाओं से, चरण युगल हैं स्पर्शित।
कर्म विजेता हे नाभि सुत! अजितनाथ! संभव भगवान् !
सुप्रभात हो मेरा हे जिन! करते सतत् आपका ध्यान॥2॥

तीन छत्र मस्तक पर शोभित, ढुरते हुये चँवर गतिमान,
हे देवाधिदेव अभिनंदन-मुनि! हे सुमतिनाथ भगवान्!।
हे पद्मप्रभु जिन! तव तन द्युति, पद्मराग मणि प्रभा समान,
सुप्रभात हो मेरा हे जिन! करते सतत् आपका ध्यान॥3॥

कदलीदल सम देहवर्ण शुभ, हे सुपार्श्व! अर्हन भगवान्,
रजतगिरि हिमगिरि सित मुक्ता-सम हे चंदप्रभु भगवान्।
पुष्पदंतजिन! धवल विमल शुचि, शुद्ध स्फटिकमणी समान।
सुप्रभात हो मेरा हे जिन! करते सतत् आपका ध्यान॥4॥

हे शीतल जिन! शोभित तव तन, तपे स्वर्ण की कांति समान,
पापरूप वसुकर्म पंकमल-नाशे हे श्रेयांश भगवान्!
लाल-लाल बंधूक पुष्प सम, तव तन वासुपूज्य भगवान्!
सुप्रभात हो मेरा हे जिन! करते सतत् आपका ध्यान॥5॥

उद्धत कामबली जेता हे विमल! अमल तनधारी आप,
हे अनंत जिन! नंत सुखार्णव, महाधैर्य का प्रखर प्रताप।
दुर्धर कर्म कलुष से विरहित, धर्मनाथ जिनवर भगवान्,
सुप्रभात हो मेरा हे जिन! करते सतत् आपका ध्यान॥6॥

शांतिनाथ हे शांति प्रदाता, शोभित अमरी पुष्प समान,
कुन्थुनाथ जिन! अहा विभूषित दयारूप निजगुण सुखखान।
तीर्थनाथ देवाधिदेव तारो हे अरहनाथ भगवान्।
सुप्रभात हो मेरा हे जिन! करते सतत् आपका ध्यान॥7॥

मोहमल्ल के मदभंजक हे मदन विजेता मल्लिनाथ,
शिवकारी सत्शासनधारी ऐसे हे मुनिसुव्रतनाथ।
परमशांतमय सत्य संपदा धारक नमिनाथ भगवान्,
सुप्रभात हो मेरा हे जिन! करते सतत् आपका ध्यान॥8॥

उज्ज्वल कांति तमाल वृक्ष सम शोभित नेमिनाथ भगवान्,
जीत लिये उपसर्ग भयंकर, क्षमामूर्ति हे पार्श्व महान।
स्याद्वाद सिद्धान्तमणी को वर्द्धमान आदर्श समान,
सुप्रभात हो मेरा हे जिन! करते सतत् आपका ध्यान॥9॥

श्वेत, नील अरु हरित, लाल वा पीतवर्ण से शोभित तन,
जो अविनाशी शिवसुखवासी जिनका ध्यान करें मुनिजन।
ढाई द्वीप के तीर्थ प्रवर्तक, सत्तर एक शतक भगवान्,
सुप्रभात हो मेरा हे जिन! करते सतत् आपका ध्यान॥10॥

तीर्थङ्कर चौबीस का, प्रतिदिन प्रातः ध्यान।
सुप्रभात नक्षत्र शुभ, मंगल कहा महान॥11॥

देव सिद्ध मुनिसंघ का, प्रतिदिन प्रातः ध्यान।
सुप्रभात नक्षत्र शुभ, श्रेय रूप सुखखान॥12॥

किया प्रवर्तन तीर्थ का, भविजन को सुखथान।
उन महान वृषभेष का प्रातः उत्तम ध्यान॥13॥

नित्योदित रवि ज्ञान से, मिटा तिमिर अज्ञान।
अहा! खुले नयनांध कर सुप्रभात जिन ध्यान॥14॥

किया कर्मवन दग्ध पा-तैजस शुक्लध्यान।
कमल नयन जिन वीर का, सुप्रभात शुभध्यान॥15॥

है जिनेन्द्र शासन अहा! तीन लोक हितभूप।
सुप्रभात नक्षत्र शुभ, शिवं सुमंगल रूप॥16॥

(इतिश्री सुप्रभात स्तोत्र)

गुरु सेवा क्यों?

गुरुसेवा विधातव्या मनोवांछित सिद्धये।
संशयध्वान्तनाशार्थ मिहामुत्र सुखाय च।।

अर्थ—मनोवांछित कार्य की सिद्धि के लिये, संशयरुपी अन्धकारी को नष्ट करने के लिये तथा इहलौकिक और परलौकिक सुख के लिये गुरु की सेवा करनी चाहिए।

श्री महावीराष्टक स्तोत्र

(शिखरिणी)

यदीये चैतन्ये मुकुर इव भावाश्चिदचितः,
समं भांति ध्रौव्य-व्यय-जनि-लसंतोऽन्तरहिताः।
जगत्साक्षी मार्ग-प्रकटन परो भानुरिव यो,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥1॥

अताम्रं यच्चक्षुः कमल-युगलं स्पंद-रहितं,
जनान्कोपापायं प्रकटयति वाभ्यन्तरमपि।
स्फुटं मूर्तिर्यस्य प्रशमित-मयी वाति-विमला,
महावीरस्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥2॥

नमन्नाकेन्द्राली मुकुट-मणि-भाजाल-जटिलं,
लसत्पादाम्भोज-द्वयमिह यदीयं तनुभृतां।
भवज्ज्वाला-शान्त्यै प्रभवति जलं वा स्मृतमपि,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥3॥

यदर्चा-भावेन प्रमुदित-मना दर्दुर इह,
क्षणादासीत्स्वर्गी गुणगण-समृद्धः सुखनिधिः।
लभन्ते सद्भक्ताः शिवसुख-समाजं किमु तदा,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥4॥

कनत्स्वर्णाभासोऽप्यपगत-तनुर्ज्ञान-निवहो,
विचित्रात्माप्येको नृपति-वर-सिद्धार्थ तनयः।
अजन्मापि श्रीमान् विगत-भव-रागोद्भुत-गतिः,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥5॥

यदीया वाग्गङ्गा विविध-नय-कल्लोल-विमला,
वृहज्ज्ञानांभोभि-र्जगति जनतां या स्नपयति।

इदानी-मप्येषा बुधजन-मरालैः परिचिता,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥6॥

अनिर्वा-रोद्रेकस्-त्रिभुवनजयी काम-सुभटः,
कुमारावस्थाया-मपि निज-बलाद्येन विजितः।
स्फुरन्-नित्यानन्द प्रशम-पद राज्याय स जिनो,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥7॥

महामोहातंक-प्रशमन-पराकस्मिक-भिषङ्,
निरापेक्षो बन्धु-र्विदित-महिमा मङ्गलकरः।
शरण्यः साधूनां भव-भयभृता-मुत्तमगुणो,
महावीर स्वामी नयनपथगामी भवतु मे (नः) ॥8॥

महावीराष्टकं स्तोत्रं भक्त्या भागेन्दुना कृतं।
यः पठेच्छृणु-याच्चापि स याति परमां गतिम्॥

श्री महावीराष्टक स्तोत्र

(पद्यानुवाद-आचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज)

व्यय - उत्पाद - ध्रौव्यमय सब ही भाव चराचर अन्तरहित,
दर्पण सम चैतन्यज्ञान में होते युगपत् प्रतिबिम्बित।
जगप्रत्यक्षी मोक्षमार्ग को प्रगट कर रहे सूर्य समान,
मेरे लिये नयनपथगामी होवें महावीर भगवान्॥1॥

दोनों नयन कमल जिनके निस्पंद लालिमाहीन अहा!,
अंतर-बाहर क्रोध न कणभर जन-जन को यह प्रगट किया।
परमशान्तिमय मूरत जिनकी है अति-निर्मल आभावान,
मेरे लिये नयनपथगामी होवें महावीर भगवान्॥2॥

वन्दन करते देवगणों के मुकुटमणि झिलमिल-झिलमिल,
आभा से हो उठे सुशोभित, कांतिमान तव चरण-कमल।

भवज्वाला के शमन हेतु जग-जन को जल-सम जिनका ध्यान,
मेरे लिये नयनपथगामी होवें महावीर भगवान्॥3॥
जब अर्चा के भाव संजो शुभ प्रमुदितमन मेंढक इह-लोक,
अणिमा-महिमा गुण युत सुखनिधि, पा सकता क्षण में दिविलोक।
तव सद्भक्त मोक्षसुख पावें इसमें क्या आश्चर्य महान्?
मेरे लिये नयनपथगामी होवें महावीर भगवान्॥4॥
स्वर्णाभा सी दीप्ति देह फिर भी विदेह हे ज्ञान निकर,
आत्मनैक पर एक जन्मगत हो सुत सिद्धारथ नृपवर।
कहलाते भव-राग-विगत प्रभु हो, बहिरंग लक्ष्मीवान्,
मेरे लिए नयनपथगामी होवें महावीर भगवान्॥5॥
जिनके शुभ वचनों की गंगा नाना नय कल्लोल विमल,
विपुलज्ञान जल से जग जन का जो करती अभिषेक अमल।
परिचित हैं बुधजन हंसों से संप्रति में यह गंग महान,
मेरे लिये नयनपथगामी होवें महावीर भगवान्॥6॥
मदन महाभट चंडवेग युत् दुर्निवार त्रयलोकजयी,
निजबल से कौमार-दशा में जीता हुये काम-विजयी।
नित्यानन्द-स्वभावी शिवपद राज प्राप्ति का ध्येय महान,
मेरे लिए नयनपथगामी होवें महावीर भगवान्॥7॥
मोह रोग प्रशमन करने हो वैद्य अकारण नित तत्पर,
हे निरपेक्ष! परम बन्धु! हे विदित महिम! हे मंगलकर!
भवभीरु साधकजन को शुभ शरण आप उत्तम गुणवान्,
मेरे लिये नयनपथगामी होवें महावीर भगवान्॥8॥

महावीर भगवान् का आठपद्य गुणगान,
पढ़े सुने जो भाव से वह पाता शिवथान।
''भागचन्द्र'' द्वारा रचित भक्ति भाव प्रधान,
है ''विमर्श'' अंतिम यही मिट जाये अज्ञान॥9॥

(इति श्री महावीराष्टक स्तोत्र)

लघु स्वयंभू स्तोत्र

येन स्वयंबोध मयेन लोका, आश्वासिताः केचन वित्तकार्ये।
प्रबोधिताः केचन मोक्ष-मार्गे, तमादिनाथं प्रणमामि नित्यम्॥1॥

इन्द्रादिभिः क्षीरसमुद्र-तोयैः संस्नापितौ मेरुगिरौ जिनेन्द्रः।
यः कामजेता जन-सौख्यकारी, तंशुद्ध-भावा-दजितंनमामि॥2॥

ध्यान-प्रबन्धः प्रभवेन येन, निहत्यकर्म-प्रकृतिःसमस्ताः।
मुक्ति-स्वरूपां पदवीं प्रपेदे, तं संभवं नौमि महानुरागात्॥3॥

स्वप्ने यदीया जननी क्षपायां, गजादि वह्न्यन्तमिदं ददर्श।
यत्तात इत्याह गुरुः परोऽयं, नौमि प्रमोदा-दभिनंदनं तम्॥4॥

कुवादिवादं जयता महान्तं, नय प्रमाणै-र्वचनै-र्जगत्सु।
जैनं मतं विस्तरितं च येन, तं देवदेवं सुमतिं नमामि॥5॥

यस्यावतारे सति पितृधिष्ण्ये, ववर्षरत्नानि हरे-र्निदेशात्।
धनाधिपः षण्णव-मास पूर्वं, पद्मप्रभं तं प्रणमामि साधुम्॥6॥

नरेन्द्र-सर्पेश्वर नाक-नाथैर्-वाणी भवन्ती जगृहे स्वचित्ते।
यस्यात्म-बोधः प्रथितः सभाया-महंसुपार्श्वं ननु तं नमामि॥7॥

सत्प्रातिहार्यातिशय प्रपन्नो, गुण-प्रवीणोहत-दोषसंगः।
योलोक-मोहांध-तमः प्रदीपश्, चंदप्रभंतंप्रणमामिभावात्॥8॥

गुप्तित्रयं पंच महाव्रतानि, पंचोपदिष्टाः समितिश्च येन।
बभाण यो द्वादशधा तपांसि, तं पुष्पदं तं प्रणमामि देवम्॥9॥

ब्रह्मा-व्रतांतो जिन नायकेनोत्-तम क्षमादि-र्दशधापिधर्मः।
येन प्रयुक्तो व्रत-बंध-बुद्धया, तं शीतलं तीर्थकरं नमामि॥10॥

गणे जनानंदकरे धरान्ते, विध्वस्त-कोपे प्रशमैक-चित्ते।
योद्वादशांगं श्रुतमादि-देश, श्रेयांसमानौमि जिनं तमीशम्॥11॥

मुक्त्यंगनाया रचिता विशाला, रत्नत्रयी-शेखरता च येन।
यत्कंठ-मासाद्य बभूव श्रेष्ठा, तंवासुपूज्यं प्रणमामि वेगात्॥12॥

ज्ञानी विवेकी परम-स्वरूपी, ध्यानी व्रती प्राणि-हितोपदेशी।
मिथ्यात्व-घाती शिवसौख्य भोजी बभूव यस्तं विमलं नमामि॥13॥

आभ्यंतरं बाह्य-मनेकधा-यः, परिग्रहं सर्व-मपाचकार।
यो मार्ग-मुद्दिश्य हितं जनानां, वंदे जिनं तं प्रणमाम्यनंतम्॥14॥

सार्द्धं पदार्था नव सप्ततत्त्वैः, पंचास्तिकायाश्च न कालकायाः।
षड्द्रव्यनिर्णीति-रलोकयुक्तिर, येनोदिता तं प्रणमामि धर्मम्॥15॥

यश्चक्रवर्ती भुवि पञ्चमोऽभूच्, छ्री नंदनोद्वादशकोगुणानाम्।
निधिप्रभुः षोडशको जिनेन्द्रस्, तं शांतिनाथं प्रणमामि भेदात्॥16॥

प्रशंसितो यो न बिभर्ति हर्षं, विराधितो यो न करोति रोषं।
शीलं-व्रताद्ब्रह्मपदंगतो यस्, तं कुंथुनाथं प्रणमामि हर्षात्॥17॥

न संस्तुतो न प्रणतः सभायां, यः सेवितोऽन्तर्गण-पूरणाय।
पदच्युतैः केवलिभि र्जिनस्य, देवाधिदेवं प्रणमाम्यरं तम्॥18॥

रत्नत्रयं पूर्व-भवान्तरे यो, व्रतं पवित्रं कृतवा-नशेषम्
कायेन वाचा मनसा विशुद्ध्या, तं मल्लिनाथं प्रणमामि भक्त्या॥19॥

ब्रुवन्नमः सिद्ध-पदायवाक्य-मित्यग्रहीद्यः स्वयमेव लोचम्।
लौकान्तिकेभ्यः स्तवनं निशम्य, वंदे जिनेशं मुनिसुव्रतं तम्॥20॥

विद्यावते तीर्थकराय तस्मा-याहार दानं ददतो विशेषात्।
गृहे नृपस्या-जनिरत्नवृष्टिः, स्तौमि प्रमाणान्-नयतो नमिंतम्॥21॥

राजीमतीं यः प्रविहाय मोक्षे, स्थितिं चकारा-पुनरागमाय।
सर्वेषु जीवेषु दया दधानस्, तं नेमिनाथं प्रणमामि भक्त्या॥22॥

सर्पाधिराजः कमठारितो-यैर्, ध्यान स्थितस्यैव फणावितानैः।
यस्योपसर्गं निरवर्त-यत्तं, नमामि पार्श्वं महतादरेण॥23॥

भवार्णवे जन्तु-समूहमेन-माकर्षयामास-हि-धर्म-पोतात्।
मज्जन्त-मुद्वीक्ष्य य एनसापि-श्रीवर्द्धमानं प्रणमाम्यहं तं॥24॥

यो धर्मं दशधा करोति पुरुषः स्त्री वा कृतोपस्कृतं,
सर्वज्ञ-ध्वनि-संभवं त्रिकरण-व्यापार-शुद्ध्यानिशम्।
भव्यानां जयमालया विमलया पुष्पांजलिं दापयन्,
नित्यं स श्रियमातनोति सकलं स्वर्गापवर्ग-स्थितिम्॥25॥

(इति श्री लघु स्वयंभू स्तोत्र)

लघु स्वयंभू स्तोत्र

(पद्यानुवाद-आचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज)

स्वयंबुद्ध जो स्वयंबोध से मार्ग बताया जीवन का।
हर्षित हुये सभी जन-मन जो मिला ज्ञान धन-अर्जन का॥
दिया भविकजन को शिवकारी मोक्षमार्ग का संबोधन।
आदि विधाता! आदिनाथ के चरण युगल में नित्य नमन॥1॥

हर्षित इन्द्र क्षीर सागर से प्रासुक सुरभित जल लाया।
मेरुगिरि पर हे जिनेन्द्र! अभिषेक किया अति हर्षाया॥
मोहजयी! हे मदनजयी! जग जन को सुखकारी तव नाम।
अजितनाथ! अर्जित अघनासन शुद्धभाव से करूँ प्रणाम॥2॥

शुक्लध्यान में लीन हुये प्रभु उपजा महा अचिन्त्य प्रभाव।
बँधे हुये सब घाति-अघाति-कर्मद्रव्य का हुआ अभाव॥
महा मोक्षपद पानेवाले हरो विपद मम संभवनाथ।
तव पद-पंकज का अनुरागी सदा झुकाऊँ अपना माथ॥3॥

भूमण्डल पर उस रजनी का पिछला पहर महान हुआ।
माता को जब शुभ-शुभ सोलह स्वप्नों का आह्वान हुआ॥
पितु ने परमगुरु होगा यह शुभफल-स्वप्न महान् कहा।

अभिनंदन जिन! का अभिवंदन हर्षभाव से करूँ सदा ॥4॥

जीत लिये सब महाधुरन्धर कुमतवादियों के कुविवाद।
नय-प्रमाण वचनों के द्वारा स्याद्वाद का गूँजा नाद॥
बतलाया माहात्म्य विश्व को जैनधर्म का दे उपहार।
सुमतिनाथ जिन! हमें सुमति दो करता नित नत हो नवकार ॥5॥

जब सौधर्म इन्द्र ने जाना अवधिज्ञान से प्रभु अवतार।
धनपति को आदेश दिया बढ़ सात कदम कीना स्वीकार॥
पन्द्रह मास रतन की वर्षा पितु के अँगना हुई अपार।
पद्मप्रभ! तव पाद पद्म का भ्रमर बना करता नवकार ॥6॥

जिनकी हितकर दिव्यध्वनि सुन अहो! इन्द्र, धरणेन्द्र, नरेन्द्र।
अपने हृदय करें नित धारण प्रभु सम हम भी बनें जितेन्द्र॥
द्वादशसभा मध्य में जिनका हुआ प्रकाशित आतम ज्ञान।
नाच रहा मन मोर चरण में वंदन हे सुपार्श्व भगवान् ॥7॥

सुन्दर-सुन्दर प्रातिहार्य वसु जो अतिशय को प्राप्त अहा।
अठदस दोष कोष नश प्रभुजी सुगुण छियालीस प्राप्त महा॥
सदा प्रकाशित ज्ञानदीप से मोहमहातम किया विनाश।
चाहूँ चारु चरण चंद्रप्रभ! शुचि भावों से प्रणत सुदास ॥8॥

पाँच-महाव्रत समिति गुप्तित्रय दिया सभा में प्रभु उपदेश।
भवसागर में भ्रमने वाले भविजन का मिट गया कलेश॥
संवर सहित निर्जरा मंगल द्वादश विध तप किया प्रकाश।
पुष्पदंत पद पुष्प अर्चता पाने निज चैतन्य विलास ॥9॥

उत्तम-क्षमा-मार्दव-आर्जव-शौच-सत्य-संयम-तपधर्म।
त्याग-अकिंचन-ब्रह्मचर्य-दस-विध धर्मों का जाना मर्म॥
व्रत बंधन स्वीकार बुद्धि से मोक्ष मार्ग के नायक आप।
खुली स्वर्णबेड़ी शीतलजिन! चरण नमूँ मेटूँ भव-ताप ॥10॥

मंगलकारी चार-संघ वा जग जन को इस वसुधा पर।
नाश दिया है क्रोध सदा ही शान्तचित्त हो हे प्रभुवर॥
दिव्यदेशना के विधान से द्वादशांग-श्रुत का उपदेश।
चरण नमूँ निश्रेयस् पाने हे श्रेयांस जिन! हे अखिलेश !॥11॥

मुक्ति अंगना वरण हेतु जो रचा प्रभु ने बड़ा विशाल।
रत्नत्रय का मुकुट मनोहर सदा सुशोभित गुण मणिमाल॥
कण्ठालिंगन पाया जिसने धन्य-धन्य वह मुक्ति रमा।
वासुपूज्य जिन! चरण पूजता वंदन सिर को नमा-नमा॥12॥

परमध्यान-व्रतधारी होकर, भवि को हित उपदेश दिया।
हे ज्ञानी! परमात्म-स्वरूपी मिथ्यातम उच्छेद किया॥
इन्द्रिय सुख है सुखाभास यह जाना शिवसुख पाया आप।
विमलनाथ! तव चरण नमूँ नित मिट जाये मम भव-संताप॥13॥

दूर किया है सर्व परिग्रह बाह्याभ्यन्तर विविध प्रकार।
मूर्च्छाभाव तिरोहित करके हे प्रभु! आप हुये अविकार।
भविजन कोहित-मार्ग दिखाया पाया मुक्ति-महल महान।
हे अनंत जिन! चरण नमूँ नित पाऊँ सदानन्त-सुखज्ञान॥14॥

सात-तत्व छह-द्रव्य प्रकाशे नव पदार्थ पन-अस्तिकाय।
युक्ति से निर्णीत किये हैं काल-द्रव्य को कहा अकाय॥
स्वयंबोध से किया प्रकाशित लोकाकाश-अलोकाकाश।
धर्मनाथ! नित चरण नमूँ तव पाने धर्म-सुरभि अविनाश॥15॥

जीत लिया षट्खण्ड हुआ तब पंचम-चक्रवर्ति उद्घोष।
नव-निधियाँ चौदह-रत्नों के स्वामी आप महागुण-कोष॥
द्वादश-कामदेव मनहारी सोलहवें तीर्थेश महान।
शांतिनाथ जिन! चरण नमूँ नित पाऊँ शाश्वत शांति निधान॥16॥

हर्षित होते कभी नहीं जो संस्तुति से गुणगानों से।

क्रोध-भाव छू सका ना कभी निन्दादि अपमानों से॥
उत्तम-शील-व्रतों को ध्याकर परमब्रह्म-पद को पाया।
कुंथुनाथ तव चरण-वंदना-कर मेरा मन हर्षाया॥17॥

समवशरण में हुये विराजित जो सामान्य-केवली-जिन।
संस्तुत वंदित हुये कभी ना उनके द्वारा हे स्वामिन्॥
अन्तर्गण की पूर्ति हेतु है जो सेवित आदर को प्राप्त।
अरहनाथ! तव चरण नमूँ नित पाने निज पद तुम सम आप्त!॥18॥

पूरब-भव में रत्नत्रय-व्रत की शुचिता का पा आलोक।
मन वच काय विशुद्धि से निज में निज आतम लिया विलोक॥
पावन पूर्ण-ब्रह्मव्रत जिनने इस भव में अवधार लिया।
मोहमल्ल मद दलन हेतु नुति मल्लिनाथ! तव चरण हिया॥19॥

महाभाग हो हे स्वामिन्! जो हुये स्वयं ही वैरागी।
ब्रह्मर्षि देवों ने आकर संस्तुति की अतिशयकारी॥
नमः सिद्ध कह स्वयं लोंचकर धार लिये मुनिपद के व्रत।
नित नत हो नुति करता हूँ तव चरणों की हे मुनिसुव्रत !॥20॥

विद्यावन्त तीर्थ के कर्ता अहोभाग प्रभु लिया निहार।
पुलकित तन-मन विधि पड़गाहन भक्तिभाव से दिया आहार॥
महाभाग नृपघर रत्नों की वर्षा पंचाश्चर्य महान।
नमिनाथ जिनवर की करता नय-प्रमाण से संस्तुति-गान॥21॥

निबल-जीव बन्धन में देखे दयाभाव प्रगटा उर में।
हाय-हाय धिक् विषय-भोग तज राजुल रथ-मोड़ा गिरि में॥
हुई मुक्ति, जग में ना आना रहा प्रयोजन एक महान।
चरण नमूँ नित आन पधारो मम उर नेमिनाथ भगवान्॥22॥

पार्श्वनाथ जिन! धर्मध्यान औ शुक्लध्यान में थे लवलीन।
कमठ किया उपसर्ग भयानक महावृष्टि-वायु-अग्नि॥

दूर किया उपसर्ग प्रभु का फण मण्डप रचकर धरणेन्द्र।
शिवसुख पाऊँ बलि-बलि जाऊँ चरण शरण दो पार्श्व जिनेन्द्र ॥23॥

यह भवसिंधु महादुखकारी अघ का कारण कहें जिनेश।
देखा सब भवि जीवों को जो डूब रहे पा रहे कलेश॥
धर्मपोत का अवलम्बन दे खींच लिया है अपनी ओर।
वर्द्धमान जिन! चरण नमूँ द्वय देना भव सागर का छोर ॥24॥

श्री सर्वज्ञदेव कृत हितकर दिव्यदेशना उपकारी,
दसविध-धर्म त्रियोग सहित धारण करते जो नरनारी।
भविजन विमल गुणानुवाद से पुष्पांजलि नित करें प्रदान,
सकल स्वर्ग वा मोक्ष-लक्ष्मी करती आलिंगन नित मान॥

तीर्थंकर चौबीस का, रचा पद्य अनुवाद।
है ''विमर्श'' अंतिम यही मिले मुक्ति प्रासाद ॥25॥

(इति श्री लघु स्वयंभु स्तोत्र)

गोम्मटेस-थुदि

विसट्ट-कंदोट्ट-दलाणुयारं, सुलोयणं चंद-समाण-तुण्डं।
घोणाजियं चम्पय-पुप्फसोहं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥

अच्छाय-सच्छं जलकंत गंडं, आबाहु दोलंत सुकण्ण पासं।
गइंद-सुण्डुज्जल-बाहुदण्डं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥

सुकण्ठ-सोहा जियदिव्व संखं, हिमालयुद्दाम विसाल कंधं।
सुपेक्ख णिज्जायल सुट्ठुमज्झं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥

विंज्झाय लग्गे पविभासमाणं, सिहामणिं सव्व-सुचेदियाणं।
तिलोय-संतोसय-पुण्णचंदं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥

लया समक्कंत-महासरीरं, भव्वावली लद्ध सुकप्परूक्खं।
देविंदविंदच्चिय पायपोम्मं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥

दियंबरो जो ण च भीइ जुत्तो, ण चांबरे सत्तमणो विसुद्धो।
सप्पादि जंतुप्फुसदो ण कंपो, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥

आसां ण जो पोक्खदि सच्छदिट्ठि, सोक्खे ण बांछा हयदोसमूलं।
विराय भावं भरहे विसल्लं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥

उपाहि मुत्तं धण-धाम-वज्जियं, सुसम्मजुत्तं मय-मोहहारयं।
वस्सेय पज्जंतमुववास-जुत्तं, तं गोम्मटेसं पणमामि णिच्चं॥

(इति गोम्मटेस-थुदि)

श्री गोम्मटेस स्तुति

(पद्यानुवाद-आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज)

नीलकमल दल सम अति सुंदर सुखकर मनहर युगल-नयन।
विकसित पूर्ण शशांकबिम्ब सम जो अतिशय कमनीय वदन।
नम्र नासिका अहा! जीतती चंपक सुमनस छबि अभिराम।
गोम्मटेस तव युगल-चरण में नतमस्तक नित करूँ प्रणाम॥1॥

स्वच्छ विमल उज्ज्वल जल सम छबि वाले गोल-कपोल अहा!
नर्तन करते कर्णपाश जिनके विशाल कन्धों पर आ।
गज सुण्डा सम बाहुदण्ड द्वय शोभित अति नभसम शुचि-धाम।
गोम्मटेस तव युगल-चरण में नतमस्तक नित करूँ प्रणाम॥2॥

दिव्य शंख की महासौम्य छबि जीत रही ग्रीवा कमनीय।
निश्चल अचल मेरु सम जिनका मध्यभाग जो अतिरमणीय।
हिमगिरि सा उन्नत विस्तृत तव बाहुशिरस् अनुपम अभिराम।
गोम्मटेस तव युगल-चरण में नतमस्तक नित करूँ प्रणाम॥3॥

विंध्याचल के अग्र-शिखर पर तप से सदा प्रकाशित आप।
सब शुद्धात्म मुमुक्षुजन के शिखामणि हे प्रखर-प्रताप।

त्रिभुवन को आनंद प्रदाता पूर्ण चाँद सम हे गुणधाम।
गोम्मटेस तव युगल-चरण में नतमस्तक नित करुँ प्रणाम॥4॥

लिपट गईं माधवी लतायें नख-शिख तक तव तन सुविशाल।
भविजन को तिहुँलोकों में समकल्पवृक्ष हे जिन! तवख्याल।
महाऋद्धियुत् देवगणों से अर्चित हैं द्वय-चरण ललाम।
गोम्मटेस तव युगल-चरण में नतमस्तक! नित करुँ प्रणाम॥5॥

अहा! दिगम्बर रूप आपका मनभावन भय से निष्क्रान्त।
अम्बरादि में अनासक्त मन, हे विशुद्ध! निश्चय से शांत।
महाभयंकर विषधर से पर्शित फिर भी निष्कम्प महान।
गोम्मटेस तव युगल-चरण में नतमस्तक नित करुँ प्रणाम॥6॥

आशा की अभिलाषा शोषित पोषित समदृष्टि सुवितान।
सर्वदोष के मूल मोह का नाश किया पाया निज ध्यान।
हे निष्कांक्ष! विरागभाव युत भरत भ्रात में शल्य विराम।
गोम्मटेस तव युगल-चरण में नतमस्तक नित करुँ प्रणाम॥7॥

जो उपाधि से पूर्ण रहित धन-कंचन सकल-संग से दूर।
जो समत्व से अहा! अलंकृत मोह-महामद जेता शूर।
एक वर्ष तक निराहार उपवास योग धारा अविराम।
गोम्मटेस तव युगल-चरण में नतमस्तक नित करुँ प्रणाम॥8॥

गोम्मटेस अष्टक् अहा! संस्तुतिमय गुणगान।
'नेमिचंद आचार्य' ने प्राकृत किया बखान॥1॥

गोम्मटेस थुति का किया, आठ पद्य अनुवाद।
गोम्मटेस की भक्ति से, उमड़ा जब आह्लाद॥2॥

गोम्मटेस अष्टक अहा, देता नित आनन्द।
एक यही शुभ भावना, मेंट सकूँ भव फन्द॥3॥

गोम्मटेस तव चरण में, नित नुति करूँ प्रणाम।
है "विमर्श" अंतिम यही, प्राप्त करूँ शिवधाम॥4॥
(इतिश्री गोम्मटेस स्तुति)

बाहुबली स्तुति

(रचयिता–सूरिगच्छाचार्य श्री विरागसागर जी महाराज)

दीर्घ भाल तव भला रहा, भाग्यवान को बता रहा।
सोच रखो तुम नित ऊँची, तब ऊँचाई मिले समूची।।1।।
दो नय सम तव लोचन हैं, नित मिथ्यात्व विमोचन हैं।
सम्यग्दर्शन हेतु बनें, सम्यग्पथ के सेतु बनें।।2।।
नयन मध्य तव घ्राण रही, घृणा तजो यह बता रही।
घृणा, घृणा की जननी है, घृणा, घृणा को जनती है।।3।।
दीर्घ श्रोतृ तव हैं प्यारे, श्रवण करो रव अघ हारे।
दुःश्रुति का तुम त्याग करो, मनः मलिनता हेतु तजो।।4।।
मुख मण्डल तव सुंदर है, सहज शांति का मंदिर है।
कहता मनस प्रसन्न रखो, हर्षित हो प्रभु भक्ति करो।।5।।
युगल-बाहुबल के धारी, भविजन के तुम हितकारी।
संयम बल ये देते हैं, हर संकट हर लेते हैं।।6।।
पाद युगल तव स्थिर जो, मोक्ष मार्ग पर स्थित वो।
भविजन के वे हिय बसते, हृदय भविक उसमें रमते।।7।।
पाद शरण आ लिपट चुकी, पा हस्तालम्ब उच्च हुई।
भक्ति से जो चरण नमे, मुक्ति पुरी के कांत बने।।8।।
बाहुबली तव चरणों में, 'विराग' हृदय मम अर्पण है।
दर्शन पा मन मुदित हुआ, सिरसा करता नमन सदा।।9।।

मनहर अघहर शांत छवि, गोमटेश भगवान।
बेलगोल में कर रहे, बारम्बार प्रणाम।।1।।

एक वर्ष से सहस्र तक, खड़े मिले हे नाथ।
बेलगोल गोमटेश के, चरणों में मम माथ।।2।।
नूर बढ़ा बेनूर है, अतिशय क्षेत्र महान।
विनय सहित मम है नमन, बाहुबली भगवान।।3।।
भक्ति करो लायक बनो, कहे कारकल धाम।
बाहुबली भगवान को, करूँ सहस्र प्रणाम।।4।।
हर स्थल नहीं धर्म के, धर्मस्थल है थान।
बाहुबली भगवान को, करूँ विनम्र प्रणाम।।5।।
नाग खड़े आशीष पा, रत्नत्रय के फूल।
गोम्मटगिरि बाहुबली, तुम्हें नमन अनुकूल।।6।।
गोल-मटोल श्याम वर्ण, लघु काय प्रभु आप।
मेलचित्तामूर के बाहुबली, नमन हरे संताप।।7।।

पञ्च महागुरु भक्ति

(प्राकृत)

मणुय - णाइंद - सुर - धरिय - छत्तत्तया,
पंचकल्लाण - सोक्खावली पत्तया।
दंसणं णाण झाणं अणंतं बलं,
ते जिणा दिंतु अम्हं वरं मंगलं॥1॥

जेहिं झाणग्गि - बाणेहिं अइ - थड्ढयं,
जम्म - जर - मरण - णयरत्तयं दड्ढयं।
जेहिं पत्तं सिवं सासयं ठाणयं,
ते महं दिंतु सिद्धा वरं णाणयं॥2॥

पंच-आचार पंचग्गि संसाहया,
बारसंगाइ - सुअ - जलहि - अवगाहया।

मोक्ख - लच्छी महंती महंते सया,
सूरिणो दिंतु मोक्खं - गया - संगया ॥3॥

घोर संसार - भीमाडवी - काणणे,
तिक्ख-वियराल - णह-पाव-पंचाणणे।
णट्ठ-मग्गाण जीवाण पहदेसिया,
वंदिमो ते उवज्झाय अम्हे सया ॥4॥

उग्ग - तव - चरण - करणेहिं झीणं गया,
धम्म वर - झाण - सुक्केक्क - झाणं-गया।
णिब्भरं तव-सिरी-ए-समा-लिंगया,
साहवो ते महा-मोक्ख-पह-मग्गया ॥5॥

एण थोत्तेण जो पंचगुरु वंदए,
गुरुय - संसार - घण - वेल्लि सो छिंदए।
लहइ सो सिद्ध - सोक्खाइ बहु माणणं,
कुणइ कम्मिंधणं पुंज-पज्जालणं ॥6॥

अरुहा-सिद्धाइरिया-उवझाया-साहु पंचपरमेट्ठी।
एयाण-णमोयारा भवे भवे मम सुहं दिंतु ॥7॥

(अञ्चलिका)

इच्छामि भन्ते! पंचमहागुरु-भत्ति काउस्सग्गो कओ, तस्सालोचेउं, अट्ठ-महा-पाडिहेर-संजुत्ताणं अरहंताणं, अट्ठ-गुण संपण्णाणं उड्ढलोय मत्थयम्मि पइट्ठियाणं सिद्धाणं, अट्ठ-पवयणमउ-संजुत्ताणं आयरियाणं, आयारादि सुदणाणोवदेसयाणं उवज्झायाणं, ति-रयण-गुण-पालण-रयाणं सव्वसाहूणं सया, णिच्च कालं, अच्चेमि, पूजेमि, वंदामि, णमस्सामि, दुक्खक्खओ कम्मक्खओ, बोहिलाहो, सुगइगमणं, समाहिमरणं जिणगुण सम्पत्ति होउ मज्झं।

श्री पञ्चमहागुरु भक्ति

(पद्यानुवाद–आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज)

राजा सुर नागेन्द्र कराते धारण तीन छत्र जिनपर,
गर्भ-जन्म-तप-ज्ञान-मोक्षसुख-कल्याणक पाये जिनवर।
वे जिनेन्द्र हमको भी देवें, अचल अनंत ज्ञान-दर्शन,
अविनश्वर अनुपम अनंतबल मंगलमयी ध्यान अर्हन्॥1॥

प्रगट किया जिनने अतिदृढ़ हो ध्यानरूप अग्निमय बाण,
जला दिये हैं जन्म-जरा-मृत्यु तीनों ही नगर महान।
स्वयं हुआ है प्राप्त जिन्हें अविनाशी अनुपम मुक्ति थान,
देवें उत्तम बोध मुझे भी ऐसे सर्व सिद्ध भगवान्॥2॥

दर्शन-ज्ञान-चरित्र-वीर्य-तप पंचाचार अनल-नित साध,
अवगाहन करते हैं नित ही द्वादशांग श्रुतजलधि अगाध।
आशा की अभिलाषा तजकर पाया जिनने मुक्तिधाम,
मोक्ष लक्ष्मी देवें मुझको सूरि चरण में करूँ प्रणाम॥3॥

अतिशय भीषण दुःखमय सारा महाभयानक भवजंगल,
जहाँ दिखाते तीक्ष्ण नखों युत पाप सिंह बल टहल-टहल।
भव अटवी में भूल गये जो भव्य जीव पा लिये कुपथ,
वंदन उन श्री उपाध्याय को जिनने उन्हें दिखाया पथ॥4॥

क्षीण किया इस नश्वर तन को करके उग्र तपश्चर्या,
दुर्लभ उत्तम धर्मध्यान और शुक्लध्यान को प्राप्त किया।
रत्नत्रय में रमण करें जो तपो अंगना करे वरण,
मोक्षमार्ग दर्शायक होवें वंदनीय साधु भगवन्॥5॥

जो यह संस्तुति निशदिन पढ़कर करता पंचगुरु वंदन,
वह अनंत भव सघन-बेल का पलभर में करता छेदन।

जला डालता पुण्य-पापमय अष्टकर्म वन ईंधन को,
पाता मोक्ष महल सुख वह जो मान्य रहा उत्तम जन को ॥6॥

घाति-कर्म को नाश कर, पाया पद-अर्हन्त,
कर्म-अघाती नाशकर, हुये सिद्ध-भगवन्त।
पंचाचार छतीस-गुण, धरि आचार्य महान,
पठन और पाठन निरत, उपाध्याय भगवान॥
ज्ञान-ध्यान-तपलीन जो है भवजलधि जहाज,
सुर-नर-किन्नर से अहा! वंदित साधूराज।
ऐसे पञ्च महागुरु, इनको नित नवकार,
भव-भव में इनसे करूँ, मंगल की दरकार॥7॥

(अञ्चलिका)

पंचगुरु भक्ति का मैंने कायोत्सर्ग किया भगवन्।
उसके ही आलोचन की अब, इच्छा करता मेरा मन॥

अष्ट प्रातिहार्यों से मण्डित, परमदेव अर्हत् भगवन्।
ऊर्ध्वलोक के मुकुट विराजे अष्टगुणों के सिद्ध सदन॥

अष्ट महाप्रवचन माता से संयुत हे आचार्य परम्।
आचारादि-श्रुत-उपदेशक, उपाध्यायजी ज्ञान वरम्॥

रत्नत्रयगुण के पालन में तत्पर साधु सदा-सदा।
नित्यकाल करता हूँ अर्चा, पूजन-वंदन, नमन अहा॥

हे प्रभु! मेरे भव दुःखों का क्षय हो क्षय हो क्षय होवे।
हे प्रभु! मेरे सब कर्मों का क्षय हो क्षय हो क्षय होवे॥

हे प्रभु! मुझको बोधि लाभ हो, सदा सुगति में होय गमन।
हे प्रभु! पाऊँमरण समाधि, जिन गुण संपत्ति निजधन॥

पंच महागुरु के चरण, वंदन का उल्लास।
पंच महागुरु की शरण मिले यही अरदास॥1॥

पंच महागुरु भक्ति का, किया पद्य अनुवाद।
गुरु ''विराग'' आशीष से, हो न लेश अनवाद॥2॥
पंच महागुरु ही रहें, जीवन के आधार।
कर्म नशें यह भावना, यही शुद्ध सुविचार॥3॥

वीतराग स्तोत्र

शिवं शुद्ध बुद्धं परं विश्वनाथं, न देवो न बंधुर्न कर्मा न कर्ता।
न अङ्गं न सङ्गं न स्वेच्छा न कायं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥
न बन्धो न मोक्षो न रागादिदोषः, न योगं न भोगं न व्याधिर्न शोकं।
न कोपं न मानं न माया न लोभं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥
न हस्तौ न पादौ न घ्राणं न जिह्वा, न चक्षुर्न कर्णं न वक्त्रं न निद्रा।
न स्वामी न भृत्यः न देवो न मर्त्यः, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥
न जन्मं न मृत्युं न मोहं न चिंता, न क्षुद्रो न भीतो न कार्श्यं न तन्द्रा।
न स्वेदं न खेदं न वर्णं न मुद्रा, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥
त्रिदण्डे त्रिखण्डे हरे विश्वनाथं, हृषीकेश-विध्वस्त-कर्मादिजालम्।
न पुण्यं न पापं न चाक्षादि-गात्रं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥
न बालो न वृद्धो न तुच्छो न मूढो, न स्वेदं न भेदं न मूर्तिर्न स्नेहः।
न कृष्णं न शुक्लं न मोहं न तंद्रा, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥
न आद्यं न मध्यं न अन्तं न चान्या, न द्रव्यं न क्षेत्रं न कालो न भावः।
न शिष्यो गुरुर्नापि हीनं न दीनं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥
इदं ज्ञानरूपं स्वयं तत्त्ववेदी, न पूर्णं न शून्यं न चैत्यं-स्वरूपो।
न चान्यो न भिन्नं न परमार्थमेकं, चिदानन्दरूपं नमो वीतरागम्॥

आत्माराम-गुणाकरं गुणनिधिं, चैतन्यरत्नाकरं,
सर्वे भूतगतागते सुख-दुःखे, ज्ञाते त्वया सर्वगे।
त्रैलोक्याधिपते स्वयं स्वमनसा, ध्यायन्ति योगीश्वराः,
वन्दे तं हरिवंश हर्ष-हृदयं, श्रीमान् हृदाभ्युद्यताम्॥

(इति वीतराग-स्तोत्र)

परमानन्द स्तोत्र

परमानन्द संयुक्तं, निर्विकारं निरामयम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, निजदेहे व्यवस्थितम्॥1॥

अनन्तसुख - संपन्नं, ज्ञानामृत - पयोधरम्।
अनन्तवीर्य-सम्पन्नं दर्शनं परमात्मनः॥2॥

निर्विकारं निराबाधं, सर्वसंगविवर्जितम्।
परमानंद - सम्पन्नं, शुद्धचैतन्य - लक्षणम्॥3॥

उत्तमा स्वात्मचिंता स्यान्मोहचिंता च मध्यमा।
अधमा कामचिंतास्यात्, परचिंताऽधमाधमा॥4॥

निर्विकल्प समुत्पन्नं, ज्ञानमेव सुधारसम्।
विवेकमंजुलिं कृत्वा, तत्पिबंति तपस्विनः॥5॥

सदानन्दमयं जीवं, यो जानाति स पण्डितः।
स सेवते निजात्मानं, परमानन्दकारणम्॥6॥

नलिन्यां च यथा नीरं, भिन्नं तिष्ठति सर्वदा।
अयमात्मा स्वभावेन, देहे तिष्ठति निर्मलः॥7॥

द्रव्यकर्म-मलैर्मुक्तं भावकर्म-विवर्जितम्।
नोकर्मरहितं विद्धि निश्चयेन चिदात्मनः॥8॥

आनन्दं ब्रह्मणोरूपं, निज देहे व्यवस्थितम्।
ध्यानहीना न पश्यन्ति, जात्यन्धा इव भास्करम्॥9॥

तद्धयानं क्रियते भव्यै र्मनो-येन विलीयते।
तत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, चिच्चमत्कारलक्षणम्॥10॥

ये ध्यानशीला मुनयः प्रधानास्ते दुःखहीना नियमाद्भवन्ति।
सम्प्राप्यशीघ्रं परमात्मतत्त्वम्, व्रजन्ति मोक्षं क्षणमेकमेव॥11॥

आनंदरूपं परमात्मतत्त्वं, समस्त संकल्प विकल्प मुक्तं।
स्वभावलीना निवसंति नित्यं, जानाति योगी स्वयमेवतत्त्वम्॥12॥

परमात्मस्वरूप-स्तोत्र

चिदानंदमयं शुद्धं, निराकारं निरामयं।
अनंतसुख-सम्पन्नं सर्वसङ्ग-विवर्जितम्॥13॥
लोकमात्रप्रमाणोऽयं, निश्चये न हि संशयः।
व्यवहारे तनूमात्रः कथितः परमेश्वरैः॥14॥
यत्क्षणं दृश्यते शुद्धं, तत्क्षणं-गतविभ्रमः।
स्वस्थचित्तः स्थिरीभूत्वा, निर्विकल्पसमाधितः॥15॥
स एव परमं ब्रह्म, स एव जिनपुङ्गवः।
स एव परमं तत्त्वं, स एव परमो गुरुः॥16॥
स एव परमं ज्योतिः, स एव परमं तपः।
स एव परमं ध्यानं, स एव परमात्मकः॥17॥
स एव सर्व कल्याणं, स एव सुखभाजनं।
स एव शुद्ध चिद्रूपं, स एव परमं शिवः॥18॥
स एव परमानन्दः, स एव सुखदायकः।
स एव परमज्ञानं, स एव गुणसागरः॥19॥
परमाह्लादसम्पन्नं, रागद्वेष विवर्जितम्।
सोऽहं तं देहमध्येषु यो जानाति स पण्डितः॥20॥
आकार रहितं शुद्धं, स्वस्वरूपे व्यवस्थितम्।
सिद्धमष्टगुणोपेतं, निर्विकारं निरंजनम्॥21॥
तत्सदृशं निजात्मानं, प्रकाशाय महीयसे।
सहजानन्दचैतन्य, यो जानाति स पंडितः॥22॥
पाषाणेषु यथा हेम, दुग्धमध्ये यथा घृतम्।
तिलमध्ये यथा तैलं, देहमध्ये तथा शिवः॥23॥
काष्ठमध्ये यथा वह्निः, शक्ति रूपेण तिष्ठति।
अयमात्मा शरीरेषु, यो जानाति स पंडितः॥24॥

भक्तामर स्तोत्र

भक्तामर-प्रणत-मौलि-मणि-प्रभाणा-
मुद्योतकं दलित-पाप-तमो वितानम्।
सम्यक् प्रणम्य जिन-पाद-युगं युगादा-
वालम्बनं भव जले पततां जनानाम्॥1॥

य: संस्तुत: सकल-वाङ्मय-तत्त्व-बोधा-
दुद्भूत-बुद्धि-पटुभि: सुर-लोक-नाथै:।
स्तोत्रै-र्जगत्त्रितय-चित्त-हरैरुदारै:
स्तोष्ये किलाहमपि तं प्रथमं जिनेन्द्रम्॥2॥

बुद्ध्या विनापि विबुधार्चित पाद-पीठ!
स्तोतुं समुद्यत-मतिर्विगत-त्रपोऽहं।
बालं विहाय जल-संस्थित मिन्दु बिम्ब-
मन्य: क इच्छति जन: सहसा ग्रहीतुम्॥3॥

वक्तुं गुणान् गुण-समुद्र! शशांक कान्तान्,
कस्ते क्षम: सुर-गुरु-प्रतिमोऽपि बुद्ध्या।
कल्पान्त-काल-पवनोद्धत-नक्र-चक्रं,
को वा तरीतुमल मम्बुनिधिं भुजाभ्याम्॥4॥

सोऽहं तथापि तव भक्ति-वशान्मुनीश!
कर्त्तुं स्तवं विगत-शक्तिरपि प्रवृत्त:।
प्रीत्यात्म-वीर्य-मविचार्य मृगी मृगेन्द्रम्,
नाभ्येति किं-निज-शिशो: परिपालनार्थम्॥5॥

अल्प-श्रुतं श्रुतवतां परिहास-धाम,
त्वद्भक्तिरेव मुखरी-कुरुते बलान्माम्।
यत्कोकिल: किल मधौ मधुरं विरौति,
तच्चाम्र-चारु-कलिका-निकरैक-हेतु:॥6॥

त्वत्संस्तवेन भव-संतति-सन्निबद्धं,
पापं क्षणात्-क्षयमुपैति शरीरभाजाम्।
आक्रान्त-लोकमलि-नीलमशेषमाशु,
सूर्यांशु-भिन्नमिव शार्वर-मंधकारम्॥7॥

मत्वेति नाथ तव संस्तवनं मयेद-
मारभ्यते तनु-धियापि तव प्रभावात्।
चेतो हरिष्यति सतां नलिनी-दलेषु,
मुक्ता-फल-द्युतिमुपैति ननूद-बिन्दुः॥8॥

आस्तां तव स्तवनमस्त-समस्त-दोषं,
त्वत्सङ्कथापि जगतां दुरितानि हंति।
दूरे सहस्र-किरणः कुरुते प्रभैव,
पद्माकरेषु जलजानि विकासभाञ्जि॥9॥

नात्यद्भुतं भुवन-भूषण! भूतनाथ!
भूतैर्गुणैर्भुवि भवन्तमभिष्टुवन्तः।
तुल्या भवन्ति भवतो ननु तेन किं वा,
भूत्याश्रितं य इह नात्मसमं करोति॥10॥

दृष्ट्वा भवन्तमनिमेष विलोकनीयं,
नान्यत्र तोषमुपयाति जनस्य चक्षुः।
पीत्वा पयः शशिकर-द्युति-दुग्ध-सिन्धोः,
क्षारं जलं जलनिधे-रसितुं क इच्छेत्॥11॥

यैः शान्त-राग-रुचिभिः परमाणुभिस्त्वं,
निर्मापितस्त्रि-भुवनैक-ललाम-भूत!
तावन्त एव खलु तेऽप्यणवः पृथिव्यां,
यत्ते समानमपरं न हि रूपमस्ति॥12॥

वक्त्रं क्व ते सुर-नरोरग-नेत्र-हारि,
निःशेष-निर्जित-जगत्त्रितयोपमानम्।

बिम्बं कलंक-मलिनं क्व निशाकरस्य,
यद्वासरे भवति पाण्डु-पलाशकल्पं ॥13॥

सम्पूर्ण-मण्डल-शशांक-कला-कलाप-
शुभ्रा गुणास्त्रिभुवनं तव लंघयन्ति।
ये संश्रितास्त्रि-जगदीश्वर-नाथमेकं,
कस्तान्निवारयति संचरतो यथेष्टम् ॥14॥

चित्रं किमत्र यदि ते त्रिदशांगनाभि-
र्नीतं मनागपि मनो न विकार-मार्गम्।
कल्पान्त-काल-मरुता-चलिता चलेन,
किंमन्दराद्रि-शिखरं चलितं कदाचित् ॥15॥

निर्धूम - वर्तिरपवर्जित - तैल - पूरः,
कृत्स्नं जगत्त्रयमिदं प्रकटीकरोषि।
गम्यो न जातु मरुतां चलिताचलानां,
दीपोऽपरस्त्वमसि नाथ! जगत्प्रकाशः ॥16॥

नास्तं कदाचि-दुपयासि न राहु गम्यः,
स्पष्टीकरोषि सहसा युगपज्जगन्ति।
नाम्भोधरोदर-निरुद्ध-महा-प्रभावः,
सूर्यातिशायि-महिमासि मुनीन्द्र! लोके ॥17॥

नित्योदयं दलित-मोह-महान्धकारं,
गम्यं न राहु-वदनस्य न वारिदानाम्।
विभ्राजते तव मुखाब्ज-मनल्पकान्ति,
विद्योतयज्जगदपूर्व-शशांक बिम्बम् ॥18॥

किं शर्वरीषु शशिनाह्नि विवस्वता वा?
युष्मन्मुखेन्दु-दलितेषु तमस्सु नाथ!
निष्पन्न-शालि-वन-शालिनि जीव-लोके,
कार्यं कियज्जलधरैर्जल-भार-नम्रैः ॥19॥

ज्ञानं यथा त्वयि विभाति कृतावकाशं,
नैवं तथा हरि-हरादिषु नायकेषु।
तेजो महामणिषु याति यथा महत्त्वं,
नैवं तु काच-शकले किरणाकुलेऽपि ॥20॥

मन्ये वरं हरिहरादय एव दृष्टा,
दृष्टेषु येषु हृदयं त्वयि तोषमेति।
किं वीक्षितेन भवता भुवि येन नान्यः,
कश्चिन्मनोहरति नाथ! भवान्तरेऽपि ॥21॥

स्त्रीणां शतानि शतशो जनयन्ति पुत्रान्,
नान्या सुतं त्वदुपमं जननी प्रसूता।
सर्वा दिशो दधति भानि सहस्ररश्मिं,
प्राच्येव दिग्जनयति स्फुरदंशु-जालम् ॥22॥

त्वामामनन्ति मुनयः परमं पुमांस-
मादित्य-वर्णममलं तमसः पुरस्तात्।
त्वा-मेव सम्यगुपलभ्य जयन्ति मृत्युं,
नान्यः शिवः शिव-पदस्य मुनीन्द्र! पंथाः ॥23॥

त्वामव्ययं विभुमचिन्त्यमसंख्यमाद्यं,
ब्रह्माण - मीश्वरमनंत - मनङ्गकेतुम्।
योगीश्वरं विदित - योगमनेकमेकं,
ज्ञानस्वरूपममलं प्रवदन्ति सन्तः ॥24॥

बुद्धस्त्वमेव विबुधार्चित-बुद्धि-बोधात्,
त्वं शङ्करोऽसि भुवन-त्रय-शङ्करत्वात्।
धाताऽसि धीर! शिव-मार्ग-विधेर्विधानाद्,
व्यक्तं त्वमेव भगवन् पुरुषोत्तमोऽसि ॥25॥

तुभ्यं नमस्त्रि-भुवनार्तिहराय नाथ!
तुभ्यं नमः क्षिति-तलामल-भूषणाय।

तुभ्यं नमस्त्रिजगतः परमेश्वराय,
तुभ्यं नमो जिन-भवोदधि-शोषणाय ॥26॥

को विस्मयोऽत्र यदि नाम गुणैरशेषैस्-
त्वं संश्रितो निरवकाशतया मुनीश!
दोषैरुपात्त-विविधाश्रय-जात-गर्वैः,
स्वप्नांतरेपि न कदाचिदपीक्षितोऽसि ॥27॥

उच्चैरशोक - तरु - संश्रितमुन्मयूख-
माभाति रूपममलं भवतो नितान्तम्।
स्पष्टोल्लसत्किरणमस्त-तमो-वितानं,
बिम्बं रवेरिव पयोधर-पार्श्ववर्ति ॥28॥

सिंहासने मणि-मयूख-शिखा-विचित्रे,
विभ्राजते तव वपुः कनकावदातम्।
बिम्बं वियद्विलसदंशु-लता-वितानं,
तुङ्गोदयाद्रि-शिरसीव-सहस्र-रश्मेः ॥29॥

कुन्दावदात-चल-चामर-चारु-शोभं,
विभ्राजते तव वपुः कलधौत-कान्तम्।
उद्यच्छशाङ्क-शुचि-निर्झरवारि-धार-
मुच्चैस्तटं सुरगिरेरिव शातकौम्भम् ॥30॥

छत्रत्रयं तव विभाति शशाङ्ककांत-
मुच्चैः स्थितं स्थगित-भानु-कर-प्रतापम्।
मुक्ता-फल-प्रकर-जाल-विवृद्ध-शोभं,
प्रख्यापयत्त्रिजगतः परमेश्वरत्वम् ॥31॥

गंभीर-तार-रव-पूरित-दिग्विभागस्-
त्रैलोक्य-लोक-शुभ-संगम-भूति दक्षः।
सद्धर्मराज-जय-घोषण घोषकः सन्,
खे दुन्दुभिर्ध्वनति ते यशसः प्रवादी ॥32॥

मंदार - सुन्दर - नमेरु - सुपारिजात-
संतानकादि-कुसुमोत्कर-वृष्टि-रुद्धा।
गंधोद - बिन्दु - शुभ - मन्द - मरुत्प्रपाता,
दिव्या दिवः पतति ते वचसां ततिर्वा ॥33॥

शुम्भत्प्रभा-वलय-भूरि-विभा विभोस्ते,
लोकत्रये द्युतिमतां द्युतिमाक्षिपन्ती।
प्रोद्यद्दिवाकर-निरन्तर-भूरि-संख्या,
दीप्त्याजयत्यपिनिशामपिसोम-सौम्याम् ॥34॥

स्वर्गापवर्ग-गम-मार्ग-विमार्गणेष्टः,
सद्धर्म-तत्त्व-कथनैक-पटुस्त्रिलोक्याः।
दिव्यध्वनिर्भवति ते विशदार्थ-सर्व-
भाषा-स्वभाव-परिणाम-गुणैः प्रयोज्यः ॥35॥

उन्निद्र - हेम - नव - पंकज - पुंज - कांति,
पर्युल्लसन्नख-मयूख-शिखाभिरामौ।
पादौ पदानि तव यत्र जिनेन्द्र! धत्तः,
पद्मानि तत्र विबुधाः परिकल्पयन्ति ॥36॥

इत्थं यथा तव विभूतिरभूज्जिनेन्द्र!
धर्मोपदेशन - विधौ न तथा परस्य।
यादृक्प्रभा दिनकृतः प्रहतान्धकारा,
तादृक् कुतो ग्रहगणस्य विकासिनोऽपि ॥37॥

श्च्योतन्मदाविल-विलोल-कपोल-मूल-
मत्त-भ्रमद-भ्रमर-नाद-विवृद्ध-कोपम्।
ऐरावताभ - मिभ - मुद्धत - मापतन्तं,
दृष्ट्वा भयं भवति नो भवदाश्रितानां ॥38॥

भिन्नेभ-कुम्भ-गलदुज्ज्वल-शोणिताक्त-
मुक्ता-फल-प्रकर-भूषित-भूमि-भागः।

बद्धक्रमः क्रमगतं हरिणाधिपोऽपि,
नाक्रामति क्रम-युगाचल-संश्रितं ते ॥39॥

कल्पांत-काल-पवनोद्धत-वह्नि-कल्पं,
दावानलं ज्वलितमुज्ज्वलमुत्स्फुलिङ्गम्।
विश्वं जिघत्सुमिव सम्मुखमापतन्तं,
त्वन्नाम-कीर्तन-जलं शमयत्यशेषम् ॥40॥

रक्तेक्षणं समद-कोकिल-कण्ठ-नीलं,
क्रोधोद्धतं फणिनमुत्फणमापतन्तम्।
आक्रामति क्रम-युगेण निरस्त-शङ्कस्-
त्वन्नाम-नागदमनी हृदि यस्य पुंसः ॥41॥

वल्गत्तुरंग - गज - गर्जित - भीमनाद-
माजौ बलं बलवतामपि भूपतीनां।
उद्यद्दिवाकर - मयूख - शिखापविद्धं,
त्वत्कीर्त्तनात्तम इवाशु भिदामुपैति ॥42॥

कुन्ताग्र-भिन्न-गज-शोणित-वारिवाह-
वेगावतार - तरणातुर - योध - भीमे।
युद्धे जयं विजित - दुर्जय-जेय-पक्षास्-
त्वत्पाद-पंकज-वनाश्रयिणो लभन्ते ॥43॥

अम्भोनिधौ क्षुभित-भीषण नक्रचक्र-
पाठीन-पीठ-भय-दोल्वण-वाडवाग्नौ।
रङ्गतरङ्ग-शिखर-स्थित-यान-पात्रास्-
त्रासं विहाय भवतः स्मरणाद्व्रजन्ति ॥44॥

उद्भूत - भीषण - जलोदर - भार - भुग्नाः,
शोच्यां दशामुपगताश्च्युत-जीविताशाः।
त्वत्पाद-पङ्कज-रजोऽमृत-दिग्ध देहा,
मर्त्या भवन्ति मकरध्वज-तुल्यरूपाः ॥45॥

आपाद-कंठ मुरु-शृंखल-वेष्टिताङ्गा,
गाढं वृहन्निगड-कोटि-निघृष्ट-जंघाः।
त्वन्नाम-मंत्रमनिशं मनुजाः स्मरन्तः,
सद्यः स्वयं विगत-बंध-भया भवन्ति ॥46॥

मत्त द्विपेन्द्र - मृगराज - दवानलाहि-
संग्राम - वारिधि - महोदर - बंधनोत्थं।
तस्याशु नाशमुपयाति भयं भियेव,
यस्तावकं स्तवमिमं मतिमानधीते ॥47॥

स्तोत्रस्रजं तव जिनेन्द्र! गुणैर्निबद्धां,
भक्त्या मया रुचिर-वर्ण-विचित्र-पुष्पाम्।
धत्ते जनो य इह कंठ-गता-मजस्रं,
तं मानतुङ्ग-मवशा समुपैति लक्ष्मीः ॥48॥

(इति श्रीमानतुङ्गाचार्य विरचित भक्तामर स्तोत्र)

दिगम्बर साधु के समान कोई नहीं

साधुश्चारित्रहानोऽपि समानो नान्यासाधुमिः।
भग्नोऽपि शातकुम्भस्य कुम्भो मृत्सना घटैरिव।।

अर्थ—प्रशंसनीय चारित्र से रहित होने पर भी दिगम्बर साधु अन्य साधुओं के समान नहीं होता जैसे कि सुवर्ण का घट फूट जाने पर भी मिट्टी के घटों के समान नहीं होता।

आदिविधाता-आदिनाथ

(पद्यानुवाद-आचार्यश्री 108 विमर्शसागर जी महाराज)

(तर्ज-जीवन है पानी की बूँद, कब मिट जाये रे)

आदिनाथ स्तोत्र महान, जो नर गाये रे।
घाति-अघाति-सब कर्म नशाये रे॥
आदिनाथ प्रभु गुण स्तवन-जो नर गाये रे।
जीवन में उसके दुःख ना रह पाये रे॥

भक्तामर नत मुकुटमणि—झिलमिल होती लड़ी-लड़ी।
ज्ञानज्योति प्रगटी टूटे—पापकर्म की कड़ी-कड़ी॥
भवसागर में गिरते जन—कर्मभूमि का प्रथम चरण।
आदिनाथ प्रभुवर जिनके—चरण युगल हैं आलम्बन॥
सम्यक् वन्दनकर, मनवा हर्षाये रे॥1॥

द्वादशांग का जो ज्ञाता-तत्त्वज्ञान पटु कहलाता।
मन-मोहक स्तुतियों से—सुरपति प्रभु के गुण गाता॥
त्रिभुवन चित्त लुभाऊँगा—मैं भी प्रभु गुण गाऊँगा।
आदिनाथ तीर्थेश प्रथम—निश्चय उनको ध्याऊँगा॥
प्रभु की भक्ति ही, संकल्प जगाये रे॥2॥

देव-सुरों से है पूजित-पादपीठ जो अतिशोभित।
तज लज्जा स्तुति गाने-तत्पर हूँ मैं बुद्धि रहित॥
चन्द्रबिम्ब जल में जैसे—अभी पकड़ता हूँ वैसे।
बालक ही सोचा करता—विज्ञ मनुज सोचे कैसे॥
बालक हूँ फिर भी मन तो उमगाये रे॥3॥

चंद्रकान्ति सम गुण उज्ज्वल—कहने सुरपति में ना बल।
हे गुणसागर! कौन पुरुष—कहने को हो सके सबल॥

प्रलयकाल की वायु प्रचण्ड–नक्र–चक्र हों अति उद्दण्ड।
ऐसा सिंधु भुजाओं से पार करेगा कौन घमण्ड॥
प्रभु तेरी भक्ति नौका बन जाये रे॥4॥

भक्ति भाव उर लाया हूँ—स्तुति करने आया हूँ।
शक्ति नहीं मुझमें फिर भी—शक्ति दिखाने आया हूँ॥
हिरणी वन को जाती है—सिंह सामने पाती है।
निज शिशु रक्षा हेतु मृगी—आगे लड़ने आती है॥
प्रीतिवश हिरणी कर्तव्य निभाये रे॥5॥

मैं अल्पज्ञ हूँ अकिंचन—हँसी करें प्रभु विद्वतजन।
करती है वाचाल मुझे—भक्ति आपकी हे स्वामिन्॥
जब बसंत ऋतु आती है—कोयल कुहु-कुहु गाती है।
सुन्दर आम्र मंजरी ही—तब कारण बन जाती है॥
प्रभु तेरी मूरत मेरे मन भाये रे॥6॥

नाथ! आपके संस्तव से—भवि जीवों के भव-भव के।
बँधे हुये जो पापकर्म—क्षणभर में क्षय हों सबके॥
भँवरे जैसा तम काला—जग को अंधा कर डाला।
ऐसा तम रवि किरणों ने—आकर तुरत मिटा डाला॥
प्रभु तेरी भक्ति अघकर्म मिटाये रे॥7॥

अल्पज्ञान की धारा है—स्तुति को स्वीकारा है।
चित्त हरे सत्पुरुषों का—नाथ! प्रभाव तुम्हारा है॥
नलिनीदल पर बिन्दुजल—लगता जैसे मुक्ताफल।
है प्रभाव नलिनीदल का—कांतिमान कब होता जल॥
नलिनीदल वा जल अपने में समाये रे॥8॥

दूर रहे प्रभु गुण स्तवन—दोष रहित जो अति पावन।
नाथ आपकी नाम कथा—पापों का करती खण्डन॥

दिनकर दूर रहा आये—क्षितिज लालिमा छा जाये।
सरोवरों में कमलों को—प्रभा प्रफुल्लित कर जाये॥
शुभनाम तेरा होठों पे आये रे॥9॥

जगन्नाथ! हे जगभूषण! जो भी प्राणी गाता गुण।
इसमें क्या आश्चर्य प्रभो! होता है तुम सम तत्क्षण॥
लाभ ही क्या उस स्वामी से—वैभवधारी नामी से॥
निज सेवक को जो निजसम-करे नहीं अभिमानी से॥
तुझसा स्वामी ही सेवक को भाये रे॥10॥

अपलक रूप निहार रहा — दर्शनीय संतोष महा।
तुझसा देव न देवों में — रागद्वेष की खान कहा॥
क्षीर सिन्धु का मीठा जल—सुन्दर शशि सम कांति धवल।
पीकर, क्यों पीना चाहे—लवण-सिंधु का खारा जल॥
तुझ बिन प्रभु मुझको कोई और न भाये रे॥11॥

देख लिये हमने त्रिभुवन—तुझसा सुन्दर न भगवन्।
प्रशम कांतिमय अणुओं से—रचा गया प्रभु! तेरा तन॥
निश्चित वे अणु थे उतने—नाथ! देह में हैं जितने।
अन्य देव का, प्रभु! तुमसा—रूप कहाँ देखा किसने॥
तेरी छबि मेरे नयनों में समाये रे॥12॥

विजित अखिल उपमाधारी—सुरनर उरग नेत्रहारी।
कहाँ आपका मुखमण्डल-शोभा जिसकी अति प्यारी॥
कहाँ कलंकी वह राकेश—निष्प्रभ हो जब आये दिनेश।
ढाक पुष्प सम पाता क्लेश—न खुशबू न कांति विशेष॥
मनहर मुख की छबि, कभी दूर न जाये रे॥13॥

शुभ्र कलाओं से शोभित—पूनम का शशि मन मोहित।
नाथ! आपके उज्ज्वल गुण—करें लोकत्रय उल्लंघित॥

नाथ! आप जिसके आधार—विचरें वे इच्छा अनुसार।
तीन लोक में रोक सके — है किसको इतना अधिकार॥
प्रभु तेरी शरणा, भवपार लगाये रे॥14॥

स्वर्ग अप्सरायें आईं—नृत्यगान कर शर्माईं।
क्या आश्चर्य तनिक मन में—गर विकार न कर पाईं॥
प्रलय काल की वायु चले—पर्वत, भू से आन मिले।
किन्तु सुमेरु शिखर भी क्या—प्रलय वायु से कभी हिले॥
प्रभु तेरे मन का, कोई पार न पाये रे॥15॥

जिसमें धूम न बाती हो—तेल न जिसका साथी हो।
हे अखंड! हे अविनाशी! तीनों लोक प्रकाशी हो॥
प्रलयकाल की वायु चले—मणिज्योति कब हिले-डुले।
जगत्प्रकाशी दीप अपूर्व—ज्ञान ज्योति भी नित्य जले॥
प्रभु तेरी ज्योति, मेरा दीप जलाये रे॥16॥

नाथ! अपकी वो महिमा — सूरज की न कुछ गरिमा।
युगपत् लोक प्रकाशी हो—रवि रहता सहमा-सहमा॥
आप सूर्य सम अस्त नहीं—राहू द्वारा ग्रस्त नहीं।
मेघ तेज को छिपा सकें—ऐसा बन्दोबस्त नहीं॥
प्रभु तेरी भक्ति, मिथ्यात्व नशाये रे॥17॥

राहू कभी नहीं ग्रसता—कृष्ण मेघ से न दबता।
सदा उदित रहने वाला—मोह महातम को दलता॥
अहा! मुखकमल अतिअभिराम-अद्वितीय शशि बिम्ब ललाम।
लोकालोक प्रकाशी है—ज्ञान आपका हे गुणधाम॥
स्तुति प्रभु तेरी, सम्यक्त्व जगाये रे॥18॥

मुखशशि का जब दर्श किया—नाथ! तिमिर द्वय नाश दिया।
दिन में रवि से, रजनी में शशि से नाथ! प्रयोजन क्या॥

धान्य पक चुका लगे ललाम—स्वर्णिम खेत हुये अभिराम॥
जल को लादे झुके हुये—नाथ! बादलों का क्या काम॥
प्रभु आप जैसी, हम फसल उगाये रे॥19॥

पूर्ण रूप से है विकसित—ज्ञान आप में ही शोभित।
हरि-हरादि देवों में क्या—हो सकता जो नित्य क्षुभित॥
तेज महामणि में जैसा—नाथ! आप में भी वैसा।
सूर्य किरण से जो दमके—काँच शकल में न वैसा॥
केवलज्ञानी ही, अज्ञान नशाये रे॥20॥

हरि-हरादि का भी दर्शन—मान रहा अच्छा भगवन्।
उन्हें देखकर अब तुझमें—हुआ पूर्ण संतोषित मन॥
प्रभु तेरे दर्शन से क्या?—साथ चाहता मन तेरा।
इस भूमण्डल पर कोई—देव कभी भी फिर मेरा॥
जन्मों-जन्मों में, न चित्त लुभाये रे॥21॥

सौ-सौ नारी माँ बनतीं—सौ-सौ पुत्रों को जनतीं।
नाथ! आप सम तेजस्वी—पुत्र न कोई जन्म सकीं॥
नभ में अगणित तारागण-सभी दिशा करती। धारण।
सूर्य उदित होता जिससे—पूर्व दिशा ही है कारण॥
माता मरुदेवी, धन्य-धन्य कहाये रे॥22॥

सूरज सम तेजस्वी हो—परम पुमान यशस्वी हो।
मुनिजन कहते तमनाशक-निर्मल आप मनस्वी हो॥
नाथ! आपको जो पाते—मृत्युञ्जयी वो कहलाते।
किन्तु आप बिन शिवपथ का—मार्ग न कोई बतलाते॥
जो तुमको ध्याये, तुम सम बन जाये रे॥23॥

आद्य! अचिन्त्य! असंख्य! अनंत! अनंग केतु! अक्षय! कहें संत।
विदित योग! विभु! योगीश्वर! ब्रह्मा! कहते हे भगवन्त॥

कोई कहता ज्ञान स्वरूप, नाथ! आपको अमल अनूप।
कोई कहता एक! अनेक! अविनाशी! इत्यादिक रूप॥
नाना नामों से, तेरी महिमा गाये रे॥24॥

अमर-पूज्य केवलज्ञानी, अतः बुद्ध हो हे ज्ञानी।
त्रिभुवन में सुख शांति रहे, अतः तुम्हीं शंकर ध्यानी॥
मोक्षमार्ग विधि बतलाते, अतः विधाता कहलाते।
व्यक्त किया पुरुषार्थ अतः, पुरुषोत्तम जन-जन गाते॥
प्रभु तुमको ब्रह्मा, शंकर, विष्णु बताये रे॥25॥

त्रिभुवन का दुःख करें हरण—अतः आपको नमन-नमन।
क्षितितल के निर्मल भूषण—नाथ! आपको नमन-नमन॥
हे परमेश्वर त्रिजगशरण-सदा आपको नमन-नमन।
भववारिधि करते शोषण—अतः आपको नमन-नमन॥
प्रभु तेरा वन्दन, चन्दन बन जाये रे॥26॥

हे मुनीश! इन नाम सहित—गणधर सन्तों से अर्चित।
इसमें क्या आश्चर्य प्रभो! हुये सर्वगुण तव आश्रित॥
दोष स्वप्न में दूर अरे—अहंकार में चूर अरे।
आश्रय पा कामीजन में—इठलाते भरपूर अरे॥
इसमें क्या विस्मय, वो पास न आये रे॥27॥

शुभ अशोक तरु अति उन्नत—कंचन सा तव तन शोभित।
अंधकार को चीर रहीं—ऊर्ध्वमुखी किरणें विकसित॥
जैसे दिनकर आया हो—मेघों बीच समाया हो।
किरण जाल फैलाकर के—स्वर्णिम तेज दिखाया हो॥
सूरत के आगे, सूरज शर्माये रे॥28॥

मणि किरणों से हुआ न्हवन—जगमग-जगमग सिंहासन।
नाथ! आपका कंचन सा—उस पर परमौदारिक तन॥

उदयाचल का तुंग शिखर—रश्मि लिये आया दिनकर।
ऐसा शोभित होता है—सिंहासन पर तन प्रभुवर॥
तन की यह आभा, नजरों को बुलाये रे॥29॥

कुन्दपुष्प सम श्वेत चँवर—इन्द्र ढुराते हैं तन पर।
स्वर्णमयी काया प्रभु जी—लगती मनहर अतिसुन्दर॥
कनकाचल का तुंग शिखर—शुभ्र ज्योत्सना सा निर्झर।
झर-झर, झर-झर झरता हो—शोभित चौंसठ शुभ्र चँवर॥
प्रभु की सेवा में, सुरलोक भी आये रे॥30॥

है शशांक सम कांति प्रखर—तीन छत्र शोभित सिर पर।
मणिमुक्ता की आभा से, झिलमिल-झिलमिल हो झालर॥
रवि का दुर्द्धर प्रखर प्रताप, रोक दिया है अपने आप।
प्रगट कर रहे छत्रत्रय, त्रिभुवन के परमेश्वर आप॥
ईशान इन्द्र आकर महिमा दिखलाये रे॥31॥

मधुर, गूढ़, उन्नतस्वर में—दुन्दुभि बजता नभपुर में।
दशों दिशायें गूँज रहीं—धूम मची है सुरपुर में॥
तीन लोक के, भविजन को—बुला रहा सम्मेलन को।
धर्मराज की हो जय-जय, घोष करे रजनी-दिन को॥
तीनों लोकों में, यश ध्वज फहराये रे॥32॥

पारिजात सुन्दर मन्दार—सन्तानक, नमेरु सुखकार।
कल्पवृक्ष के ऊर्ध्वमुखी—पुष्प अहा! गंधोदकधार॥
वर्षा नित होती रहती—मन्द पवन संग-संग बहती।
मानों दिव्य वचन माला—प्रभु की नभ से ही गिरती॥
प्रभु ऐसी शोभा, कहीं नजर न आये रे॥33॥

नाथ! आपका भामण्डल—शोभित जैसे सूर्य नवल।
जीत रहा है रजनी को—चंद्रकांति सम हो शीतल॥

त्रिभुवन चित्त लुभाते जो—कांतिमान कहलाते जो।
भामण्डल की आभा से—लज्जित हो शर्माते वो॥
भामण्डल भविके, भव सात दिखाये रे॥34॥

स्वर्ग-मोक्ष पथ बतलाती—सत्य धर्म के गुण गाती।
त्रिभुवन के भवि जीवों को—विशद अर्थ कर दिखलाती॥
नाथ! दिव्यध्वनि, खिरती है—सदा अमंगल हरती है।
महा-लघु भाषाओं में—स्वयं परिणमन करती है॥
प्रभु की दिव्यध्वनि, भवरोग मिटाये रे॥35॥

नूतन विकसित स्वर्ण कमल-कांतिमान नख अतिनिर्मल।
फैल रही आभा जिनकी—सर्वदिशाओं में उज्ज्वल॥
आप गमन जब करते हैं—सहज कदम जब धरते हैं।
दो सौ पच्चिस स्वर्ण कमल—विबुध चरणतल रचते हैं।
नभ में प्रभु तेरा, अतिशय दिखलाये रे॥36॥

भूति न त्रिभुवन में ऐसी—धर्मदेशना में जैसी।
प्रातिहार्य वसु समवसरण—अन्य देव में न वैसी॥
अंधकार के हनकर की—जैसी आभा दिनकर की।
वैसी ही आभा कैसे हो सकती तारागण की॥
तीर्थंकर जैसा, ना पुण्य दिखाये रे॥37॥

झर-झर झरता हो मदबल—जिसका चंचल गण्डस्थल।
भ्रमरों के परिगुंजन से—क्रोध बढ़ रहा खूब प्रबल॥
ऐरावत गज आ जाये—भक्त जरा न भय खाये।
नाथ! आपके आश्रय का—जन-जन यह अतिशय गाये॥
प्रभु की भक्ति से, भय भी टल जाये रे॥38॥

चीर दिया गज गण्डस्थल—मस्तक से झरते उज्ज्वल।
रक्त सने मुक्ताओं से—हुआ सुशोभित अवनीतल॥

ऐसा सिंह महा विकराल—बँधे पाँव सा हो तत्काल।
नाथ! आपके चरणयुगल—आश्रय से हो भक्त निहाल॥
प्रभु तेरी भक्ति, निर्भयता लाये रे॥39॥

प्रलयकाल की चले बयार—मचा हुआ हो हाहाकार।
उज्ज्वल, ज्वलित फुलिंगों से—दावानल करती संहार॥
जपे नाम की जो माला—नाम मंत्र का जल डाला।
शीघ्र शमन हो दावानल—नाम बड़ा अचरज वाला॥
भक्ति ही ऐसा, अचरज दिखलाये रे॥40॥

लाल-लाल लोचनवाला—कंठ कोकिला सा काला।
जिव्हा लप-लप कर चलता—नाग महाविष फण वाला॥
नाम नागदमनी जिसके—हृदय बसी हो फिर उसके।
शंका की न बात कोई—साँप लाँघ जाता हँसके॥
भक्तों को विषधर, न कभी डराये रे॥41॥

उछल रहे हों जहाँ तुरंग—गजगर्जन हो सैन्य उमंग।
बलशाली राजा रण में—दिखा रहे हों अपना रंग॥
सूर्य किरण सेना लाता-तिमिर कहाँ फिर रह पाता।
नाम आपका जो जपता—रण में भी ध्वज फहराता॥
प्रभु के भक्तों को, कब कौन हराये रे॥42॥

क्षत-विक्षत गज भालों से—हुआ सामना लालों से।
जलसमरक्त नदी जिसमें—तरणातुर वह सालों से॥
नाथ! जीतना हो दुर्जय—रण में होती शीघ्र विजय।
नाथ! पाद पंकज वन का—लिया जिन्होंने भी आश्रय॥
प्रभु के भक्तों को, जय तिलक लगाये रे॥43॥

मगरमच्छ एवं घड़ियाल—भीमकाय मछली विकराल।
महाभयानक बड़वानल—उठती हों लहरें उत्ताल॥

डगमग-डगमग हों जलयान—चीत्कार कर रहे पुमान।
नाम स्मरण से भगवन्—शीघ्र पहुँचते तट पर यान॥
प्रभु की भक्ति से, संकट कट जाये रे॥44॥

उपजा महा जलोदर भार—वक्र हुआ तन का आकार।
जीने की आशा छोड़ी—शोचनीय है दशा अपार॥
नाथ! चरण रज मिल जाये—रोग दशा भी ढल जाये।
सच कहता हूँ देह प्रभो! कामदेव सी खिल जाये॥
चरणों की रज भी, औषधि बन जाये रे॥45॥

सिर से पैरों तक बन्धन—जंजीरों से बाँधा तन।
हाथ-पैर, जंघाओं से—रक्त बह रहा रात और दिन॥
बंदीजन कर लें शुभकाम—नाम मंत्र जप लें अविराम।
नाथ! आपकी भक्ति से—बन्धन भय पाता विश्राम॥
प्रभु की भक्ति से, बन्धन खुल जाये रे॥46॥

सर्प, दवानल, गज चिंघाड़—युद्ध, समुद्र व सिंह दहाड़।
नाथ! जलोदर हो चाहे—बन्धन का भय रहे प्रगाढ़॥
नाथ! आपका स्तुतिगान—करता है जो भी मतिमान।
भय भी भयाकुलित होकर, शीघ्र स्वयं होता गतिमान॥
प्रभु की भक्ति से, भय भी भय खाये रे॥47॥

गुण बगिया में आये हैं, अक्षर पुष्प खिलाये हैं।
विविध पुष्प चुन भक्ति से, स्तुतिमाल बनाये हैं॥
करे कण्ठ में जो धारण, मनुज रहे न साधारण।
'मानतुंग' सम मुक्ति 'श्री', आलिंगित हो बिन कारण॥
प्रभु गुण की महिमा निज गुण विकसाये रे॥48॥

मानतुंग उपसर्गजयी, मानतुंग हैं कर्मजयी।
मानतुंग की अमरकृति, 'भक्तामर' है कालजयी॥

मानतुंग की छाया है, मानतुंग समध्याया है।
भक्तिभाव से पद्य रचा, आदिनाथ गुण गाया है॥
भक्ति की शक्ति मानतुंग बताये रे॥1॥

अशुभ छोड़ शुभ पाऊँगा, शुभ तज शुद्ध ही ध्याऊँगा।
कर निश्चय-व्यवहार स्तुति, सिद्धों सा सुख पाऊँगा॥
रहा 'विमर्श' यही मन में, भक्ति सदा हो जीवन में।
गुरु 'विराग' आशीष मिले, साँस रहे जब तक तन में॥
प्रभु तेरी भक्ति, मुझे प्रभु बनाये रे॥2॥

एकीभाव-स्तोत्र

(श्री मदाचार्य वादिराज देव प्रणीत)

एकीभावं गत इव मया यः स्वयं कर्म-बन्धो,
घोरं दुःखं भव-भव-गतो दुर्निवारः करोति।
तस्याप्यस्य त्वयि जिन-रवे भक्ति-रुन्मुक्तये चेत्,
जेतुं शक्यो भवति न तया कोऽपरस्ताप-हेतुः॥1॥

ज्योतीरूपं दुरित निवह - ध्वान्त-विध्वंस-हेतुं,
त्वा-मेवाहु-र्जिनवर! चिरं तत्त्व - विद्याभियुक्ताः।
चेतोवासे भवसि च मम स्फार-मुद्भासमानस्,
तस्मिन्नंहः कथमिव तमो वस्तुतो वस्तुमीष्टे॥2॥

आनन्दाश्रु-स्नपित-वदनं गद्गदं चाभिजल्पन्,
यश्चायेत त्वयि दृढ़-मनाः स्तोत्र मन्त्रै-र्भवन्तम्।
तस्याभ्यस्तादपि च सुचिरं देह-वल्मीक-मध्यान्,
निष्कास्यन्तेविविध-विषम-व्याधयः काद्रवेयाः॥3॥

प्रागेवेह त्रिदिव-भवनादेष्यता-भव्य-पुण्यात्,
पृथ्वी-चक्रं कनकमयतां देव! निन्ये त्वयेदम्।

ध्यान-द्वारं मम रुचिकरं स्वान्त-गेहं प्रविष्टस्,
तत्किं चित्रं जिन! वपुरिदं यत्सुवर्णी-करोषि॥4॥

लोकस्यैकस्त्वमसि भगवन्! निर्निमित्तेन बन्धुस्,
त्वय्येवासौ सकल-विषया शक्ति-रप्रत्यनीका।
भक्तिस्फीतां चिरमधि-वसन्मामिकां चित्त-शय्यां,
मय्युत्पन्नं कथमिव ततः क्लेश-यूथं सहेथाः॥5॥

जन्माटव्यां कथमपि मया देव! दीर्घं भ्रमित्वा,
प्राप्तैवेयं तव नय-कथा स्फार-पीयूष-वापी।
तस्या मध्ये हिमकर-हिम-व्यूह-शीते नितान्तं,
निर्मग्नं मां न जहति कथं दुःख दावोपतापाः॥6॥

पाद-न्यासा-दपि च पुनतो यात्रया ते त्रिलोकीं,
हेमाभासो भवति सुरभिः श्रीनिवासश्च पद्मः।
सर्वांगेण स्पृशति भगवंस्त्वय्यशेषं मनो मे,
श्रेयः किं तत्स्वय-महर-हर्यन्न मामभ्युपैति॥7॥

पश्यन्तं त्वद्वचन-ममृतं भक्ति-पात्र्या पिबन्तं,
कर्मारण्यात् पुरुष-मसमानन्द-धाम प्रविष्टम्।
त्वां दुर्वार-स्मर-मद-हरं त्वत्प्रसादैक-भूमिं,
क्रूराकाराः कथमिव रुजा कण्टका निर्लुठन्ति॥8॥

पाषाणात्मा तदितरसमः केवलं रत्न-मूर्ति-
र्मानस्तम्भो भवति च परस्तादृशो रत्न-वर्गः।
दृष्टि-प्राप्तो हरति स कथं मान-रोगं नराणां,
प्रत्त्यासत्ति-र्यदि न भवतस्तस्य तच्छक्ति-हेतुः॥9॥

हृद्यः प्राप्तो मरुदपि भवन् मूर्ति-शैलोपवाही,
सद्यः पुंसां निरवधि-रुजा-धूलिबन्धं धुनोति।
ध्यानाहूतो हृदय-कमलं यस्य तु त्वं प्रविष्टस्,
तस्याशक्यः क इह भुवने देव! लोकोपकारः॥10॥

जानासि त्वं मम भव-भवे यच्च यादृक्च दुःखं,
जातं यस्य स्मरणमपि मे शस्त्र-वन्निष्पिनष्टि।
त्वं सर्वेशः सकृप इति च त्वा-मुपेतोऽस्मि भक्त्या,
यत्कर्तव्यं तदिह विषये देव! एव प्रमाणम्॥11॥

प्रापद् - दैवं तव नुति - पदै - र्जीवकेनोपदिष्टैः,
पापाचारी मरण-समये सारमेयोऽपि सौख्यम्।
कः सन्देहो यदुपलभते वासव - श्री प्रभुत्वं,
जल्पञ्जाप्यैर्मणिभिरमलैस्त्वन्नमस्कार-चक्रम्॥12॥

शुद्धे ज्ञाने शुचिनि चरिते सत्यपि त्वय्यनीचा,
भक्तिर्नो चेदनवधि - सुखावञ्चिका कुञ्चिकेयम्।
शक्योद्घाटं भवति हि कथं मुक्ति-कामस्य पुंसो,
मुक्ति-द्वारं परिदृढ़ - महामोह-मुद्रा-कवाटम्॥13॥

प्रच्छन्नः खल्वय - मघ - मयै-रन्धकारैः समन्तात्,
पन्था मुक्तेः स्थपुटित-पदः क्लेश-गर्तैरगाधैः।
तत्कस्तेन व्रजति सुखतो देव! तत्त्वा-वभासी,
यद्यग्रेऽग्रे न भवति भवद्भारती-रत्न-दीपः॥14॥

आत्म - ज्योति - र्निधि-रनवधि-र्द्रष्टु-रानन्द-हेतुः,
कर्म-क्षोणी-पटल-पिहितो योऽनवाप्यः परेषाम्।
हस्ते कुर्वन्त्यनति-चिरतस्तं भवद्-भक्तिभाजः,
स्तोत्रै-र्बंध-प्रकृति-परुषोद्दाम-धात्री-खनित्रैः॥15॥

प्रत्युत्पन्ना नय - हिमगिरे - रायता चामृताब्धेः,
या देव! त्वत्पद-कमलयोः संगता भक्ति-गङ्गा।
चेतस्तस्यां मम रुचि-वशादाप्लुतं क्षालितांहः,
कल्माषं यद्भवति किमियं देव! सन्देह-भूमिः॥16॥

प्रादुर्भूत - स्थिर - पद-सुख! त्वा-मनुध्यायतो मे,
त्वय्येवाहं स इति मति-रुत्पद्यते निर्विकल्पा।
मिथ्यैवेयं तदपि तनुते तृप्ति-मभ्रेष-रूपाम्,
दोषात्मानोऽप्यभिमत-फलास्त्वत्प्रसादाद्भवन्ति॥17॥

मिथ्यावादं मल-मपनुदन् सप्तभङ्गी-तरङ्गै-
र्वागम्भोधि-र्भुवन - मखिलं देव! पर्येति यस्ते।
तस्यावृत्तिं सपदि विबुधाश्चेत-सैवा-चलेन,
व्यातन्वन्तः सुचिर-ममृता-सेवयातृप्नुवन्ति॥18॥

आहार्येभ्यः स्पृहयति परं यः स्वभावाद-हृद्यः,
शस्त्र-ग्राही भवति सततं वैरिणा यश्च शक्यः।
सर्वाङ्गेषु त्वमसि सुभगस्त्वं न शक्यः परेषां,
तत्किंभूषा-वसन-कुसुमैः किं च शस्त्रैरुदस्त्रैः॥19॥

इन्द्रः सेवां तव सुकुरुतां किं तया श्लाघनं ते,
तस्यैवेयं भव - लय - करी श्लाघ्यता-मातनोति।
त्वं निस्तारी जनन-जलधेः सिद्धि-कान्ता-पतिस्त्वं,
त्वं लोकानां प्रभुरिति तव श्लाघ्यते स्तोत्रमित्थम्॥20॥

वृत्ति-र्वाचा-मपर-सदृशी न त्वमन्येन तुल्यः,
स्तुत्युद्गाराः कथमिव ततस्त्वय्यमी नः क्रमन्ते।
मैवं भूवंस्तदपि भगवन्! भक्ति पीयूष पुष्टास्,
ते भव्याना-मभिमत-फलाः पारिजाता भवन्ति॥21॥

कोपावेशो न तव न तव क्वापि देव! प्रसादो,
व्याप्तं चेतस्तव हि परमो - पेक्षयै - वान-पेक्षम्।
आज्ञावश्यं तदपि भुवनं सन्निधि-र्वैर-हारी,
क्वैवंभूतं भुवन-तिलक! प्राभवं त्वत्परेषु॥22॥

देव! स्तोतुं त्रिदिव गणिका-मण्डली-गीत-कीर्तिं,
तोतूर्ति त्वां सकल-विषय-ज्ञान-मूर्ति जनो यः।
तस्य क्षेमं न पद-मटतो जातु जाहूर्ति पन्थास्,
तत्त्वग्रन्थ-स्मरण-विषये नैष मोमूर्ति-मर्त्यः ॥23॥

चित्ते कुर्वन् निरवधि-सुख-ज्ञान-दुग्वीर्य-रूपं,
देव! त्वां यः समय-नियमा-दादरेण स्तवीति।
श्रेयोमार्गं स खलु सुकृती तावता पूरयित्वा,
कल्याणानां भवति विषयः पञ्चधा पञ्चितानाम् ॥24॥

भक्ति-प्रह्व-महेन्द्र-पूजित-पद! त्वत्कीर्तने न क्षमाः,
सूक्ष्म-ज्ञान-दृशोऽपि संयमभृतः के हन्त मन्दा वयम्।
अस्माभिः स्तवन च्छलेन तु परस्त्वय्या-दरस्तन्यते,
स्वात्माधीन-सुखैषिणांस खलु नः कल्याण-कल्पद्रुमः ॥25॥

(स्वागता छन्द)

वादिराजमनु शाब्दिक-लोको, वादिराजमनु तार्किक-सिंहः।
वादिराज मनु काव्यकृतस्ते, वादिराजमनु भव्य-सहायः॥

(इति श्री एकीभाव स्तोत्र)

अर्हंत भक्ति से अर्हंत दशा

भिन्नात्मान मुपास्यातमा, परोभवति तादृशः
वर्तिदीपं यथोपास्य भिन्ना भवति तादृशी।।92।।स.तं.

अर्थ—यह जीव अपने से भिन्न अर्हंत, सिद्ध स्वरूव परमात्मा की उपासना करके उन्हीं सरीखा अर्हंत-सिद्ध परमात्मा हो जाता है, जैसे बत्ती दीपक से भिन्न होकर भी दीपक की उपासना से दीपक स्वरूप हो जाती है।

एकीभाव स्तोत्र

(पद्यानुवाद - श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर)

लगता जो एकीभाव को ही प्राप्त हो रहे,
भव-भव में साथ चलके दुःख के बीज बो रहे।
हे नाथ ! कर्मबन्ध की है यह विशेषता,
दुष्कर है जिन्हें दूर भी करना हे देवता!

हे जिनरवि ! हो जिसके हृदय आपकी भक्ति,
होती है क्षीण घोर कर्मबन्ध की शक्ति।
फिर दूसरा सन्ताप जय कहाँ अशक्य है,
भक्ति से उसको जीतना होता अवश्य है।।1।।

जिनदेव ! तत्त्वज्ञान के जो ज्ञाता ऋषि महा,
उनने सदा ज्योति स्वरूप आपको कहा।
हो चूँकि पापतम विनाश में तुम्हीं कारण,
ज्योतिस्वरूप कहते नहीं तुमको अकारण।।

प्रभु ! आप मेरे चित्त निकेतन में बस रहे,
होकर प्रकाशमान नित्य ही विलस रहे।
हे नाथ ! पापतम निवास कैसे पायेगा?
कितना भी हो समर्थ पास वो न आयेगा।।2।।

जिसका भी आप में प्रभु थिर चित्त हो रहा,
मुख जिसका हर्ष आँसु से अभिषिक्त हो रहा ।
स्तोत्ररूपी मंत्र का लेकर जो आसरा,
करता है पूजा आपकी नित भाव से भरा।।

चिरकाल से भी जिनका फिर निवास हो प्रभो,
क्षण भर भी नहीं शान्ति सदा त्रास हो विभो।
तन रूपी बामी से निकलते रोग साँप भी,
प्रभु आपकी भक्ति से कहाँ रहते पाप भी।।3।।

हे देव ! पुण्योदय हुआ जब भव्यजनों का,
सुरलोक से तब आगमन हुआ जो आपका।
छः माह पूर्व जन्म की आई विशेषता,
सम्पूर्ण धारा पा गई कंचन सुरूपता।।

हे नाथ ! ध्यान द्वार से तुमको बुला रहा,
भक्ति से अपने मन में तुम्हें ही बसा रहा।
तो नाथ ! इसमें आश्चर्य की है बात क्या?
हो आगमन से आपके तन भी सुवर्ण सा।।4।।

प्रभु ! लोक में हो अद्वितीय बन्धु अकारण,
करते हो हित सभी का अहित करते निवारण।
जग के सकल पदार्थ ज्ञान में झलक रहे,
सर्वज्ञ शक्ति को न कोई कर्म ढक रहे।।

चिरकाल से फिर भक्ति का विस्तार किया है,
मन रूपी शैय्या पर तेरा अवतार किया है।
मुझसे हुये पैदा दुःखों को कैसे सहोगे?
विश्वास मुझे पूरा, उन्हें दूर करोगे।।5।।

संसार वन में बहुत काल घूमता रहा,
हे नाथ ! पुण्ययोग से फिर आपको लहा।
पाकर के नयकथा की ये अमृत सी बावड़ी,
इस रूप कर रहा हूँ प्रवृत्ति घड़ी-घड़ी।।

शशि के समान और बर्फ के समान है,
इस बावड़ी के नीर का अतिशय महान है।
इसमें जो मनुज डूब के स्नान करेगा,
दुःख दावानल का क्यों नहीं अवसान करेगा।।6।।

हे नाथ ! तीन लोक किये आपने पावन,
आकाश मध्य जब भी हुआ आपका गमन।
कमलों पे आप रखते हो जब भी चरण कमल,
स्वर्णिम सुगन्ध श्री निवास हों तुरत कमल।।

फिर नाथ ! आप जब मेरे हिरदय में बस रहे,
हर अंग-अंग से मेरा हिरदय परस रहे।
है कौन सा कल्याण जो न प्राप्त करूँगा,
है कौन अकल्याण जिसे मैं न हरूँगा।।7।।

रुकता नहीं किसी से भी जो दुर्निवार है,
उस काम मद को जीता तुम्हें नमस्कार है।
करते जो दर्श आपका, निज भक्ति पात्र से,
पीते हैं वचन अमृत, होने सुपात्र वे।

फिर कर्मरूपी वन से निकलकर के नाथ ! वे
हों मुक्ति सदन में प्रविष्ट सुख के साथ वे।
आधार जिस पुरुष को आपके प्रसाद का,
क्रूराकृति सम रोग शूल से विषाद क्या।।8।।

हे नाथ ! मानस्तम्भ जो पत्थर का है बना,
है अन्य भी पाषाण के स्तम्भ के समा।
होता है रत्नमय भी तो क्या बात निराली,
है अन्य-अन्य रत्नों में आभा वही लाली।।

फिर करते जो मनुष्य दर्श मानस्तम्भ का,
होता है दूर कैसे रोग उनके दम्भ का।
हे नाथ ! दर्श शक्ति में श्रद्धा विधान है,
प्रभु ! आपकी समीपता कारण महान है।।9।।

प्रभु ! आपके शरीर रूपी गिरि समीप से,
बहती मनोहारी हवा जिसके करीब से।
उस नर के अपरिमित भी रोग रूपी धूल के,
सम्बन्ध को करती है दूर नाथ ! मूल से।।

फिर जिसने बुलाया हृदय कमल पे ध्यान से,
हे नाथ ! बिठाया तुम्हें भक्ति विधान से।
हित होता अलौकिक तो क्या लौकिक नहीं होगा,
कल्याण का उसको सहज सुयोग बनेगा।।10।।

भव-भव में मुझे जैसा जो दुःख प्राप्त हुआ है,
स्मरण मात्र से लगे शस्त्रों ने छुआ है।
प्रभु ! आप हैं सर्वज्ञ व्यथा मेरी जानते,
सर्वेश ! दयावान सभी तुमको मानते।।

आया हूँ भक्ति से भरा शरण में आपकी,
हो जाये शांति मेरे भी दुष्कर्म पाप की।
मेरे लिये तो नाथ ! आप ही प्रमाण हैं,
जो चाहें जैसा चाहें आप मेरे प्राण हैं।।11।।

जो श्वान पापाचार में ही लीन रहा था,
जीवक से मृत्युबेला में उपदेश सुना था।
सुनकर के नमस्कार मंत्र देह को त्यागा,
पाया था देव सौख्य जन्म होते जो जागा।।

हे नाथ ! फिर जो आपका गुणगान करेगा,
मणिमाला लेके नाम जाप ध्यान करेगा।
ऐसे पुरुष को इन्द्र की प्रभुता भी मिले तो,
सन्देह की क्या बात? विभूति भी फले तो।।12।।

जो शुद्धज्ञान शुद्धचरित धार रहे हैं,
जो मोक्ष की अभिलाषा को स्वीकार रहे हैं।
अविनाशी सुख प्रदाता जो अनुभूति रूप है,
हे नाथ ! भक्ति आपकी कुंजी स्वरूप है।।

निष्कांक्ष भक्ति कुंजी यदि न हो पास में,
फिर मोक्षद्वार कैसे खुले निज विकास में।
जिस द्वार पे मजबूत मोह ताला लगा हो,
कुंजी बिना कैसे खुलेगा ताला, बताओ।।13।।

हे देव ! मुक्तिमार्ग यद्यपि महान है,
निश्चय से, किन्तु पाप तिमिर का वितान है।
दु:ख रूप गहन गर्त ऊँच-नीच थान हो,
उस मार्ग पे चलते हुए मुश्किल में जान हो।।

जीवादि तत्त्वज्ञान को प्रकाशने वाला,
हे नाथ ! दिव्यध्वनि रूपी दीप निराला।
शिवपथ में यदि आगे-आगे साथ न रहे,
तो कौन पुरुष पथ पे गमन सुख से कर सके।।14।।

है जो असीम आत्मज्ञानरूपी खजाना,
जो दृष्टा को आनंद का कारण है बखाना।।
वह कर्मरूप पृथ्वी के पटल से ढका है,
वह अन्य जनों के लिये दुर्लभ ही कहा है।।

प्रकृति-प्रदेश-स्थिति-अनुभाग बन्ध की,
पृथ्वी को खोदने के लिये है जो कुदाली।
हे नाथ ! वह है आपकी भक्ति व स्तुति,
जो भव्य करेगा वो शीघ्र पायेगा मुक्ति।।15।।

नय रूप हिमालय से जो उत्पन्न हुई है,
जो मोक्ष समुन्दर में जा सम्पन्न हुई है।
वह भक्तिगंगा नाथ ! जो हिरदय में बस रही,
वह आप चरणकमल के कारण विलस रही।।

श्रद्धा के वशीभूत हो स्नान किया है,
कल्मष जो धुल गया विशुद्ध मन ये हुआ है।
हे देव ! न सन्देह का स्थान रहा है,
भक्ति में जब से मन ये मेरा मग्न हुआ है।।16।।

अविनाशी सौख्य हो गया जिनके लिये प्रगट,
हे देव ! सतत् ध्यान में हूँ आपके निकट।
मैं हूँ वही, जो आप हैं, ऐसी हुई मति,
होकर मैं निर्विकल्प करूँ निश्चय स्तुति।।

यद्यपि ये बुद्धि झूठ है एकांत नहीं है,
तो भी अचल सुतृप्ति को विश्रान्ति यहीं है।
प्रभु ! आपके प्रसाद से सदोष आत्मा,
इच्छित फलों को पा, बनें निर्दोष आत्मा।।17।।

प्रभु आपका दिव्यध्वनि रूपी ये समुन्दर,
उठती है जिसमें सप्तभंग समकिती लहर।
जो मिथ्यावाद रूपी महामल हटा रहा,
सम्पूर्ण जगत जिसमें सुरक्षा को पा रहा।।

मनरूपी सुमेरु को बनाकर के मथानी,
दिव्यध्वनि रूपी समुद्र मथते सुज्ञानी।
निज ज्ञानरूपी अमृत का पान कर रहे,
संतुष्ट हो चिरकाल वे अज्ञान हर रहे।।18।।

होता स्वभाव से जो असुन्दर कुरूप सा,
आभूषणों से चाहता वो ही सुरूपता।
शत्रु के द्वारा जिसको जीतना भी शक्य है,
वो है कुदेव शस्त्र भी रखता अवश्य है।।

हे देव ! सहज आप हो सर्वांग से सुन्दर,
शत्रु के लिए आप ही अजेय हो भूपर।
तन पे न रखते आप कभी फूल याभूषण,
फिर वस्त्र-अस्त्र-शस्त्र से भी क्या है प्रयोजन।।19।।

इन्द्रादि करते सेवा भलीभाँति आपकी,
हे नाथ ! प्रशंसा है क्या उससे भी आपकी।
प्रभु आपकी कृपा से इन्द्र भव को नाशता,
उससे तो उसी इन्द्र की होती श्लाघ्यता।।

हे नाथ ! आप भवसमुद्र तारने वाले,
मुक्तिवधु के स्वामी सिद्धि धारने वाले।
तिहुँलोक अनुग्रह निग्रह में समर्थ हो,
प्रभु आपकी स्तुति ये प्रशंसा के अर्थ हो।।20।।

प्रभु ! आपके अनुपम वचन पर के समान न,
प्रभु ! आप कभी पर पदार्थ के समान न।
इस हेतु से स्तुति वचन की कैसी संगति,
स्पष्ट दिखती मिथ्यावचन की विसंगति।।

स्तुति वचन विसंगति फिर भी विशिष्ट है,
भक्ति पीयूष से सदा ही क्योंकि पुष्ट है।
स्तुति वचन ही जीवों का, संसार खोते हैं,
इच्छित फलों को देने, कल्पवृक्ष होते हैं।।21।।

हे देव ! आप क्रोध भाव धारते नहीं,
प्रभु ! आप प्रीतिभाव को उचारते नहीं।
निरपेक्ष चित्त आपका निश्चय महान है,
अत्यन्त उपेक्षा से व्याप्त पूर्णज्ञान है।।

तो भी ये जगत् आपकी आज्ञा अधीन है,
करने को दूर शत्रुता सन्निधि सुचीन है।
हे जगतिलक ! प्रभुत्व ऐसा अन्य कहाँ है,
होगा अगर तो आपका सान्निध्य वहाँ है।।22।।

हे देव ! स्वर्ग अप्सरायें गातीं कीर्ति,
सर्वज्ञ देव ! आप पूर्णज्ञान मूर्ति।
जो भव्य पुरुष आपकी भक्ति में हो अटल,
उसका कभी शिवमार्ग भी होता नहीं कुटिल।।

सिद्धांत-तत्त्व ग्रंथ का होता है पारखी,
हिरदय में उस पुरुष के प्रगट होती भारती।
आती कभी न मूर्च्छा सिद्धान्त ग्रंथ में
करता जो शीघ्र स्तुति इस मोक्षपंथ में।।23।।

हे देव ! आप हो अनंत सौख्य के स्वामी,
हे देव ! आप हो अनंत वीर्य के स्वामी।
हे देव ! आप हो अनंत ज्ञान के स्वामी,
हे देव ! आप हो अनंत दर्श के स्वामी।।

जो भव्य नियतकाल मन से आपको ध्याता,
आदर के साथ स्तुति गुण आपके गाता।
निश्चय से पुण्यवान वो शिवमार्ग को पाता,
तीर्थेश जैसे पंचकल्याणक को मनाता।।24।।

देवेन्द्र भक्ति भाव से अभिभूत हुए हैं,
जिनचरण पूजने को नम्रीभूत हुए हैं।
हैं सूक्ष्मज्ञान चक्षु ऐसे योगीराज भी,
सक्षम न प्रभु ! आपके गुणगान में कभी।।

हा ! मूर्ख हम जो स्तुति उपहार कर रहे,
छल से अहो सम्मान का विस्तार कर रहे।
निश्चय यही सम्मान तो शिव कल्पवृक्ष है,
हम चाहते निज सौख्य जो होता प्रत्यक्ष है।।25।।

जो व्याकरण ज्ञाता वो हीन वादिराज से,
जो श्रेष्ठ नैयायिक वो हीन वादिराज से।
जो हैं प्रसिद्ध कवि वो हीन वादिराज से,
जो साधु पुरुष हैं वो हीन वादिराज से।।26।।

एकीभाव स्तोत्र का, करता जो नित पाठ।
वो 'विमर्श' बनता सहज, मोक्षमहल सम्राट।।

★★★★

श्री कल्याण मंदिर स्तोत्र

(श्री मदाचार्य कुमुद चन्द्र देव प्रणीत)

कल्याण-मंदिर-मुदार-मवद्यभेदि,
भीता-भयप्रदमनिन्दितमङ्घ्रिपद्मम्।
संसार-सागर-निमज्जदशेषजंतु,
पोतायमान-मभिनम्यजिनेश्वरस्य॥1॥

यस्यस्वयंसुरगुरु - र्गरिमाम्बुराशेः,
स्तोत्रं सुविस्तृत-मति-र्नविभुर्विधातुम्।
तीर्थेश्वरस्य कमठस्मय-धूमकेतो-
स्तस्याहमेषकिलसंस्तवनं करिष्ये॥2॥

सामान्यतोऽपित व वर्णयितुंस्वरूप,
मस्मादृशः कथमधीशभवन्त्यधीशाः।
धृष्टोऽपिकौशिकशिशुर्यदिवा दिवान्धो,
रूपंप्ररूपयतिकिंकिलघर्मरश्मेः॥3॥

मोहक्षयादनु-भवन्नपि नाथ मर्त्यो,
नूनं गुणान्गणयितुं न तव क्षमेत।
कल्पांत वांत पयसः प्रकटोऽपियस्मान्,
मीयेतकेनजलधेर्ननुरत्नराशिः॥4॥

अभ्युद्यतोऽस्मितवनाथजड़ाशयोऽपि,
कर्तुंस्तवंलसदसंख्यगुणाकरस्य।
बालोऽपिकिंननिजबाहुयुगंवितत्य,
विस्तीर्णतांकथयतिस्वधियाम्बुराशेः॥5॥

ये योगिनामपि न यान्ति गुणास्तवेश!
वक्तुंकथंभवति तेषुममावकाशः।
जाता तदेव-मसमीक्षित कारितेयं,
जल्पन्तिवानिज-गिराननुपक्षिणोऽपि॥6॥

आस्ता-मचिंत्य महिमा जिन संस्तवस्ते,
नामापि पातिभवतो भवतोजगन्ति
तीव्रातपोपहत-पान्थजनान्निदाघे,
प्रीणातिपद्मसरसः स-रसोऽनिलोऽपि ॥7॥

हृद्वर्तिनित्वयिविभोशिथिलीभवन्ति,
जन्तोः क्षणेननिविडा अपिकर्म बन्धाः।
सद्यो भुजङ्गममयाइवमध्यभाग,
मभ्यागतेवनशिखण्डिनिचन्दनस्य ॥8॥

मुच्यन्त एव मनुजाः सहसाजिनेन्द्र!
रौद्रैरुपद्रव-शतैस्त्वयिवीक्षितेऽपि।
गोस्वामिनिस्फुरिततेजसिदृष्टमात्रे,
चौरेरिवाशुपशवःप्रपलायमानैः ॥9॥

त्वं तारको जिन कथं भविनां त एव,
त्वामुद्वहन्ति हृदयेन यदुत्तरन्तः।
यद्वादृतिस्तरतियज्जलमेषनून,
मन्तर्गतस्यमरुतः सकिलानुभावः ॥10॥

यस्मिनहर-प्रभृतयोऽपिहतप्रभावाः,
सोऽपित्वयारतिपतिः क्षपितः क्षणेन।
विध्यापिताहुतभुजः पयसाथयेन,
पीतंनकिंतदपिदुर्द्धरवाडवेन ॥11॥

जन्मोदधिंलघुतरन्त्यतिलाघवेन,
चिन्त्योनहंतमहतांयदिवाप्रभावः ॥12॥

क्रोधस्त्वयायदिविभोप्रथमंनिरस्तो,
ध्वस्तास्तदावदकथंकिलकर्मचौराः।
प्लोषत्यमुत्रयदिवाशिशिरापिलोके,
नीलद्रुमाणिविपिनानिनकिंहिमानी ॥13॥

त्वां योगिनो! जिन सदा परमात्मरूप,
मन्वेषयन्ति हृदयाम्बुजकोषदेशे।
पूतस्यनिर्मलरुचेर्यदिवाकिमन्य-
दक्षस्यसम्भवपदंननुकर्णिकायाः ॥14॥

ध्यानाज्जिनेशभवतो भविनः क्षणेन,
देहं विहाय परमात्मदशां व्रजन्ति।
तीव्रानलादुपलभावमपास्य लोके,
चामीकरस्त्वमचिरादिवधातुभेदः ॥15॥

अन्तः सदैव जिन! यस्य विभाव्यसेत्वं,
भव्यैः कथं तदपि नाशयसे शरीरम्।
एतत्स्वरूप-मथमध्यविवर्तिनोहि,
यद्विग्रहंप्रशमयन्तिमहानुभावाः ॥16॥

आत्मामनीषिभिरयंत्वदभेदबुद्ध्या,
ध्यातोजिनेन्द्र! भवतीहभवत्प्रभावः।
पानीयमप्यमृतमित्यनुचिन्त्यमानं,
किंनामनोविषविकारमपाकरोति ॥17॥

त्वामेव वीततमसं परवादिनोऽपि,
नूनं विभो हरिहरादिधिया प्रपन्नाः।
किंकाचकामलिभिरीशसितोपिशंखो,
नो गृह्यतेविविधवर्णविपर्ययेण ॥18॥

धर्मोदेश-समये स विधानुभावा,
दास्तां जनो भवति ते तरुरप्यशोकः।
अभ्युद्गते दिनपतौ समहीरुहोऽपि,
किंवाविबोधमुपयातिनजीवलोकः ॥19॥

चित्रंविभोकथमवाङ् मुखवृन्तमेव,
विष्वक्पतत्यविरला सुरपुष्पवृष्टिः।

त्वद्गोचरे सुमनसां यदि वा मुनीश!,
गच्छन्ति नूनमध एव हि बन्धनानि ॥20॥

स्थाने गभीर-हृदयोदधि-सम्भवायाः,
पीयूषतां तव गिरः समुदीरयन्ति।
पीत्वा यतः परमसंमद-सङ्गभाजो,
भव्या व्रजन्ति तरसाप्यजरामरत्वम् ॥21॥

स्वामिन्! सुदूरमवनम्यसमुत्पतन्तो,
मन्येवदन्तिशुचयः सुर-चामरौघाः।
ये ऽस्मै नतिं विदधते मुनिपुङ्गवाय,
तेनूनमूर्ध्वगतयः खलुशुद्धभावाः ॥22॥

श्यामंगभीरगिर-मुज्ज्वल-हेमरत्न,
सिंहासनस्थमिहभव्यशिखण्डिनस्त्वाम्।
आलोकयन्तिरभसेननदन्तमुच्चै-
श्चामीकराद्रि-शिरसीवनवाम्बुवाहम् ॥23॥

उद्गच्छता तव शितिद्युतिमण्डलेन,
लुप्तच्छदच्छ वि रशोकतरुर्बभूव।
सान्निध्यतोऽपियदिवातववीतराग!,
नीरागतांव्रजतिकोनसचेतनोऽपि ॥24॥

भोः भोः प्रमादमवधूयभजध्वमेन,
मागत्यनिर्वृतिपुरीं प्रति सार्थवाहम्।
एतन्निवेदयति देव जगत्त्रयाय,
मन्ये नदन्नभिनभः सुरदुन्दुभिस्ते ॥25॥

उद्योतितेषु भवता भुवनेषु नाथ!
तारान्वितो विधुरयं विहताधिकारः।
मुक्ताकलापकलितोरुसितातपत्र,
व्याजात्त्रिधाधृततनुर्ध्रुवमभ्युपेतः ॥26॥

स्वेन प्रपूरित-जगत्त्रय-पिण्डितेन,
कान्तिप्रताप-यशसामिव सञ्चयेन।
माणिक्य-हेमरजत-प्रविनिर्मितेन,
सालत्रयेणभगवन्नभितोविभासि ॥27॥

दिव्यस्रजो जिननमत्त्रिदशाधिपाना,
मुत्सृज्यरत्नरचितानपिमौलिबंधान्।
पादौ श्रयन्ति भवतो यदि वापरत्र,
त्वत्सङ्गमेसुमनसो न रमन्त एव ॥28॥

त्वंनाथ जन्मजलधेविपराङ्मुखोऽपि,
यत्तारयस्यसुमतो निजपृष्ठलग्नान्।
युक्तंहिपार्थिवनिपस्यसतस्तवैव,
चित्रंविभोयदसिकर्मविपाकशून्यः ॥29॥

विश्वेश्वरोऽपि जनपालक दुर्गतस्त्वं,
किं वाक्षरप्रकृतिरप्यलिपिस्त्वमीश।
अज्ञानवत्यपिसदैवकथंचिदेव,
ज्ञानंत्वयिस्फुरतिविश्वविकासहेतु ॥30॥

प्राग्भारसम्भृत-नभांसि रजांसि रोषा,
दुत्थापितानि कमठेन शठेन यानि।
छायापितैस्तवननाथ! हताहताशो,
ग्रस्तस्त्वमी-भिरयमेवपरंदुरात्मा ॥31॥

यद्गर्जदूर्जित घनौघमदभ्रभीम,
भ्रश्यत्तडिन्मुसल-मांसल-घोरधारम्।
दैत्येन मुक्तमथ दुस्तर वारिदध्रे,
तेनैवतस्यजिनदुस्तरवारिकृत्यम् ॥32॥

ध्वस्तोर्ध्वकेशविकृताकृतिमर्त्यमुण्ड,
प्रालम्बभृद्भयदवक्त्रविनिर्यदग्निः।

प्रेतव्रजःप्रतिभवन्तमपीरितो यः,
सोऽस्याभवत्प्रतिभवंभवदुःखहेतुः ॥33॥

धन्यास्त एव भुवनाधिपयेत्रिसन्ध्य
माराध्यन्तिविधिवद्विधुतान्यकृत्याः।
भक्त्योल्लसत्पुलकपक्ष्मलदेहदेशाः,
पादद्वयंतवविभो! भुविजन्मभाजः ॥34॥

अस्मिन्नपारभव वारिनिधौ मुनीश!,
मन्ये न मे श्रवणगोचरतां गतोऽसि।
आकर्णिते तु तवगोत्रपवित्रमन्त्रे,
किंवाविपद्विषधरी सविधंसमेति ॥35॥

जन्मान्तरेऽपि तव पादयुगं न देव!,
मन्ये मया महितमीहितदानदक्षम्।
तेनेहजन्मनिमुनीश! पराभवानां,
जातोनिकेतनमहंमथिताशयानाम् ॥36॥

नूनं न मोहतिमिरावृतलोचनेन,
पूर्वं विभो सकृदपि प्र-विलोकितोऽसि।
मर्माविभोविधुरयन्तिहिमामनर्थाः,
प्रोद्यत्प्रबन्धगतयः, कथमन्यथैते ॥37॥

आकर्णितोऽपिमहितोऽपिनिरीक्षितोपि,
नूनंनचेतसिमयाविधृतोऽपिभक्तया।
जातोऽस्मितेनजनबान्धवदुःखपात्रं,
यस्मात्क्रियाःप्रतिफलन्तिनभावशून्यः ॥38॥

त्वंनाथ! दुःखिजनवत्सल! हेशरण्य!,
कारुण्यपुण्यवसते! वशिनां वरेण्य।
भक्त्यानतेमयिमहेश! दयां विधाय,
दुःखांकुरोद्दलनतत्परतांविधेहि ॥39॥

निःसख्य-सार-शरणंशरणंशरण्य,
मासाद्यसादितरिपु-प्रथितावदानम्।
त्वत्पादपङ्कजमपिप्रणिधानवन्ध्यो,
वन्ध्योस्मि चेद्भुवनपावनहाहतोऽस्मि ॥40॥

देवेन्द्रवन्द्य! विदिताखिलवस्तुसार,
संसारतारक विभो! भुवनाधिनाथ।
त्रायस्वदेवकरुणाहृद मांपुनीहि,
सीदन्तमद्यभयदव्यसनाम्बुराशेः ॥41॥

यद्यस्ति नाथ! भवदङ्घ्रि-सरोरुहाणां,
भक्तेः फलंकिमपिसंतत- सञ्चितायाः।
तन्मेत्वदेकशरणस्यशरण्यभूयाः,
स्वामी! त्वमेवभुवनेऽत्रभवान्तरेऽपि ॥42॥

इत्थंसमाहितधियोविधिवज्जिनेन्द्र!,
सांद्रोल्लसत्पुलककञ्चुकिताङ्गभागाः।
त्वद्बिम्बनिर्मलमुखाम्बुजबद्धलक्ष्या,
येसंस्तवंतवविभो? रचयन्तिभव्याः ॥43॥

जननयन''कुमुदचन्द्र''प्रभास्वराः स्वर्गसम्पदोभुक्त्वा।
ते विगलितमलनिचया अचिरान्मोक्षं प्रपद्यन्ते ॥44॥

(इतिश्री कल्याणमंदिर स्तोत्र)

समवशरण की आठ भूमियाँ

प्रथम भूमि जिनेन्द्र मंदिर, द्वितीय भूमि सुखातिका।
तृतीय भूमि फूलवाड़ी, चौथी भूमि उपवन वाटिका।
पुनि पाँचवी में ध्वजा सोहें, कल्पवृक्ष छटी लसें।
सातवी में तूप मंदिर, आठवी में सभा लसें॥

श्री पार्श्वनाथ स्तोत्र

भुजंग-प्रयात छन्द

नरेन्द्रं फणीन्द्रं सुरेन्द्रं अधीशं, शतेन्द्रं सु पूजैं भजैं नाय शीशं।
मुनीन्द्रं गणेन्द्रं नमों जोड़ि हाथं, नमो देव-देवं सदा पार्श्वनाथं॥1॥

गजेन्द्रं मृगेन्द्रं गह्यो तू छुड़ावै, महा आगतैं नागतैं तू बचावै।
महावीर तैं युद्ध में तू जितावै, महा रोगतैं बंधतैं तू छुड़ावै॥2॥

दुखी दुःख हर्ता सुखी सुक्ख कर्ता, सदा सेवकों को महानंद भर्ता।
हरे यक्षराक्षस भूतं पिशाचं, विषं डाकिनी विघ्न के भय अवाचं॥3॥

दरिद्रीन को द्रव्य के दान दीने, अपुत्रीन को तू भले पुत्र कीने।
महासंकटों से निकारै विधाता, सबै संपदा सर्व को देहि दाता॥4॥

महा चोर को वज्र को भय निवारे, महापौन के पुंजते तू उबारै।
महाक्रोध की अग्नि को मेघधारा, महालोभ-शैलेश को वज्रभारा॥5॥

महा मोह अंधेर को ज्ञान भानं, महा-कर्म कांतार को दौ प्रधानं।
किये नाग नागिन अधोलोक स्वामी, हर्यो मान तू दैत्य को हो अकामी॥6॥

तुही कल्पवृक्षं तुही कामधेनं, तुही दिव्य चिंतामणी नाग एनं
पशूनर्क के दुःखतै तू छुड़ावै, महास्वर्गतैं मुक्ति में तू बसावै॥7॥

करै लोह को हेम पाषाण नामी, रटैनाम सो क्यों न हो मोक्षगामी।
करै सेव ताकी करैं देव सेवा, सुनै वैन सोही लहै ज्ञान मेवा॥8॥

जपै जाप ताको नहीं पाप लागै, धरे ध्यान ताकै सबै दोष भागै।
बिना तोहि जाने धरे भव घनेरे, तुम्हारी कृपातैं सरैं काज मेरे॥9॥

दोहा

गणधर इन्द्र न कर सकैं, तुम विनती भगवान।
'द्यानत' प्रीति निहार कैं, कीजे आप समान॥10॥

श्री चन्द्रप्रभ चालीसा (तिजारा)

वीतराग सर्वज्ञ जिन, जिनवाणी को ध्याय,
लिखने का साहस करूँ, चालीसा सिर नाय।
देहरे के श्री चन्द्र को, पूजों मन-वच-काय,
रिद्धि सिद्धि मंगल करें, विघ्न दूर हो जाय॥

॥चौपाई॥

जय श्रीचन्द्र दया के सागर, देहरे वाले ज्ञान उजागर।
शांति छवि मूरति अति प्यारी, भेष दिगम्बर धारा भारी॥

नासा पर है दृष्टि तुम्हारी, मोहनी मूरति कितनी प्यारी।
देवों के तुम देव कहावो, कष्ट भक्त के दूर हटावो॥

समन्तभद्र मुनिवर ने ध्याया, पिंडी फटी दर्श तुम पाया।
तुम जग में सर्वज्ञ कहावो, अष्टम तीर्थङ्कर कहलावो॥

महासेन के राजदुलारे, मात सुलक्षणा के हो प्यारे।
चन्द्रपुरी नगरी अति नामी, जन्म लिया चन्द्रप्रभ स्वामी॥

पौष वदी ग्यारस को जन्मे, नर नारी हरषे तब मन में।
काम क्रोध तृष्णा दुखकारी, त्याग सुखद मुनिदीक्षा धारी॥

फाल्गुन वदी सप्तमी भाई, केवलज्ञान हुआ सुखदाई।
फिर सम्मेदशिखर पर जाके, मोक्ष गये प्रभु आप वहाँ से॥

लोभ मोह और छोड़ी माया, तुमने मान कषाय नसाया।
रागी नहीं, नहीं तू द्वेषी, वीतराग तू हित उपदेशी॥

पंचमकाल महा दुखदाई, धर्म-कर्म भूले सब भाई।
अलवर प्रान्त में नगर तिजारा, होय जहाँ पर दर्शन प्यारा॥

उत्तर दिशि से देहरा माहीं, वहाँ आकर प्रभुता प्रगटाई।
सावन सुदी दशमी शुभनामी, आन पधारे त्रिभुवन स्वामी॥

चिह्न चन्द्र का लख नर-नारी, चन्द्रप्रभ् की मूरति मानी।
मूर्ति आपकी अति उजियाली, लगता हीरा भी है जाली॥

अतिशय चन्द्रप्रभु का भारी, सुनकर आते यात्री भारी।
फाल्गुन सुदी सप्तमी प्यारी, जुड़ता है मेला यहाँ भारी।

कहलाने को तो शशिधर हो, तेजपुञ्ज रवि से बढ़कर हो॥
नाम तुम्हारा जग में साँचा, ध्यावत भागत भूत पिशाचा।

राक्षस भूत प्रेत सब भागे, तुम सुमरत भय कभी न लागे।
कीर्ति तुम्हारी है अति प्यारी, गुण गाते नित नर और नारी॥

जिस पर होती कृपा तुम्हारी, संकट झट कटता है भारी।
जो भी जैसी आस लगाता, पूरी उसे तुरत कर पाता।।

दुखिया दर पर जो आते हैं, संकट सब खोकर जाते हैं।
खुला सभी को प्रभु द्वार है, चमत्कार को नमस्कार है॥

अन्धा भी यदि ध्यान लगावे, उसके नेत्र शीघ्र खुल जावे।
बहरा भी सुनने लग जावे, पगले का पागलपन जावे॥

अखंडज्योति का घृतजो लगावे, संकट उसका सब कट जावे।
चरणों की रज अति सुखकारी, दुख दरिद्र सब नाशन हारी॥

चालीसा जो मन में ध्यावे, पुत्र पौत्र सब सम्पति पावै।
पार करो दुखियों की नैया, स्वामी तुम बिन नहीं खिवैया।
प्रभु मैं तुमसे कुछ नहीं चाहूँ, दर्श तिहारा निशदिन पाऊँ॥

॥दोहा॥

करूँ वन्दना आपकी, श्री चन्द्रप्रभ जिनराज।
जंगल में मंगल कियो, रखो 'सुरेश' की लाज॥

जाप—ॐ ह्रीं श्रीचन्द्रप्रभ जिनेन्द्राय नमः।

श्री शान्तिनाथ चालीसा

(दोहा)

शांतिनाथ तीर्थेश का, चालीसा सुखकार।
मोक्ष प्राप्ति के लिए, कहूं सुनो चित्त धार।।
चालीसा चालीस दिन, कह चालीसहीं बार।
बढ़े जगत सम्पति सुमति, अनुपम शुद्ध विचार।।

(चौपाई)

शांतिनाथ तुम शांतिनायक, पंचम चक्री जग सुखदायक।
तुम्हीं सोलहवें हो तीर्थंकर, पूजें देव भूप सुर गणधर।
पंचाचार गुणों के धारी, कर्म रहित आठों गुणकारी।
तुमने मोक्ष मार्ग दर्शाया, निज गुण ज्ञान भानु प्रकटाया।
स्याद्वाद विज्ञान उचारा, आप तिरे औरन को तारा।
ऐसे जिनको नमस्कार कर, चढ़ूं सुमति शांति नौका पर।
सूक्ष्म सी कुछ गाथा गाता, हस्तिनापुर है जग विख्याता।
विश्वसेन पितु ऐरा माता, सुर तिहूँ काल रत्न वर्षाता।
साढ़े दस करोड़ रत्न नित गिरते, ऐरा माँ के आंगन भरते।
पन्द्रह माह तक हुई लुटाई, ले गये भर-भर लोग लुगाई।
भादों बदि सप्तमी गर्भते, उत्तम सोलह स्वप्ने आते।
सुर चारों कायों के आये, नाटक गायन नृत्य दिखायें।
सेवा में जो रही देवियां, रखती सुख माँ को दिन रतियाँ।
जन्म जेठ वदी चौदश के दिन, घंटे अनहद बजे गगन घन।

तीनों ज्ञान लोक सुखदाता, मंगल सकल हर्ष गुण लाता।
इन्द्र देव सब सेवा करते, विद्या कला ज्ञान गुण बढ़ते।
अंग अंग सुन्दर मनमोहन, रत्न जड़ित तन वस्त्राभूषण।
बल विक्रम यश वैभव काजा, जीते छहों खण्ड के राजा।
न्यायवान दानी उपकारी, परजा हर्षित निर्भय सारी।
दीन अनाथ दुःखी नहीं कोई, होती उत्तम वस्तु वोई।
ऊँचे आप आठसौ गज थे, वदन स्वर्ण अरू चिन्ह हिरण थे।
शक्ति ऐसी थी जिस्मानी, वरी हजार छानवें रानी।
लख चौरासी हाथी रथ थे, घोड़े करोड़ अठारह शुभ थे।
सहस पचास भूप के राजन, अरबों सेवा में सेवक जन।
तीन करोड़ थी सुन्दर गईयां, इच्छा पूर्ण करे नौ निधियां।
चौदह रत्न व चक्र सुदर्शन, उत्तम भोग वस्तुएँ अनगिन।
थी अड़तालीस करोड़ ध्वजाऐं, कुण्डल चन्द्र सूर्य सम छाये।
अमृत गर्भ नाम का भोजन, लाजवाब ऊँचा सिंहासन।
लाखों मन्दिर भवन सुसज्जित, नार सहित तुम जिनमें शोभित।
जितना सुख था शांतिनाथ को, अनुभव होता ज्ञानवान को।
चलैं जीव जो त्याग धर्म पर, मिलें ठाठ उनको ये सुखकर।
पच्चीस सहस वर्ष सुख पाकर, उमड़ा त्याग हितकरी तुम पर।
जग तुमने क्षण भंगुर जाना, वैभव सब सुपने सम माना।
ज्ञानोदय जो हुआ तुम्हारा, पाये शिवपुर भी संसारा।
कामी मनुज काम को त्यागें, पापी पाप कर्म से भागें।
सुत नारायण तख्त बिठाया, तिलक चढ़ा अभिषेक कराया।
नाथ आपको बिठा पालकी, देव चले ले राह गगन की।
इत उत इन्दर चंवर ढुरावे, मंगल गाते वन पहुँचावे।
भेष दिगम्बर अपना कीना, केश लोंच पंच मुष्टी कीना।

पूर्ण हुआ उपवास छटा जब, शुद्धाहार चले लेने तब।
कर तीनों वैराग चिन्तवन, चारों ज्ञान किये सम्पादन।
चार हाथ मग लखते चलते, षट कायिक की रक्षा करते।
मनहर मीठे वचन उचरते, प्राणिमात्र का दुःखड़ा हरते।
नाशवान काया यह प्यारी, इससे ही यह रिश्तेदारी।
इससे मात पिता सुतनारी, इसके कारण फिरो दुःखारी।
गर यह तन ही प्यार लगता, तरह-तरह का रहता मिलता।
तज नेहा काया माया का, जो भरतार मोक्ष दारा का।
विषय भोग सब दुःख का कारण, त्याग धर्म ही शिव के साधन।
निधि लक्ष्मी जो कोई त्यागे, मोक्ष-लक्ष्मी पीछे भागे।
प्रेम रूप जो इसे बुलावे, उसके पास कभी नहीं आवे।
करने को जग का निस्तारा, छहों खण्ड का राज विसारा।
देवी देव सुरासुर आये, उत्सव तप कल्याण मनाये।
पूजन नृत्य करें नत मस्तक, गाई महिमा प्रेम पूर्वक।
करते तुम आहार जहाँ पर, देव रतन वर्षाते उस घर।
जिस घर दान पात्रा को मिलता, घर वह नित्य फूलता फलता।
आठों गुण सिद्धों के ध्याकर, दशों धर्म चित्त काय तपाकर।
केवल ज्ञान आपने पाया, लाखों को हैं पार लगाया।
समवशरण में ध्वनि खिराई, प्राणी मात्र समझ में आई।
समवशरण प्रभु का जहाँ जाता, योजन चार शतक सुखपाता।
फूल फलादिक मेवा आती, हरी भरी खेती लहराती।
सेवा में छत्तीस थे गणधर, महिमा मुझसे क्या हो वर्णन।
नकुल सर्प मृग के हरि प्राणी, प्रेम सहित मिल पीते पानी।
आप चतुर्मुख विराजमान थे, मोक्ष मार्ग को दिव्यवान थे।
करते आप विहार गगन में, अन्तरिक्ष थे समवशरण में।

तीनों जग आनन्दित कीने, हित उपदेश हजारों दीने।
पौने लाख वर्ष हित कीना, उम्र रही जब एक महीना।
श्री सम्मेद शिखर पर आये, अजर अमर पद तुमने पाये।
निस्पृह कर उद्धार जगत के, गये मोक्ष तुम लाख वर्ष के।
आंक सकें क्या छवि ज्ञानकी, जोत सूर्य सम अटल आपकी।
बहे सिन्धु सम गुणकी धारा, रहे 'सुमत' चित नाम तुम्हारा।

सोरठा

नित चालीस ही बार, पाठ करे चालीस दिन।
खेये सुगन्ध आपार, शांतिनाथ के सामने।।
होवे चित्त प्रसन्न, भय चिंता शंका मिटे।
पाप होय सब हन्न बल, विद्या वैभव बढ़े।।

जिनबिम्ब दर्शन से सम्यकदर्शन

"जिणबिंब दंसणेण णिधत्तणिकाचिदस्स
वि मिच्छत्तादि कम्म कलावस्स स्वयं दसणादो।"

(धवल पु. 6, पृ. 427, 28)

अर्थ—जिनबिम्ब के दर्शन से निधत्त और निकाचित रूप भी मिथ्यात्व आदि कर्म-कलाप का क्षय देखा जाता है, जिससे जिनबिम्ब का दर्शन प्रथम सम्यक्त्व की उत्पत्ति का कारण होता है।

श्री महावीर चालीसा

शीश नवा अरिहन्त को सिद्धन करूँ प्रणाम।
उपाध्याय आचार्य का, ले सुखकारी नाम॥
सर्व साधु और सरस्वती, जिन मंदिर सुखकार।
महावीर भगवान को, मन मन्दिर में धार॥

जय महावीर दयालु स्वामी, वीर प्रभु तुम जग में नामी।
वर्धमान है नाम तुम्हारा, लगे हृदय को प्यारा-प्यारा॥

शांति छवि और मोहनी मूरत, शान हँसीली सोहनी सूरत।
तुमने वेष दिगम्बर धारा, कर्म शत्रु भी तुमसे हारा॥

क्रोध मान और लोभ भगाया, माया ने तुमसे डर खाया।
तू सर्वज्ञ सर्व का ज्ञाता, तुझको दुनियाँ से क्या नाता॥

तुझमें नहीं राग और द्वेषा, वीतराग तू हित उपदेशा।
तेरा नाम जगत में सच्चा, जिसको जाने बच्चा-बच्चा॥

भूत प्रेत तुमसे भय खावें, व्यन्तर राक्षस सब भग जावें।
महा व्याध मारी न सतावे, महा विकराल काल डर खावे॥

काला नाग होय फनधारी, या हो शेर भयंकर भारी।
ना हो कोई बचानेवाला, स्वामी तुम्हीं करो प्रतिपाला॥

अग्नि दवानल सुलग रही हो, तेज हवा से भड़क रही हो।
नाम तुम्हारा सब दुख खोवे, आग एकदम ठण्डी होवे॥

हिंसामय था भारत सारा, तब तुमने कीना निस्तारा।
जन्म लिया कुण्डलपुर नगरी, हुई सुखी तब प्रजा सगरी॥

सिद्धारथ जी पिता तुम्हारे, त्रिशला की आँखों के तारे।
छोड़ सभी झंझट संसारी, स्वामी हुए बाल ब्रह्मचारी॥

पंचम काल महा दुखदाई, चाँदनपुर महिमा दिखलाई।
टीले में अतिशय दिखलाया, एक गाय का दूध गिराया॥
सोच हुआ मन में ग्वाले के, पहुँचा एक फावड़ा लेके।
सारा टीला खोद गिराया,तब तुमने दर्शन दिखलाया॥
जोधराज को दुख ने घेरा, उसने नाम जपा जब तेरा।
ठण्डा हुआ तोप का गोला, तब सब ने जयकारा बोला॥
मंत्री ने मन्दिर बनवाया, राजा ने भी दरब लगाया।
बड़ी धर्मशाला बनवाई, तुमको लाने की ठहराई॥
तुमने तोड़ी बीसों गाड़ी, पहिया मसका नहीं अगाड़ी।
ग्वाले ने जो हाथ लगाया, फिर तो रथ चलता ही पाया॥
पहिले दिन वैशाख वदी के, रथ जाता है तीर नदी के।
मीना गूजर सब ही आते, नाच-कूद सब चित्त उमगाते॥
स्वामी तुमने प्रेम निभाया, ग्वाले का तुम मान बढ़ाया।
हाथ लगे ग्वाले का जब ही, स्वामी रथ चलता है तब ही॥
मेरी है टूटी सी नैया, तुम बिन कोई नहीं खिवैया।
मुझ पर स्वामी जरा कृपा कर, मैं हूँ प्रभु तुम्हारा चाकर॥
तुमसे मैं अरु कछु नहीं चाहूँ, जन्म-जन्म तेरे दर्शन पाऊँ।
चालीसे को 'चन्द्र' बनावे, वीर प्रभु को शीश नमावे॥

॥सोरठा॥

नित चालीसहिं बार, पाठ करे चालीस दिन।
खेय सुगन्ध अपार, वर्धमान के सामने॥
होय कुबेर समान, जन्म दरिद्री होय जो।
जिसके नहिं सन्तान, नाम वंश जग में चले॥

जाप - ॐ ह्रीं अर्हं श्री महावीर जिनेन्द्राय नमः।

श्री गणधर चालीसा

(आचार्यश्री विमर्शसागर कृत)

वीतराग गणपति नमूँ, दीपावलि दिन आज।
ज्ञान ज्योति से मोह का, मिट जाये साम्राज॥
दीपावलि का शुभ दिवस, चालीसा जो ध्याय।
चारों गति से छूटकर, पंचम गति को पाय॥

जय जय जय श्री गणधर देवा, सुर नर उरग करें नित सेवा।
ऋद्धि-सिद्धि सब सुख के दाता, जगत आपकी महिमा गाता॥

गण स्वामी गणपति कहलाते, गण के ईश गणेश कहाते।
नाथ! आप गणनाथ कहाते, गण धरते गणधर कहलाते॥

अष्ट ऋद्धियों के हो स्वामी, तीर्थंकर के हो अनुगामी।
अक्षर और अनक्षर भाषा, बहुजन मुख निर्गत बहुभाषा॥

श्रोतृ ऋद्धि से आप जानते, जन-जन भाषा में बखानते।
चारण गुण से गगन विचरते अणिमा आदि आठ गुण धरते॥

ऋषभदेव गणधर चौरासी, अजितनाथ नब्बे सन्यासी।
शतक एक पच है संभव विभु, एक शतक त्रय अभिनंदन प्रभु॥

सुमतिनाथ पंचम तीर्थंकर, एक शतक सोलह जिन गणधर।
शतक एक ग्यारह गण स्वामी, पद्मप्रभु के हैं जिनगामी॥

प्रभु सुपार्श्व गणधर पिचानवे, चंद्रप्रभु गणधर तिरानवे।
सुविधिनाथ गणधर अट्ठासी, प्रभु शीतल गणधर सत्तासी।

प्रभु श्रेयान्स गणनाथ सतत्तर, वासुपूज्य प्रभु छ्यासठ गणधर।
विमलनाथ जिन गणधर पचपन, अर्धशतक गणि है अनंत जिन॥

तैतालीस धर्म गणनाथा, छत्तीस शांति झुकावें माथा।
कुंथुनाथ गणधर पैंतीसा, अरहनाथ गणधर जिन तीसा॥

मल्लिनाथ अठवीस गणेशा, मुनिसुव्रत अट्ठारह ईशा।
हैं सत्रह गणपति नमिनाथा, ग्यारह नेमिनाथ गणनाथा॥
पार्श्वनाथ गणधर दस स्वामी, सन्मति ग्यारह गणधर नामी।
एक हजार चार सौ उनसठ, सब गणधर हैं भवसागर तट॥
समवसरण में अहा विराजे, द्वादश सभा आपसे साजै।
दिव्यध्वनि को आप झेलते, द्वादशांग में आप खेलते॥
सब जीवों की शंका हरते, किन्तु हृदय शंका न धरते।
मोक्षमार्ग सबको दिखलाते, चारों ही अनुयोग सुनाते॥
निश्चय से मुक्ति पथ गाया, प्रभु साधन व्यवहार बताया।
शुद्धातम का अनुभव करते, गुणस्थान में झूला करते॥
जो भवि तुम्हें हृदय से ध्याता, नाथ! आप सम ही बन जाता।
कर्मनाश विधि तुमने पाई, चेतनता चिद्रूप समाई॥
धन्य-धन्य प्रभु गौतमस्वामी, वीतरागता अति अभिरामी।
महावीर मुक्ति पद पाया, तुमने केवलज्ञान जगाया॥
मावस में भी पूनम आई, तीन लोक में खुशियाँ छाईं।
देवों ने तब उत्सव कीना, धन्य हुआ कार्तिकी महीना॥
भारत में दीपावलि आई, गुरु-शिष्य की महिमा गाई।
प्रभु ने मोक्षलक्ष्मी पाई, ज्ञानलक्ष्मी तुम प्रगटाई॥
मोक्ष-ज्ञान लक्ष्मी जो ध्याता, वो इसभव परभव सुख पाता।
दीन कोई धन लक्ष्मी ध्यावे, दुःखकारी मिथ्यात्व बढ़ावे॥
भव-भव प्रभु हम तुमकों ध्यावें, भव-भव के दुःख शीघ्र नशावें।
हो सम्यग्दर्शन सुखकारी, चरण-शरण यह विनत हमारी॥

गणधर चालीसा सदा, जो भवि पढ़े-पढ़ाय।
रोग-शोक संकट कटे, दीपावलि शुभ पाय॥
महावीर की आरती, गणधर प्रभु गुणगान।
दीपावलि को जो करे, हो 'विमर्श' वरदान॥

श्रमणाचार्य श्री विमर्शसागर चालीसा

(रचियता : मुनि विचिन्त्यसागर)

दोहा

गुरु विरागसागर चरण, वंदन बारम्बार।
सच्ची श्रद्धा भक्ति से, गुरु विमर्श उर धार।।
शब्दों की सुमनावली, चरणों गुरु गुणगान।
चालीसा में कर रहे, गुरु 'विमर्श' यशगान।

चौपाई

छत्तिस गुण से मंडित गुरुवर, विमर्शसागर सूरी यतिवर।
परम वीतरागी जिन मुद्रा, दर्शन से टूटे चिर निद्रा।।
मार्ग शीर्ष वदि पंचम आई, गुरुवार का दिन सुखदाई।
पन्द्रह ग्यारह सन् तेहत्तर, जन्मे गुरु बुन्देली भू पर।।
नगर जतारा बजी बधाई, लखकर माँ भगवति मुस्काई।
पुत्र रतन तुमसा जब पाया, पिता सनत का मन हर्षाया।।
गौर वर्ण मूरत मनहारी, लगा मुक्ति वधु हुई तुम्हारी।
लेकिन जब तरुणाई आई, राग रंग परिणति मन भाई।
गुरु विराग का संग मनोहर, हो जैसे अध्यात्म धरोहर।
नगर जतारा दर्शन पाया, मन ही मन वैराग्य जगाया।।
फरवरि सत्ताइस पिचानवे, सिद्ध क्षेत्र आहार जानवे।
शांतिनाथ की मूरत प्यारी, गुरुवर बने बाल ब्रह्मचारी।।
तेइस फरवरि छियानिव आया, श्री गुरु से ऐलक पद पाया।
पूर्व नाम राकेश तुम्हारा, गूँजा अब 'विमर्श' जयकारा।
गुरु विराग दें शिक्षा-दीक्षा, पूर्व कर्म ले रहे परीक्षा।
अंतराय परीषह बन आये, 'अंतराय सागर' कहलाये।।
चतुर्मास सत्तानिव आया, भिण्ड नगर में उत्सव छाया।
जीवन है पानी की बूँद जब, कालजयी रचना प्रगटी तब।।

गुरुवर महाकवि कहलाये, महाकाव्य पहिचान बताये।
कमर लँगोटी लगती भारी, करली जिन दीक्षा तैयारी।।
पौषबदी एकादश आई, सोमवार मुनि दीक्षा पाई।
चौदह बारह सन् अठानवे, क्षेत्र वरासो भिण्ड जानवे।।
अध्यातम की ज्योति जलाई, समयसार की महिमा गाई।
वाणी सुन सब बने मुमुक्षु, करें प्रार्थना बनने भिक्षु।।
गुरु विराग ने क्षमता जानी, 'सुरीपद' देने की ठानी।
दो हज्जार पाँच सन् आया, गुरु विराग 'सूरीपद' गाया।
विद्वत जन आचार्य पुकारें, निस्पृह गुरुवर न स्वीकारे।
मन में था संकल्प निराला, गुरु बिन पद नहीं लेने वाला।।
वह भी शीघ्र घड़ी शुभ आई, गुरु की आज्ञा गुरु ने पाई।
राजस्थान धरा अति पावन, नगर बाँसवाड़ा का आँगन।
बारह-बारह दो हजार दस, रविवार दिन भक्त कई सहस।
मार्गशीर्ष सुदि सप्तमि उत्सव, सूरीपद का महामहोत्सव।।
गुरु विराग ने 'सूरि' बनाया, जन-जन ने जयकार लगाया।
गुरुवर जिस पथ राह गुजरते, जिनशासन के मेले भरते।।
'योगसार' प्राभृत है नीका, 'विमर्शोदयी' प्राकृत टीका।
लिख गुरु ने इतिहास रचाया, जिनश्रुत का सम्मान बढ़ाया।।
आगम अध्यातम का संगम, गुरुचर्या में दिखता हरदम।
शिष्यों को सन्मार्ग दिखाते, अनुशासन का पाठ सिखाते।।
शांत, सहज, अति सरल स्वभावी, हों गुरुवर तीर्थंकर भावी।
जब तक हैं ये चाँद सितारे, चिर आयुष हों गुरु हमारे।।

दोहा

गुरु चालीसा भाव से, पढ़े सुनें चित लाय।
परम यशस्वी हो यहाँ, परभव में यश पाय।।
गुरु भक्ति गुरु प्रार्थना, निश्रेयस सुखदाय।
जनम मरण को नाशकर, नर 'विचिन्त्य' फल पाय।।

जिनवाणी स्तुति

चरणों में आ पड़ा हूँ, हे द्वादशांग वाणी।
मस्तक झुका रहा हूँ, हे द्वादशांग वाणी॥टेक॥

मिथ्यात्व को नशाया, निज तत्त्व को बताया।
आपा-पराया भासा, हो भानु के समानी॥1॥

षड्द्रव्य को बताया, स्याद्वाद को जताया।
भव-फन्द से छुड़ाया, सच्ची जिनेन्द्र वाणी॥2॥

रिपु चार मेरे मग में, जन्जीर डाले पग में।
ठाड़े हैं मोक्षमग में, तकरार मोसों ठानी॥3॥

दे ज्ञान मुझको माता, इस जग से तोड़ूँ नाता।
होवे सुदर्शन साता, नहिं जग में तेरी सानी॥4॥

जिनवाणी स्तुति

सांची तो गंगा यह वीतराग वाणी।
अविच्छिन्न धारा निजधर्म की कहानी॥टेक॥

जामें अति ही विमल अगाध ज्ञान-पानी।
जहाँ नहीं संशयादि पंक की निशानी॥1॥

सप्तभंग जहँ तरंग उछलत सुखदानी।
सन्त चित्त मरालवृन्द रमैं नित्य ज्ञानी॥2॥

जाके अवगाहन तैं शुद्ध होय प्रानी।
'भागचन्द' निहचै घटमाँहि या प्रमानी॥3॥

जिनवाणी स्तुति

धन्य धन्य वीतराग वाणी, अमर तेरी जग में कहानी।
चिदानन्द की राजधानी, अमर तेरी जग में कहानी॥टेक॥

उत्पाद-व्यय अरु ध्रौव्य स्वरूप, वस्तु बखानी सर्वज्ञ भूप।
स्याद्वाद तेरी निशानी, अमर तेरी जग में कहानी॥1॥

नित्य-अनित्य अरु एक-अनेक, वस्तुकथंचित्‌भेद-अभेद।
अनेकान्तरूपा बखानी, अमर तेरी जग में कहानी॥2॥

भाव शुभाशुभ बंधस्वरूप, शुद्ध चिदानंदमय मुक्तिरूप।
मारग दिखाती है वाणी, अमर तेरी जग में कहानी॥3॥

चिदानंद चैतन्य आनंद धाम, ज्ञानस्वभावी निजातम राम।
स्वाश्रय से मुक्ति बखानी, अमर तेरी जग में कहानी॥4॥

जिनवाणी स्तुति

जिनवाणी मोक्ष नसैनी है, जिनवाणी॥टेक॥
जीव कर्म के जुदा करन को, ये ही पैनी छैनी है॥जिनवाणी॥1॥

जो जिनवाणी नित अभ्यासै, वो ही सच्चा जैनी है॥जिनवाणी॥2॥

जो जिनवाणी उर न धरत है, सैनी होके असैनी है॥जिनवाणी॥3॥

पड़ो सुनो ध्यावो जिनवाणी, जो सुख शांति लेनी है॥जिनवाणी॥4॥

जिनवाणी स्तुति

जिनवाणी माता दर्शन की बलिहारियाँ॥टेक॥

प्रथम देव अरहन्त मनाउँ, गणधर जी को ध्याउँ।
कुन्दकुन्द आचार्य हमारे, तिनको शीश नवाऊँ॥जिनवाणी॥9॥

योनि लाख चौरासी माँहीं, घोर महादुख पायो।
ऐसी महिमा सुनकर माता, शरण तुम्हारी आयो॥ जिनवाणी॥2॥

जाने थारो शरणा लीनों, अष्ट कर्म क्षय कीनो।
जामन-मरण मेंट के माता, मोक्ष महापद दीनों॥जिनवाणी॥3॥

ठाड़े श्रावक अरज करत हैं, हे जिनवाणी माता।
द्वादशाङ्ग चौदह पूरब कौ, करदो हमको ज्ञाता॥जिनवाणी॥4॥

जिनवाणी स्तुति

हमें निज धर्म पर चलना, सिखाती रोज जिनवाणी।
सदा शुभ आचरण करना, सिखाती रोज जिनवाणी॥

चौरासी लाख योनि में भटक नर जन्म पाया हैं
निधि निज भूल नहिं जावे, सिखाती रोज जिनवाणी॥

ग्रहण करना नहीं करना, कि क्या निज क्या पराया है।
भेद विज्ञान इसका भी सिखाती रोज जिनवाणी।।

धनिक निर्धन स्वजन परिजन कि ज्ञानी है या अज्ञानी।
भेद तज मार्ग सुखकारी सिखाती रोज जिनवाणी॥

जिन्हें संसार सागर से उतरभव पार जाना है।
उन्हें सुख के किनारे पर लगाती रोज जिनवाणी॥

सत्य सुख सार पा इसमें पतित जन पार जाते है।
शरण 'दोषी' यही तेरी है तारणहार जिनवाणी॥

हमें संसार सागर में रूलाते कर्म हैं आठों।
करें किस भांति इनका क्षय सिखाती रोज जिनवाणी॥

करें जो भव्यमन निर्मल पठन कर शीघ्र तिर जावें।
मार्ग शिवपुर में जाने का सिखाती रोज जिनवाणी॥

जिनवाणी स्तुति

मिथ्यातम नाशवे को ज्ञान के प्रकाशवे को।
आपा परभासवे को, भानु सी बखानी है॥

छहों द्रव्य जानवे को, बन्ध विधि भानवै को।
स्व पर पिछानवै को परमप्रमानी है॥

अनुभौ बतायवे को जीव को जतायवे को।
काहू न सतायवे को, भव्य उर आनी है।
जहाँ तहाँ तारवे को, पार के उतारवे को।
सुख विस्तारवे को यह ही जिनवाणी है॥

हे जिनवाणी भारती तोहि जपूँ दिन रैन।
जो तेरी शरणा गहै, सो पावै सुख चैन॥
जिनवाणी के ज्ञान से सूझे लोकालोक।
सो वाणी मस्तक नमूँ सदा देत हूँ धोक॥

वीर हिमाचल तै निकसी, गुरु गौतम के मुख कुंडढरी है।
मोह महाचल भेद चली, जग की जड़ता तप दूर करी है॥
ज्ञान पयोनिधि मांहि रली, बहुभंग तरंगनि सों उछरी है।
ता शुचि शारद गंग नदी प्रति में अंजुलिकर शीश धरी है॥1॥

या जग मन्दिर में अनिवार अज्ञान अंधेर छयो अति भारी।
श्री जिनकी धुनि दीप शिखा सम जो नहिं होत प्रकाशन-हारी॥
तो किस भाँति पदारथ पाँति, कहाँ लहते रहते अविचारी।
या विधि संत कहैं धनि हैं धनि हैं जिन बैन बड़े उपकारी॥2॥

जिनवाणी स्तुति

(रचयिता – आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज)

माँ–ओ माँ, माँ–ओ माँ–2
भव सागर से तारण हारी, ओ जिनवाणी माँ–2
तू है हमको सबसे प्यारी, ओ जिनवाणी माँ
माँ–ओ माँ, माँ–ओ माँ–2
शरणा में तेरी, जो भी आता है
सच्ची सुखशान्ति, वो नर पाता है
खुशियाँ मिलती हैं, जीवन में हरपल
यादें रहती हैं, चेतन की पलपल
भव–भव में भी हो उपकारी, ओ जिनवाणी माँ–2
तू है हमको सबसे प्यारी, ओ जिनवाणी माँ
माँ–ओ माँ, माँ–ओ माँ–2
सात तत्व, छह द्रव्य, महिमा बतलाती
तू ज्ञायक प्रभु है, हमको सिखलाती
बंध–आतम में, अन्तर बतलाया
भेदज्ञान करना, हमको सिखलाया
बना दिया है आत्मबिहारी, ओ जिनवाणी माँ
तू है हमको सबसे प्यारी, ओ जिनवाणी माँ
माँ–ओ माँ, माँ–ओ माँ–2
जन्म–जरा मृत्यु, रोग नशाती है
आतम अनुभव का, मार्ग दिखाती है
मां जग में तुझ सा, कोई न हितकारी
वीतराग विज्ञान तेरी बलिहारी
तीर्थंकर मुख से अवतारी, ओ जिनवाणी माँ
आतम अनुभव की लोरी गाती हो

मुनिराज वन्दना

पाप पंथ परिहरे, मोक्ष पंथ पगधरे।
अभिमान नहीं करें, निंदा को निवारी है।
छोड्यो है संसारी संग, ज्ञानी साथे राचो रंग।
सुमति को करे संग, बड़ो उपकारी है॥1॥

मुनिमन निर्मल जैसो है गंगा को जल।
काटत करमफंद, नव-तत्त्व धारी है।
संयम सों करे संग, बारा विधि धरे तप।
ऐसे मुनिराज ताको वन्दना हमारी है॥2॥

भजन

(रचयिता—आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज)

नहीं समझते नहीं जानते, हम सब बच्चे हैं नादान।
कैसे तुम्हें मनाएँ भगवन्, हम सब बच्चे हैं अनजान॥

नहीं समझते...

माँ जिनवाणी कहती हमसे, पढ़ने से बनते विद्वान।
ज्ञान में सोओ-ज्ञान में जागो, बन जाओगे तुम भगवान॥

नहीं समझते...

श्री गुरु जी बतलाते निशदिन, करो आचरण धर्म प्रधान।
सेवा भाव सदा ही पालो, सूत्र यही जीवन उत्थान॥

नहीं समझते...

हम सब तो अज्ञानी बच्चे, नहीं हमें प्रभु कुछ भी ज्ञान।
अँखियाँ खोलो कुछ तो बोलो, इतने न रूठो भगवान॥

नहीं समझते...

जिन पूजा का फल मोक्षसुख

स्तुति : पुण्यगुणोत्कीर्तिः स्तोता भव्य प्रसन्नधीः।
निष्ठितार्थो भवांस्तुत्यः, फलं नैश्रेयसं सुखम्।।

(श्री जिन सहस्रनाम स्तोत्र)

अर्थात् महान पुरुषों के गुणों का स्मरण करना स्तुति है। भक्ति भाव से भरा हुआ भव्य पुरुष स्तोता है। जिन पवित्र स्तोत्रों द्वारा प्रभु की स्तुति की जाती है, वे प्रभु अरिहंत, सिद्ध, आचार्य, उपाध्याय व साधु हैं। स्तुति का फल निःश्रेयस् (मोक्ष) सुख है।

सूत्र की परिभाषा

अल्पाक्षरमसंदिग्धं सारवद् गूढ़निर्णयम्।
निर्दोषं हेतुमत्तथ्यं सूत्र मित्युच्युते बुधैः।।

अर्थ—जिसमें अल्प अक्षर हों, जो संदेह रहित हो, जिसका गूढ़ निर्णय हो, जो निर्दोष हो, युक्ति युक्त हो और तथ्यभूत हो, उसे ही गणधरों ने ''सूत्र-परमागम'' नाम से संबोधित किया है।

सच्चे जैन का एक ही पंथ-जिनागम पंथ

जयदु जिणगम पंथो

चतुर्थ खण्ड

अनादि-अनिधन

जिनागम पंथ जयवंत हो!

मेरी भावना

जिसने राग-द्वेष-कामादिक,जीते सब जग जान लिया।
सब जीवों को मोक्ष-मार्ग का, निस्पृह हो उपदेश दिया॥
बुद्ध, वीर, जिन, हरि, हर ब्रह्मा, या उसको स्वाधीन कहो।
भक्ति-भाव से प्रेरित हो यह, चित्त उसी में लीन रहो॥1॥
विषयों की आशा नहिं जिनके, साम्य-भाव धन रखते हैं।
निज-पर के हित साधन में जो, निशिदिन तत्पर रहते हैं॥
स्वार्थ त्याग की कठिन तपस्या, बिना खेद जो करते हैं।
ऐसे ज्ञानी साधु जगत के, दुख समूह को हरते हैं॥2॥
रहे सदा सत्संग उन्हीं का, ध्यान उन्हीं का नित्य रहे।
उनहीं जैसी चर्या में यह, चित्त सदा अनुरक्त रहे॥
नहीं सताऊँ किसी जीव को, झूठ कभी नहिं कहा करूँ।
पर धन वनिता पर न लुभाऊँ, संतोषामृत पिया करूँ॥3॥
अहंकार का भाव न रक्खूँ, नहीं किसी पर क्रोध करूँ।
देख दूसरों की बढ़ती को, कभी न ईर्ष्या-भाव धरूँ॥
रहे भावना ऐसी मेरी, सरल-सत्य व्यवहार करूँ।
बने जहाँ तक इस जीवन में, औरों का उपकार करूँ॥4॥
मैत्रीभाव जगत में मेरा, सब जीवों से नित्य रहे।
दीन-दुःखी जीवों पर मेरे उर के करुणा स्रोत बहे॥
दुर्जन क्रूर कुमार्ग-रतों पर, क्षोभ नहीं मुझको आवे।
साम्यभाव रक्खूँ मैं उन पर, ऐसी परणति हो जावे॥5॥
गुणीजनों को देख हृदय में, मेरे प्रेम उमड़ आवे।
बने जहाँ तक उनकी सेवा, करके यह मन सुख पावे॥
होऊँ नहीं कृतघ्न कभी मैं, द्रोह न मेरे उर आवे।
गुण ग्रहण का भाव रहे नित, दृष्टि न दोषों पर जावे॥6॥

कोई बुरा कहो या अच्छा, लक्ष्मी आवे या जावे।
लाखों वर्षों तक जीऊँ, या मृत्यु आज ही आ जावे॥
अथवा कोई कैसा ही, भय या लालच देने आवे।
तो भी न्याय मार्ग से मेरा, कभी न पद डिगने पावे॥7॥
होकर सुख में मग्न न फूलें, दुख में कभी न घबरावें।
पर्वत-नदी, श्मशान भयानक, अटवी से नहिं भय खावें॥
रहे अडोल-अकम्प निरन्तर, यह मन दृढ़तर बन जावे।
इष्ट-वियोग अनिष्ट-योग में, सहनशीलता दिखलावे॥8॥
सुखी रहे जब जीव जगत के, कोई कभी न घबरावे।
बैर पाप अभिमान छोड़ जग, नित्य नये मंगल गावे॥
घर घर चर्चा रहे धर्म की, दुष्कृत दुष्कर हो जावें।
ज्ञान-चरित उन्नत कर अपना, मनुज जन्म फल सब पावें॥9॥
ईति-भीति व्यापै नहिं जग में, वृष्टि समय पर हुआ करे।
धर्म-निष्ठ होकर राजा भी, न्याय प्रजा का किया करे॥
रोग-मरी दुर्भिक्ष न फैले, प्रजा शांति से जिया करे।
परम अहिंसाधर्म जगत में, फैल सर्व हित किया करे॥10॥
फैले प्रेम परस्पर जग में, मोह दूर ही रहा करे।
अप्रिय-कटुक-कठोर शब्द नहिं, कोई मुख से कहा करे॥
बनकर सब 'युग-वीर' हृदय से, देशोन्नति रत रहा करें।
वस्तु स्वरूप विचार खुशी से, सब दुख संकट सहा करें॥11॥

आराधना पाठ

मैं देव नित अरहंत चाहूँ, सिद्ध का सुमिरन करौं।
मैं सुर गुरु मुनि तीन पद ये, साधुपद हिरदय धरौं।।
मैं धर्म करुणामय जु चाहूँ, जहाँ हिंसा रंच ना।
मैं शास्त्र ज्ञान विराग चाहूँ, जासु में परपंच ना।।

चौबीस श्री जिनदेव चाहूँ, और देव न मन बसैं,
जिन बीस क्षेत्र विदेह चाहूँ, बंदिते पातक नसैं।
गिरनार शिखर सम्मेद चाहूँ, चम्पापुरी पावापुरी,
कैलाश श्री जिनधाम चाहूँ, भजत भाजैं भ्रम जुरी।।
नव तत्त्व का सरधान चाहूँ, और तत्त्व न मन धरौं।
षट् द्रव्य गुण परजाय चाहूँ, ठीक तासौं भय हरौं।
पूजा परम जिनराज चाहूँ, और देव न चाहूँ कदा।
तिहुँकाल की मैं जाप चाहूँ, पाप नहिं लागे कदा।।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चारित्र, सदा चाहूँ भाव सों।
दशलक्षणी मैं धर्म चाहूँ, महा हर्ष उछाव सों।।
सोलह जु कारण दुख निवारण, सदा चाहूँ प्रीति सों।
मैं नित अठाई पर्व चाहूँ, महामंगल रीति सों।।
अनुयोग चारों सदा चाहूँ, आदि अन्त निवाह सों।
पाये धरम के चार चाहूँ, अधिक चित्त उछाह सों।।
मैं दान चारों सदा चाहूँ, भुवनवशि लाहो लहूँ।
आराधना मैं चार चाहूँ, अन्त में ये ही गहूँ।।
भावना बारह जु भाऊँ, भाव निरमल होत हैं।
मैं व्रत जु बारह सदा चाहूँ, त्याग भाव उद्योत हैं।।
प्रतिमा दिगम्बर सदा चाहूँ, ध्यान आसन सोहना।
वसुकर्म तैं मैं छुटा चाहूँ, शिव लहूँ जहँ मोहना।।
मैं साधुजन को संग चाहूँ, प्रीति तिनही सों करौं।
मैं पर्व के उपवास चाहूँ, आरम्भ में सब परिहरौं।।
इस दुखद पंचमकाल माहीं, सुकुल श्रावक मैं लह्यो।
अरु महाव्रत धरि सकौं नाहीं, निबल तन मैंने गह्यो।।
आराधना उत्तम सदा, चाहूँ सुनो जिनराय जी।
तुम कृपानाथ अनाथ 'द्यानत', दया करना नाथ जी।।
वसुकर्म नाश विकास, ज्ञान प्रकाश मुझको दीजिए।
करि सुगति गमन समाधिमरन, सुभक्ति चरनन दीजिए।।

वैराग्य भावना

दोहा

बीज राख फल भोगवे, ज्यों किसान जग माहिं।
त्यों चक्री नृप सुख करै, धर्म विसारै नाहिं॥

(जोगीरासा व नरेन्द्र छन्द)

इह विधि राज करे नर नायक, भोगे पुण्य विशालो।
सुखसागर में रमत निरन्तर, जात न जानो कालो॥
एक दिवस शुभकर्म संजोगे क्षेमङ्कर मुनि वन्दे।
देखि श्रीगुरु के पद पङ्कज, लोचन अलि आनन्दे॥1॥

तीन प्रदक्षिण दे शिर नायो, कर पूजा थुति कीनी।
साधु समीप विनय कर बैठ्यो, चरणन में दृष्टि दीनी।
गुरु उपदेश्यो धर्म शिरोमणि, सुन राजा वैरागे।
राज रमा वनितादिक जे रस, ते रस बेरस लागे॥2॥

मुनि सूरज कथनी किरणावलि, लगत भर्म बुद्धि भागी।
भव तन भोग स्वरूप विचार्यो, परम धर्म अनुरागी॥
यह संसार महा वन भीतर, भरमत ओर न आवै॥
जामन मरन जरा दवदाहै, जीव महादुख पावै॥3॥

कबहुँ जाय नरक थिति भुंजै, छेदन भेदन भारी।
कबहुँ पशु परजाय धरे तहँ, बध बन्धन भयकारी॥
सुरगति में पर सम्पति देखे, राग उदय दुख होई।
मानुष योनि अनेक विपतिमय, सर्व सुखी नहिं कोई॥4॥

कोई इष्ट वियोगी विलखै, कोई अनिष्ट संयोगी।
कोई दीन दरिद्री दीखै, कोई तन का रोगी॥
किस ही घर कलिहारी नारी, कै वैरी सम भाई।
किसही के दुख बाहर दीखे किसही उर दुचिताई॥5॥

कोई पुत्र बिना नित झूरै, होय मरै तब रोवै।
खोटी संगति सों दुख उपजे, क्यों प्राणी सुख सोवे॥
पुण्य उदय जिनके तिनको भी, नाहिं सदा सुख साता।
यह जग वास जथारथ देखे, सब दीखे दुख दाता॥6॥

जो संसार विषैं सुख होता, तीर्थंकर क्यों त्यागे।
काहे को शिव साधन करते, संयम सों अनुरागे॥
देह अपावन अथिर घिनावन, यामें सार न कोई।
सागर के जल सों शुचि कीजै, तो भी शुद्ध न होई॥7॥

सात कुधातु भरी मल मूरत, चर्म लपेटी सोहै।
अन्तर देखत या सम जग में, अवर अपावन को है॥
नव मल द्वार स्रवैं निशिवासर, नाम लिये घिन आवे।
व्याधि उपाधि अनेक जहाँ तहँ, कौन सुधी सुख पावे॥8॥

पोषत तो दुख दोष करे अति, सोषत सुख उपजावे।
दुर्जन देह स्वभाव बराबर, मूरख प्रीति बढ़ावे॥
राचन जोग स्वरूप न याको, विरचन जोग सही है।
यह तन पाय महातप कीजै, यामें सार यही है॥9॥

भोग बुरे भव रोग बढ़ावैं, बैरी हैं जग जी के।
बेरस होंय विपाक समय, अति सेवत लागैं नीके॥
वज्र अगनि विषसे विषधर से, ये अधिके दुखदाई।
धर्म रत्न के चोर चपल अति, दुर्गति पन्थ सहाई॥10॥

मोह उदय यह जीव अज्ञानी, भोग भले कर जानै।
ज्यों कोई जन खाय धतूरा, सो सब कंचन माने॥
ज्यों-ज्यों भोग संयोग मनोहर, मनवांछित जन पावे।
तृष्णा नागिन त्यों-त्यों डंके, लहर जहर की आवे॥11॥

मैं चक्री पद पाय निरन्तर, भोगे भोग घनेरे।
तो भी तनिक भये ना पूरण, भोग मनोरथ मेरे॥

राज समाज महा अघ कारण, बैर बढ़ावन हारा।
वेश्या सम लक्ष्मी अति चंचल, याका कौन पतियारा॥12
मोह महा रिपु वैर विचार्यो, जग जीय संकट डारे।
घर-कारागृह वनिता बेड़ी, परिजन जन रखवारे॥
सम्यग्दर्शन ज्ञान चरण तप, ये जिय के हितकारी।
ये ही सार असार और सब, यह चक्री चितधारी॥13॥
छोड़े चौदह रत्न नवों-निधि, अरु छोड़े संग साथी।
कोड़ि अठारह घोड़े छोड़े, चौरासी लख हाथी॥
इत्यादिक सम्पति बहु तेरी, जीरण तृणसम त्यागी।
नीति विचार नियोगी सुत को, राज दियो बड़भागी॥14॥
होय निःशल्य अनेक नृपति संग, भूषण वसन उतारे।
श्री गुरुचरण धरी जिनमुद्रा, पंच महाव्रत धारे॥
धनि यह समझ सुबुद्धि जगोत्तम, धनि यह धीरज धारी।
ऐसी सम्पति छोड़ बसे वन, तिन पद धोक हमारी॥15॥

दोहा

परिग्रह पोट उतार सब, लीनों चारित्र पंथ।
निज स्वभाव में थिर भये, वज्रनाभि निर्ग्रंथ॥

बारह भावना

(मंगतराय कृत)

(दोहा)

बन्दूँ श्री अरहंत पद, वीतराग विज्ञान।
वरणूँ बारह भावना, जग जीवन हित जान॥1॥

(विष्णुपद छन्द)

कहाँ गये चक्री जिन जीता, भरतखण्ड सारा।
कहाँ गये वे राम रु लछमन, जिन रावण मारा॥

कहाँ कृष्ण रुक्मणि सतभामा, अरु संपति सगरी।
कहाँ गये वह रंगमहल अरु, सुवरन की नगरी॥2॥
नहीं रहे वे लोभी कौरव, जूझ मरे रन में।
गये राज तज पांडव वन को, अगनि लगी तन में॥11॥
मोहनींद से उठ रे चेतन, तुझे जगावन को।
हो दयाल उपदेश करैं गुरु, बारह भावन को॥3॥

(अथिर भावना)

सूरज चाँद छिपै निकलै, ऋतु फिर-फिरकर आवै।
प्यारी आयु ऐसी बीते, पता नहीं पावै॥
पर्वत पतित नदी सरिता जल, बहकर नहिं हटता।
स्वास चलत यों घटै काठ ज्यों, आरे सों कटता॥4॥
ओसबूँद ज्यों गलै धूप में, वा अंजुलि पानी।
छिन-छिन यौवन छीन होत है, क्या समझे प्रानी॥
इन्द्रजाल आकाश नगर सम, जगसम्पति सारी।
अथिर रूप संसार विचारो, सब नर अरु नारी॥5॥

(अशरण भावना)

कालसिंह ने मृग चेतन को, घेरा भव-वन में।
नहीं बचावन हारा कोई, यों समझो मन में॥
मन्त्र-यन्त्र सेना धन सम्पति, राज पाट छूटे।
वश नहिं चलता काल लुटेरा, काय नगरि लूटे॥6॥
चक्ररतन हलधर सा भाई, काम नहीं आया।
एक तीर के लगत कृष्ण की, विनश गई काया॥
देव धर्म गुरु शरण जगत में, और नहीं कोई।
भ्रम से फिरै भटकता चेतन, युँ ही उमर खोई॥7॥

(संसार भावना)

जनम मरन अरु जरा रोग से, सदा दुखी रहता।
द्रव्य क्षेत्र अरु काल-भाव-भव, परिवर्तन सहता॥
छेदन भेदन नरक पशुगति, वध बन्धन सहना।
राग उदय से दुख सुरगति में, कहाँ सुखी रहना॥8॥

भोगि पुण्यफल हो इकइन्द्री, क्या इसमें लाली।
कुतवाली दिन चार वही फिर, खुरपा अरु जाली॥
मानुषजनम अनेक विपतिमय, कहीं न सुख देखा।
पञ्चमगति सुख मिलै, शुभाशुभ को मेंटो लेखा॥9॥

(एकत्व भावना)

जन्मै मरै अकेला चेतन, सुखदुख का भोगी।
और किसी का क्या इकदिन यह, देही जुदी होगी॥
कमला चलत न पैंड जाय, मरघट तक परिवारा।
अपने अपने सुखको रोवैं, पिता पुत्र दारा॥10॥

ज्यों मेले में पंथीजन मिलि, नेह फिरैं धरते।
ज्यों तरुवर पै रैन बसेरा, पंछी आ करते॥
कोस कोई दो कोस कोई, उड़ फिर थक-थक हारे।
जाय अकेला हंस संग में, कोई न पर मारै॥11॥

(अन्यत्व भावना)

मोहरूप मृगतृष्णा जगमें, मिथ्या जल चमकै।
मृग चेतन नित भ्रम में उठ-उठ, दौड़े थक थककै॥
जल नहिं पावै प्राण गमावै, भटक भटक मरता।
वस्तु पराई मानै अपनी, भेद नहीं करता॥12॥

तू चेतन अरु देह अचेतन, यह जड़ तू ज्ञानी।
मिलै अनादि यतनतैं बिछुड़े, ज्यों पय अरु पानी॥

रूप तुम्हारा सबसों न्यारा, भेद ज्ञान करना।
जौलों पौरुष थके न तौलों, उद्यमसों चरना॥3॥

(अशुचि भावना)

तू नित पोखै यह सूखै, ज्यों धोवै त्यों मैली।
निशदिन करे उपाय देह का, रोगदशा फैली॥
मात-पिता-रज-बीरज मिलकर, बनी देह तेरी।
माँस हाड़ नश लहू राधकी, प्रकट व्याधि घेरी॥14॥

काना पौंडा पड़ा हाथ यह, चूसै तो रोवै।
फलै अनन्त जु धर्म ध्यान की, भूमि विषै बोवै॥
केसर चन्दन पुष्प सुगन्धित, वस्तु देख सारी।
देह परसते होय अपावन, निशदिन मल जारी॥15॥

(आस्रव भावना)

ज्यों सरजल आवत मोरी, त्यों आस्रव कर्मन को।
दर्वित जीव प्रदेश गहैं जब, पुद्गल भरमन को॥
भावित आस्रवभाव शुभाशुभ, निशदिन चेतन को।
पाप-पुण्य के दोनों करता, कारण बन्धन को॥16॥

पन मिथ्यात योग पन्द्रह, द्वादश अविरत जानो।
पञ्च रु बीस कषाय मिले, सब सत्तावन मानो॥
मोहभाव की ममता टारै, पर परणति खोते।
करे मोख का यतन निरास्रव, ज्ञानीजन होते॥17॥

(संवर भावना)

ज्यों मोरी में डाट लगावै, तब जल रुक जाता।
त्यों आस्रव को रोके संवर, क्यों नहिं मन लाता॥
पंच महाव्रत-समिति गुप्तिकर, वचन काय मन को।
दशविध धर्म परीषह बाइस, बारह भावन को॥18॥

यह सब भाव सतावन मिलकर, आस्रव को खोते।
सुपन दशा से जागो चेतन, कहाँ पड़े सोते॥
भाव शुभाशुभ रहित, शुद्ध भावन संवर पावै।
डाट लगत यह नाव पड़ी, मझधार पार जावै॥19॥

(निर्जरा भावना)

ज्यों सरवर जल रुका सूखता, तपन पड़ै भारी।
संवर रोकै, कर्म निर्जरा ह्वै सोखन हारी॥
उदय भोग सविपाक समय, पक जाय आम डाली।
दूजी है अविपाक पकावे, पालविषै माली॥20॥

पहली सबके होय नहीं, कुछ सरै काम तेरा।
दूजी करै जु उद्यम करके, मिटै जगतफेरा॥
संवर सहित करो तप प्रानी, मिलै मुक्ति रानी।
इस दुलहिन की यही सहेली, जानै सब ज्ञानी॥21॥

(लोक भावना)

लोक अलोक अकाश मांहि थिर, निराधार जानो।
पुरुषरूप कर-कटी भये षट्, द्रव्यनसों मानो॥
इसका कोई न करता हरता, अमिट अनादी है।
जीव रु पुद्गल नाचै यामैं, कर्म उपाधी है॥22॥

पाप पुन्यसों जीव जगत में, नित सुख-दुख भरता।
अपनी करनी आप भरै शिर,-औरन के धरता॥
मोहकर्म को नाश मेटकर, सब जग की आसा।
निज पद में थिर होय लोक के, शीश करो वासा॥23॥

(बोधिदुर्लभ भावना)

दुर्लभ है निगोद से थावर, अरु त्रसगति पानी।
नरकाया को सुरपति तरसै, सो दुर्लभ प्रानी॥

उत्तम देश सुसङ्गति दुर्लभ, श्रावककुल पाना।
दुर्लभ सम्यक् दुर्लभ संयम, पञ्चम गुणठाना॥24॥
दुर्लभ रत्नत्रय आराधन, दीक्षा का धरना।
दुर्लभ मुनिवर के व्रत पालन, शुद्धभाव करना॥
दुर्लभ से दुर्लभ है चेतन, बोधि ज्ञान पावै।
पाकर केवलज्ञान नहीं, फिर इस भव में आवै॥25॥

(धर्म भावना)

एकान्तवाद के धारी जग में दर्शन बहु तेरे।
कल्पित नाना युक्ति बनाकर ज्ञान हरें मेरे॥
हो सुछन्द जग पाप करै, सिर करता के लावे।
कोई छिनक कोई करता से, जग में भटकावै॥26॥
'धरम अहिंसा परमोधर्मः' ही सच्चा जानो।
जो पर को दुःख दे, सुख माने, उसे पतित मानो॥
रागद्वेष मद मोह घटा, आतम रुचि प्रकटावे।
धर्म पोत पर चढ़ प्राणी, भव सिन्धु पार जावे॥27॥
वीतराग सर्वज्ञ दोष बिन, श्रीजिन की वानी।
सप्त तत्व का वर्णन जामैं, सबको सुखदानी॥
इनका चिंतवन बार बार कर, श्रद्धा उर धरना।
'मंगत' इसी जतनतैं इकदिन, भवसागर तरना॥28॥

बारह भावना

(कवि भूधरदास कृत)

(दोहा)

राजा राणा छत्रपति, हाथिन के असवार।
मरना सबको एक दिन, अपनी अपनी बार॥1॥

दल बल देवी देवता, मात-पिता परिवार।
मरती बिरियाँ जीव को, कोई न राखनहार॥2॥

दाम बिना निर्धन दुखी, तृष्णावश धनवान।
कहूँ न सुख संसार में, सब जग देखो छान॥3॥

आप अकेला अवतरे, मरे अकेला होय।
यों कबहूँ इस जीव का, साथी सगा न कोय॥4॥

जहाँ देह अपनी नहीं, तहाँ न अपना कोय।
घर सम्पति पर प्रगट ये, पर हैं परिजन लोय॥5॥

दिपे चाम चादर मढ़ी, हाड़ पींजरा देह।
भीतर या सम जगत में, और नहीं घिनगेह॥6॥

(सोरठा)

मोह नींद के जोर, जगवासी घूमें सदा।
कर्मचोर चहुँ ओर, सरवस लूटैं सुध नहीं॥7॥

सतगुरु देय जगाय, मोहनींद जब उपशमैं।
तब कछु बने उपाय, कर्म चोर आवत रुकैं॥8॥

(दोहा)

ज्ञान दीप तप तेल भर, घर शोधैं भ्रम छोर।
या विधि बिन निकसे नहीं, बैठे पूरब चोर॥9॥

पञ्चमहाव्रत सञ्चरण, समिति पंच परकार।
प्रबल पंच इन्द्रिय विजय, धार निर्जरा सार॥10॥

चौदह राजु उतङ्गनभ, लोक पुरुष संठान।
तामैं जीव अनादि तैं, भरमत है बिन ज्ञान॥11॥

धन कन कंचन राजसुख, सबहि सुलभकर जान।
दुर्लभ है संसार में, एक जथारथ ज्ञान॥12॥

जाँचे सुरतरु देय सुख, चिन्तत चिन्ता रैन।
बिन जाँचै बिन चिंतये, धर्म सकल सुख दैन॥13॥

बारह भावना

(आचार्य श्री विमर्शसागर जी महाराज)

बंदूँ पंच परम गुरु, आगम चक्षु महान।
गाऊँ बारह भावना, सर्व लोक सुख दान।।

अनित्य भावना

अहो ! कौन इस जग में अपना, किस को अपना मानूँ।
साथी सभी पराये होंगे, किसको अपना जानूँ।।
धन्य शलाका पुरुष एक दिन, सब मृत्यु के साथी।
है अनित्य का खेल यहाँ सब, रथिक पियादे हाथी।।

अशरण भावना

अहो आत्मन् ! शरण खोजता चहुँगति शरण न पावे।
नूतन घर-परिवार सजावे, अशरण ही कहलावे।।
परम दिगम्बर देव धर्म गुरु, ये ही शरण कहाते।
निज चैतन्य देव शरणागत, भविजन शिवगति पाते।।

संसार भावना

अहो आत्मन् चतुर्गति में, जनम-मरण दुःख पाया।
पुण्य उदय से संपत्ति पाई, मन फिर भी ललचाया।।
यह संसार वास दुःखकारी, क्षणिक शांति न पावे।
सहज शुद्ध ज्ञायक प्रभु ध्यावो, जो पंचमगति ल्यावे।।

एकत्व भावना

स्त्री-पुत्र स्वजन-परिजन सब, पुण्य उदय जब साथी।
जीव असाता समय अकेला, किसका कौन संगाती।।
यह संसार स्वार्थगृह भाई, कोई काम न आवे।

एक निजातम ही साँचा गृह, ज्ञानी निज गृह पावे।।

अन्यत्व भावना

अहो आत्मन् ! मोह उदय में, स्व-पर भेद न जाना।
तन-धन-परिजन स्वजन सभी को, अपना अपना माना।।
हाय-हाय यह भूल अनादि, कबहुँ न बिसराई।
जिनवाणी सुन पर-रुचि त्यागो, सद्गुरु शिक्षा दाई।।

अशुचि भावना

अहो आत्मन् ! महा अशुचि तन, अज्ञानी नित चावे।
नाना भूषण अलंकार से, यह तन नित्य सजावे।।
नाना सुरभित लेप करे, श्रृंगार करे, सुख माने।
सुख का कारण शुद्धज्ञानमय चेतन न पहिचाने।।

आस्रव भावना

अहो आत्मन् ! मिथ्यादर्शन, अविरति भाव बनाये।
अन्य प्रमाद कषाय योग सब, आस्रव भाव धराये।।
पुण्य-पाप रागादि भाव, जो दुःखमय हैं, सुख माना।
शुद्ध निरास्रव वीतराग निज ज्ञायक न पहिचाना।।

संवर भावना

अहो आत्मन्! तेरह विध चारित्र हृदय स्वीकारो।
द्वादश अनुप्रेक्षा दसधर्म परिषह बाइस धारो।।
शुभ भावों से अशुभ भाव का संवर पूर्व लहावे।
शुद्धभाव से भावशुभाशुभ संवर पूर्ण कहावे।।

निर्जरा भावना

अहो आत्मन्! समय-समय सविपाक निर्जरा पाई।
कर्म आस्रव रहा निरंतर कर्म विजय न पाई।।
स्वात्मयोग, शुद्धोपयोग अविपाक निर्जरा दाता।
ज्ञानी संवर-निर्जर पथ से मुक्तिवधु को लाता।।

लोक भावना

अहो आत्मन्! छह द्रव्यों का रहता जहाँ बसेरा।
चौदह राजु लोक अनादि, भव भूतों का डेरा।।
जन्म-मरण इक-इक प्रदेश पर हाय अनन्तों पाये।
कभी असंख प्रदेश निजातम प्रभु न हृदय समाये।।

बोधि दुर्लभ भावना

अहो आत्मन्! पुण्य उदय से, नरभव तूने पाया।
बाह्य विभव श्रावक व्रत-मुनिव्रत, किंतु न समकित भाया।।
नव ग्रीवक तक सौख्य लहा, रे बोधि ज्ञान न जागा।
सिद्ध समा भगवान आत्मा, भव-भव भ्रमा अभागा।।

धर्म भावना

अहो आत्मन्! अरिहंतों ने धर्म अहिंसा गाया।
रागद्वेष-मद-मोहरहित वस्तुस्वभाव बतलाया।।
सर्व पंथ के वसन उतारो, मोक्षपंथ उर धारो।
वीतरागमय धर्म ही साँचा, चेतन भूल सुधारो।।
जो भवि बारह भावना, भाव सहित नित भाय।
परमदशा वैराग्य की, वह विमर्श प्रगटाय।।

आलोचना पाठ

दोहा

बन्दों पाँचों परमगुरु, चौबीसों जिनराज।
करूँ शुद्ध आलोचना, शुद्धि कारण के काज॥1॥

(सखी छन्द चौदह मात्रा)

सुनिये जिन अरज हमारी, हम दोष किये अति भारी।
तिनकी अब निवृत्ति काजा, तुम शरण लही जिनराजा॥2॥

इक बे ते चउ इन्द्री वा, मन रहित सहित जे जीवा।
तिनकी नहिं करुणा धारी, निरदई है घात विचारी॥3॥

समरंभ समारंभ आरंभ, मन वच तन कीने प्रारम्भ।
कृत कारित मोदन करिके, क्रोधादि चतुष्टय धरिकै॥4॥

शत आठ जु इमि भेदनतैं, अघ कीने पर छेदनतैं।
तिनकी कहुँ कोलौं कहानी, तुम जानत केवलज्ञानी॥5॥

विपरीत एकांत विनय के, संशय अज्ञान कुनय के।
वश होय घोर अघ कीने, वचतैं नहिं जात कहीने॥6॥

कुगुरुन की सेवा कीनी, केवल अदया करि भीनी।
या विधि मिथ्यात्व भ्रमायो, चहुँगति मधि दोष उपायो॥7॥

हिंसा पुनि झूँठ जु चोरी, पर-वनिता सों दृग जोरी।
आरम्भ परिग्रह भीनो, पन पाप जु या विधि कीनो॥8॥

सपरस रसना घ्रानन को, चखु कान विषय सेवन को।
बहु करम किये मन माने, कछु न्याय अन्याय न जाने॥9॥

फल पंच उदंबर खाये, मधु माँस मद्य चित चाये।
नहिं अष्ट मूलगुण धारे, सेये कुव्यसन दुखकारे॥10॥

दुइबीस अभख जिन गाये, सो भी निश दिन भुञ्जाये।
कछु भेदाभेद न पायो, ज्यों त्यों करि उदर भरायो॥11॥

अनंतानु जु बंधी जानो, प्रत्याख्यान अप्रत्याख्यानो।
संज्वलन चौकड़ी गुनिये, सब भेद जु षोडश मुनिये॥12॥

परिहास अरति रति शोग, भय ग्लानि त्रिवेद संयोग
पन बीस जु भेद भये इम, इनके वश पाप किये हम॥13॥

निद्रावश शयन कराई, सुपने मधि दोष लगाई।
फिर जाग विषय वनधायो, नानाविधि विषफल खायो॥14॥

आहार विहार निहारा, इनमें नहिं जतन विचारा।
बिन देखी धरी उठाई, बिन शोधी वस्तु जु खाई॥15॥

तब ही परमाद सतायो, बहु विधि विकलप उपजायो।
कछु सुधि बुधि नाहिं रही है, मिथ्या मति छाय गयी है॥16॥

मरजादा तुम ढिंग लीनी, ताहू में दोष जु कीनी।
भिन्न-भिन्न अब कैसे कहिये, तुम ज्ञान विषैं सब पइये॥17॥

हा हा! मैं दुठ अपराधी, त्रस जीवन राशि विराधी।
थावर की जतन न कीनी, उर में करुणा नहिं लीनी॥18॥

पृथिवी बहु खोद कराई, महलादिक जांगा चिनाई।
पुनि बिन गाल्यो जल ढोल्यो, पंखातैं पवन विलोल्यो॥19॥

हा हा! मैं अदयाचारी, बहु हरित काय जु विदारी।
ता मधि जीवन के खंदा, हम खाये धरि आनन्दा॥20॥

हा हा! परमाद बसाई,बिन देखे अगनि जलाई।
ता मध्य जीव जे आये, ते हू परलोक सिधाये॥21॥

बींध्यो अन राशि पिसायो, ईंधन बिन शोध जलायो।
झाड़ू ले जांगा बुहारी, चिंउटी आदिक जीव बिदारी॥22॥

जल छानि जिवानी कीनी, सोहू पुनि डारि जु दीनी।
नहिं जल थानक पहुँचाई, किरिया बिन पाप उपाई॥23॥

जल मल मोरिन गिरवायो, कृमि कुल बहु घात करायो।
नदियन बिच चीर धुवाये, कोसन के जीव मराये॥24॥

अन्नादिक शोध कराई, ता में जु जीव निसराई।
तिनका नहिं जतन कराया, गलियारे धूप डराया॥25॥

पुनि द्रव्य कमावन काजै, बहु आरम्भ हिंसा साजे।
किये तिसनावश अघ भारी, करुणा नहिं, रञ्च विचारी॥26॥

इत्यादिक पाप अनन्ता, हम कीने श्री भगवन्ता।
संतति चिरकाल उपाई, बानी तैं कहिये न जाई॥27॥

ताको जु उदय अब आयो, नाना विधि मोहि सतायो।
फल भुञ्जत जिय दुख पावै, वचतैं कैसे करि गावै॥28॥

तुम जानत केवलज्ञानी, दुख दूर करो शिवथानी।
हम तो तुम शरण लही है, जिन तारन विरद सही है॥29॥

इक गाँव पति जो होवे, सो भी दुखिया दुख खोवे।
तुम तीन भुवन के स्वामी, दुख मेंटहु अन्तरयामी॥30॥

द्रोपदि को चीर बढ़ायो, सीता प्रति कमल रचायो।
अञ्जन से किये अकामी, दुख मेंटो अन्तरयामी॥31॥

मेरे अवगुण न चितारो, प्रभु अपनो विरद निहारो।
सब दोष रहित कर स्वामी, दुख मेंटहु अन्तरजामी॥32॥

इन्द्रादिक पद नहिं चाहूँ, विषयनि में नाहिं लुभाऊँ।
रागादिक दोष हरीजै, परमातम निज पद दीजै॥33॥

दोहा—दोष रहित जिनदेव जी, जिनपद दीज्यो मोय।
सब जीवन के सुख बढ़े, आनन्द मंगल होय॥34॥
अनुभव माणिक पारखी, 'जौहरी' आप जिनन्द।
ये ही वर मोहि दीजिये, चरण शरण आनन्द॥35॥

सामायिक पाठ

सत्त्वेषु मैत्रीं गुणिषु प्रमोदं, क्लिष्टेषु जीवेषु कृपा-परत्वम्।
माध्यस्थभावं विपरीत वृत्तौ, सदा ममात्मा विदधातु देव॥1॥

शरीरतः कर्त्तु मनन्त-शक्तिं, विभिन्न-मात्मान-मपास्त-दोषम्।
जिनेन्द्र! कोषादिव खड्ग-यष्टिं तव प्रसादेन ममाऽस्तु शक्तिः॥2॥

दुःखे सुखे वैरिणि-बन्धुवर्गे, योगे-वियोगे भवने वने वा।
निराकृताशेष-ममत्व बुद्धेःसमं मनो मेऽस्तु सदापि नाथ॥3॥

मुनीश! लीनाविव कीलिता विव, स्थिरौनिषाता विव बिम्बिता विव।
पादौ त्वदीयौ मम तिष्ठतां सदा, तमो धुनानौ हृदि दीपका विव॥4॥

एकेन्द्रियाद्या यदि देव! देहिनः, प्रमादतः संचरता यतस्ततः।
क्षताविभिन्ना मिलिता निपीडितास्, तदस्तु मिथ्या दुरनुष्ठितं तदा ॥5॥

विमुक्ति मार्ग प्रतिकूल वर्तिना, मया कषायाक्ष वशेन दुर्धिया।
चारित्र शुद्धे र्यदकारि लोपनं तदस्तु मिथ्या मम दुष्कृतं प्रभो! ॥6॥

विनिन्दनालोचन-गर्हणैरहं, मनोवचः कायकषाय-निर्मितम्।
निहन्मि पापं भवदुःख-कारणं, भिषग्विषं मन्त्र गुणैरिवाखिलम् ॥7॥

अतिक्रमं यद्विमते-र्व्यतिक्रमं, जिनातिचारं सुचरित्रकर्मणः।
व्यधामनाचार मपि प्रमादतः, प्रतिक्रमं तस्य करोमि शुद्धये ॥8॥

क्षतिंमनः शुद्धि-विधेरतिक्रमं, व्यतिक्रमंशील-व्रतेर्विलङ्घनम्।
प्रभोऽतिचारं विषयेषु वर्तनं वदन्त्यनाचार मिहाति सक्तताम् ॥9॥

यदर्थमात्रा-पदवाक्यहीनं, मया प्रमादाद्यदि किञ्चनोक्तम्।
तन्मेक्षमित्वा विदधातु देवी, सरस्वती केवलबोध लब्धिम् ॥10॥

बोधिः समाधिः परिणाम शुद्धिः स्वात्मोपलब्धिः शिवसौख्य सिद्धिः।
चिंतामणिं चिन्तित वस्तु दाने, त्वां वन्दमानस्य ममास्तुदेवि ॥11॥

यः स्मर्यते सर्व-मुनीन्द्र-वृन्दै-यः स्तूयते सर्वनराऽमरेन्द्रैः।
यो गीयते वेदपुराणशास्त्रैः, स देवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥12॥

यो दर्शन-ज्ञान-सुख-स्वभाव, समस्त संसार-विकारबाह्यः।
समाधिगम्यः परमात्मसंज्ञः, स देवदेवोहृदयेममास्ताम् ॥13॥

निषूदते यो भवदुःखजालं, निरीक्षते यो जगदन्तरालम्।
योऽन्तर्गतोयोगिनिरीक्षणीयः, सदेवदेवोहृदये ममास्ताम् ॥14॥

विमुक्तिमार्ग-प्रतिपादको यो, यो जन्ममृत्यु-व्यसनाद्यतीतः।
त्रिलोक लोकी विकलोऽकलंकः, सदेवदेवो हृदये ममास्ताम् ॥15॥

क्रोडी कृताशेष शरीर वर्गाः, रागादयो यस्य न सन्ति दोषाः।
निरिन्द्रयो ज्ञान मयोऽनपायः, स देव देवो हृदये ममास्ताम् ॥16॥

यो व्यापको विश्वजनीनवृत्तेः, सिद्धोविबुद्धोधुतकर्मबन्धः।
ध्यातोधुनीतेसकलं विकारं, स देवदेवोहृदयेममास्ताम्॥17॥

न स्पृश्यते कर्मकलङ्क दौषैः, यो ध्वान्तसङ्घैरिव तिग्मरश्मिः।
निरञ्जनं नित्य-मनेकमेकं, तं देव-माप्तं शरणं प्रपद्ये॥18॥

विभासते यत्र मरीचिमाली, न विद्यमाने भुवनावभासी।
स्वात्मस्थितं बोधमयप्रकाशं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥19॥

विलोक्यमानेसति यत्र विश्वं, विलोक्यतेस्पष्टमिदंविविक्तम्।
शुद्धं शिवं शान्त-मनाद्यनन्तं, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥20॥

येन क्षता मन्मथमानमूर्च्छा, विषादनिद्राभय-शोक-चिन्ताः।
क्षतोऽनलेनेव तरुप्रपञ्चस्, तं देवमाप्तं शरणं प्रपद्ये॥21॥

न संस्तरोऽश्मा न तृणं न मेदिनी, विधानतोनोफलकोविनिर्मितः।
यतोनिरस्ताक्षकषाय-विद्विषः, सुधीभिरात्मैवसुनिर्मलोमतः॥22॥

न संस्तरो भद्र! समाधिसाधनं, न लोकपूजा न च सङ्गमेलनम्।
यतस्ततोऽध्यात्मरतोभवानिशं, विमुच्यसर्वामपि बाह्यवासनाम्॥23॥

न सन्ति बाह्या मम केचनार्थाः भवामि तेषां न कदाचनाहम्।।
इत्थंविनिश्चित्यविमुच्यबाह्यं, स्वस्थः सदात्वंभवभद्र! मुक्त्यै॥24॥

आत्मानमात्मन्यवलोक मानस् त्वं दर्शनज्ञानमयो विशुद्धः।
एकाग्रचित्तः खलुयत्रतत्र, स्थितोऽपिसाधुर्लभतेसमाधिम्॥25॥

एकः सदा शाश्वतिकोममात्मा, विनिर्मलः साधिगमस्वभावः।
बहिर्भवाः सन्त्यपरे समस्ता, न शाश्वतः कर्मभवाः स्वकीयाः॥26॥

यस्यास्तिनैक्यंवपुषापि सार्द्धं, तस्यास्तिकिंपुत्र-कलत्र-मित्रैः।
पृथक्कृतेचर्मणिरोमकूपाः, कुतो हि तिष्ठन्ति शरीमध्ये॥27॥

संयोगतो दुःख-मनेक-भेदं, यतोऽश्नुते जन्मवने शरीरी।
ततस्त्रिधासौपरिवर्जनीयो, यियासुनानिर्वृतिमात्मनीनाम्॥28॥

सर्वं निराकृत्यविकल्प-जालं, संसार-कान्तार निपातहेतुम्।
विविक्तमात्मानमवेक्ष्य-माणो, निलीयसेत्वंपरमात्मतत्त्वे ॥29॥

स्वयं कृतं कर्म यदात्मना पुरा, फलं तदीयं लभते शुभाशुभम्।
परेणदत्तं यदि लभ्यते स्फुटं, स्वयं कृतं कर्म निरर्थकंतदा ॥30॥

निजार्जितं कर्मविहाय देहिनो, न कोऽपि कस्यापि ददाति किञ्चन्।
विचारयन्नेव-मनन्यमानसः, परोददातीतिविमुञ्चशेमुषीम् ॥31॥

यैः परमात्माऽमितगतिवन्द्यः, सर्व-विविक्तो भृशमनवद्यः।
शश्वदधीतो मनसि लभन्ते, मुक्तिनिकेतं विभववरं ते ॥32॥

इति द्वात्रिंशता-वृत्तैः, परमात्मान-मीक्षते।
योऽनन्यगत चेतस्को, यात्यसौ पदमव्ययम् ॥33॥

(इतिश्री सामायिक पाठ)

सामायिक पाठ

(पद्यानुवाद-आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज)

हे जिनदेव! आत्मा मेरी, धारण करे नित्य यह नेम।
हार्द भाव हो सब जीवों में, गुणीजनों में होवे प्रेम।
जो ग्रहीत हो रहे दुःखों से, उन पर करुणा स्रोत बहे।
हो माध्यस्थ भाव उन पर जो जिनमत से विपरीत कहे॥1॥

हे जिनेश! तव पद-प्रसाद से, हो इतनी शक्ति संचार।
सर्व दोष विरहित अनन्त-शक्तिशाली आतम अविकार।
अविनाशी अखण्ड निज आतम, तन से विलग करूँ ऐसे।
महासुभट तलवार-म्यान को, अलग-अलग करते जैसे ॥2॥

सुख-दुःख में अरि-बन्धु-वर्ग में, तथा अखिल संयोग-वियोग।
भवन और उपवन में भी नहिं, हर्ष-खेदमय हो उपयोग।

खोकर ममता बुद्धिहृदय हो, समता का संचार सदा।
हे प्रभु! अखिल वस्तुओं से, अपनत्व भाव हो जाये विदा॥3॥

ज्यों प्रदीप की ज्योति समुज्ज्वल, अंधकार का करती नाश।
हे जिन! तव द्वय चरण कमल, अज्ञान महातम करें विनाश।
कीलित सम उत्कीर्ण रूप हों मेरे हृदय विराजित वे।
हे मुनीश! प्रतिबिम्ब तुल्य हों अविचल लीन अबाधित वे॥4॥

यदि प्रमाद से इधर-उधर चलते फिरते इस वसुधा पर।
जीव कोई एकेन्द्रिय आदिक् दुःखी हुआ हो मुझ से गर।
क्षत, विक्षत, पीड़ित, मेलित, घर्षित, विकलित टकराये कभी।
मिथ्या हों हे देव! हमारे दुराचरण जो हुये सभी॥5॥

हा-हा मुझ दुर्बुद्धि ने किया मोक्षमार्ग से कुपथ गमन।
जो कषाय इन्द्रिय विषयों के वशीभूत हो हे स्वामिन्।
इस निमित्त मम शुद्ध-आचरण जो भी लोप हुआ हे नाथ!
वह दुष्कृत मेरा मिथ्या को प्राप्त होय हे दीनानाथ॥6॥

हे जिनेश! मन-वचन-काय वा जो कषाय से उपजा पाप।
है भव-भव का बीजभूत वह देता भव-भव में संताप।
आलोचन, निंदा, गर्हा से अब विनाश करता वैसे।
मंत्र शक्ति से वैद्य महाविष शांत किया करता जैसे॥7॥

गुणित विशुद्धि धारणकर उत्तम चारित जो वरण किया।
हा प्रमाद से उस व्रत में अतिक्रम, व्यतिक्रम आचरण लिया।
कभी हुये अतिचार और जो अनाचरण से दोष प्रभो।
सर्वशुद्धि के हेतु प्रतिक्रम करता अब निर्दोष विभो!॥8॥

निर्मल मन की निर्मलता का नाश अतिक्रम कहा विभो!।
शीलवृत्ति का उल्लंघन इहलोक व्यतिक्रम कहा प्रभो।
इन्द्रिय विषयों में वर्तन करते रहना अतिचार कहा।
अति आसक्त विषय में रहना अनाचरण का भाव कहा॥9॥

जो पद-वाक्य-अर्थ-मात्रा में हुआ वचन स्खलन मेरा।
वह प्रमाद से हुआ देवि! हाँ उससे मैं अनभिज्ञ रहा।
ओ जिनवाणी माँ! मेरा अपराध क्षमा यह कर देना।
मेरी अन्तर आतम केवलज्ञान बोधि से भर देना॥10॥

जिनवाणी माँ चिन्तित वर देने में चिन्तामणी समान।
भावशुद्धि, सम्बोधि, समाधि देती शिवसुख का वरदान।
ओ जिनवाणी माँ! तेरा वन्दन स्तवन दिनरात करूँ।
तेरे शुभ प्रसाद से निज आतम स्वरूप को प्राप्त करूँ॥11॥

गणनायक मुनिवृन्द किया करते जिसका स्मरण सदा।
जिसका नरपति सुरपति भी स्तवन कर होते मुदित सदा।
वेद-पुराण-शास्त्र भी जिसका करते हैं नित ही गुणगान।
वह देवों का देव हमारे हृदय विराजे यह अरमान12॥

जोअनंत-दृग-ज्ञानमयी जिसका अनंतसुख-रूप स्वभाव।
वर्धमान हो भवसंतति उन सब विभाव का किया अभाव।
जो परमात्म नाम का धारक सतत् समाधिगम्य कहा।
वह देवों का देव हमारे हृदय विराजित रहे सदा॥13॥

अखिल विश्व का ज्ञाता-दृष्टा दुःखसमूह का जो नाशक।
रहता नित लोकान्त अवस्थित स्वपर-ज्ञान का जो भासक।
जो योगीजन के द्वारा ही अवलोकन के योग्य कहा।
वह देवों का देव हमारे हृदय विराजित रहे सदा॥14॥

जनम-मरण दुःख से अतीत जो मोक्षमार्ग का प्रतिपादक।
तीन लोक अवलोक रहा अवलोकन में ना कुछ बाधक।
देहातीत कलंक रहित ऐसा जिसको अकलंक कहा।
वह देवों का देव हमारे हृदय विराजित रहे सदा॥15॥

तीन लोक के सब जीवों में आदर पा जो व्याप रहा।
वह रागादिक महादोष भी जिससे थर-थर काँप रहा।

उसे इन्द्रियातीत अतीन्द्रिय ज्ञानमयी अनपाय कहा।
वह देवों का देव हमारे हृदय विराजित रहे सदा॥16॥

विश्वक्षेम की सहजवृत्ति जिसकी जो कहलाता व्यापक।
कर्मबन्ध का जो विध्वंसक सिद्धस्वरूपी है ज्ञायक।
जिसका निर्मल ध्यान मिटाता ध्याता के कुविकार अखिल।
वह देवों का देव हमारे हृदय विराजित रहे अचल॥17॥

छू सकती आदित्य किरण नहिं अंधकार का महावितान।
कर्म कलंक दोष भी जिसका करते नापर्शित आह्वान।
जो है नित्य निरंजन, होकर एक रूप भी नाना रूप।
उसी आप्त प्रभु की शरणा को प्राप्त हुआ जो स्वयं अरूप॥18॥

हे जिनेश! त्रैलोक्य प्रकाशक ज्ञानसूर्य हो जहाँ उदित।
वहाँ भास्कर भुवन-प्रकाशक कैसे हो सकता शोभित।
थिर जो देव! स्वात्मा में कहलाते हैं जो ज्ञानमयी।
उसी आप्त प्रभु की शरणा को प्राप्त हुआ जो आत्मजयी॥19॥

झलक रहा जिनकी विद्या में लोक-अलोक सकल संसार।
दिखता वह स्पष्ट रूप से पृथक्-पृथक्निज-निज अनुसार।
शुद्ध शान्तमय शिवस्वरूप जो आदि-अन्त से हीन कहा।
उसी आप्त प्रभु की शरणा को प्राप्त रहूँ यह भाव सदा॥20॥

तरु निकाय होता ज्यों भस्मीभूत हुताशन के द्वारा।
उसी भाँति जिसने दुःख, चिंता, मान, मूर्च्छा, को मारा।
काम, शोक, भय, निद्रा, जिसके द्वारा क्षय को प्राप्त हुये।
उस अविकारी आप्तदेव की शरणा को हम प्राप्त हुये॥21॥

बनता नहीं शुभासन विधिवत् घासपूग या अन्य मही।
काष्ठफलक पाषाण सुखासन भी बुधजन को मान्य नहीं।
इन्द्रिय-विषय कषाय अराति हुये शान्त निष्क्रान्त जहाँ।
वह निर्मल स्वातम शुद्धासन सुधिजन को स्वीकार यहाँ॥22॥

आसन लोक प्रतिष्ठा पूजा महासंघ का सम्मेलन।
नहीं समाधि के यह साधन प्रथा कहें इनको सुधिजन।
इसीलिये हे भद्र! बाहरी सर्व वासनायें तू छोड़।
निज अध्यात्म निरत होकर तू सदाकाल उसमें रति जोड़॥23॥

जो कुछ बाह्य पदार्थ यहाँ वह मेरा कभी नहीं किंचित्।
उसी भाँति हो सकता कैसे मैं भी उनका कभी क्वचित्।
इस प्रकार दृढ़ निश्चय कर तू सर्व बाह्य आडम्बर छोड़।
हे सुभद्र! निज आतम में थिर हो शश्वत् उसमें रति जोड़॥24॥

जो निजात्मा को निज में ही कर लेता है अवलोकन।
वह निश्चय-दृग-ज्ञानमयी होता विशुद्ध अनुपम चेतन।
जो योगी एकाग्रचित थिर यत्र-तत्र सर्वत्र कहीं।
सत्य मान उसको होती है परम समाधि प्राप्त वहीं॥25॥

अहा आत्मा मम एकाकी शश्वत् शाश्वत अति-निर्मल।
अनुपम ज्ञानस्वभाव सहित, पररूप नहीं सिद्धांत अटल।
अन्य बाह्य सब वस्तु भावरागादि कर्म से ही निष्पन्न।
अतः विनाशी में अविनाशी मेरा आत्मा इनसे भिन्न॥26॥

चेतन की तन के संग भी है नहीं एकता जब संभव।
पुत्रादिक के साथ ऐक्य फिर क्यों, कैसे होगा संभव?
जब शरीर से जिस क्षण भी यह चर्म अलग हो जायेगा।
तब निश्चय से रोम कूप भी उस क्षण ही खो जायेगा॥27॥

भव-अटवी में देही प्राणी भोग रहा बहु दुःख दारुण।
पर-पदार्थ संयोग भाव ही एक मात्र उसका कारण।
शिवस्वरूप, शिवरूपमुक्ति की इच्छा हृदय समाई गर
तो त्रियोग से पूर्ण विलग करना होगा संयोग निकर॥28॥

भव अटवी में गिरने का जो कारण कहा महाबलवान।
वह सम्पूर्ण विकल्प जाल तू शीघ्र दूर कर पा सितध्यान।

देख सदा निर्लेप आत्मा सबसे विलग कर्ममल-हीन।
महामुक्ति के इच्छुक हे भवि! हो परमात्म तत्व में लीन॥29॥

पुराकाल में किये शुभाशुभ-कर्म आत्मा ने जैसे।
यहाँ इस समय हुये उसी को प्राप्त शुभाशुभ फल वैसे।
परकृत कर्म और उसका फल अन्य जीव को हो जावे।
तब तो स्वयं किये कर्मों की सर्व सफलता खो जावे॥30॥

सभी जीव पाते अपने द्वारा अर्जित कर्मों का फल।
देता नहीं किसी को कोई कुछ भी यह सिद्धान्त अटल।
यह 'विमर्श' करते रहना हे भवि! एकाग्रचित्त होकर।
''देने वाला कोई दूसरा है'' ऐसी बुद्धि खोकर॥31॥

दोष रहित निर्दोष सर्वदा सकल कर्म से रहित कहा।
ऐसा शुद्ध-बुद्ध परमातम अमितगति से वन्द्य अहा!
जिस भविजन का मन, चिंतन में लाता उस परमातम को।
वह पाता है मुक्ति निकेतन निज वैभव शुद्धातम को॥32॥

बत्तीस इन पद्यों से जो परमात्मा को देखता।
एकाग्रमन वह भव्य ही अविनाश पद को सेवता।
श्री अमितगति आचार्यकृत परमात्म द्वात्रिंशतिका।
पद्यानुवाद किया रहा शुभ-भाव पंचमगति का॥33॥

जो पाठ करता भाव से होता कषायों का शमन।
है वन्दनीय 'विमर्श' यह मिट जाये भव आवागमन॥

(इतिश्री सामायिक पाठ)

विरक्ति भावना

(रचयिता—सूरिगच्छाचार्य श्री विरागसागर जी महाराज)

अनित्य भावना

अनित्य योग संयोग अहा क्या, कितना सुख दे सकते हैं।
मित्र स्वजन अरू परिजन जन भी, साथ कहाँ दे सकते हैं।।
करू विषय सब संग संग्रह, पूजा यश सब क्षणिक रहा।
अनित्य योग से विरहित हूँ, अब नित्य योग में रहूँ सदा।।1।।

अशरण भावना

अशरण जग में शरण न कोई, शरणार्थी तू खोज जरा।
पुण्योदय तक साथ सभी हैं, क्षीण पुण्य पर दूर सदा।।
जिस-जिस की तू शरण खोजता, उनको भी जब शरण नहीं।
पंच गुरु अरु स्वयं आपकी शरण शास्त्र में उभय कहीं।।2।।

संसार भावना

संसार रहा असारपूर्ण ही, नहीं सार इनमें कुछ भी।
हर भव में सब छान लिया है, नहीं मिला है सार कहीं।।
दुखी सभी जन यहाँ दिखे हैं, स्वार्थ भाव से ग्रसे सभी।
अतः त्यागकर शिवपथ पर मैं, पग-पग पथ पर बढ़ूँ अभी।।3।।

एकत्व भावना

एकत्व रूप से जन्म लिया था, मरण स्वयं का हुआ सदा।
कर्म पूर्व में किए स्वयं थे, भोगा उनको स्वयं अहा।।
ना ही बाँट सका है कोई, सुख-दुख ये सब किंचित भी।
अतः धर्ममय पथ पर चलकर बनूँ स्वयं एकत्वमयी।।4।।

अन्यत्व भावना

अन्यत्व रूप गृह बांधव जन हैं, वैभव सम्भव जितना है।
गुरु-जन, परिजन, स्वजन देह भी वस्त्राभूषण भिन्न रहे।।
कर्म स्वभाव से भिन्न सदा है, यश पूजा सब भिन्न रही।
स्वयं स्वभाव से विरहित है सब, अन्यत्व मयी है भिन्न सभी।।5।।

अशुचि भावना

अशुचि पदार्थ हैं जग में जितने, जिनसे तेरी देह बनी।
अन्य अर्थ से घृणा रही पर, अशुचि देह से घृणा न की।।
जिसमें तू चिरकाल रहा है, हटने की जिससे मति न हुई।
अतः देह को ऐसा त्यागो, प्राप्त न फिर हो सके कभी।।6।।

आस्रव भावना

आस्रव होता जिस कारण से, उनको देखो चेतन तुम।
कितना होता अहित सदा है, जिनसे पतित हुए हो तुम।।
शुभ आस्रव भी आस्रवमय है, अशुभ अशुभतर जान सदा।
कर्मास्रव के उन भावों से, तूँ दूर अहा हो दूर सदा।।7।।

संवर भावना

संवर होता रत्नत्रय से, पालन करने जुट जाओ।
श्रेष्ठ हृदय से यथाशक्ति से, निर्दोष साधना में आओ।।
संवर की दृढ़ दीवालों में, आस्रव को स्थान नहीं।
आस्रव के रुक जाने से फिर, निश्चित शिव की प्राप्ति रही।।8।।

निर्जरा भावना

निर्जर जर-जर जला डालती, कर्म रूप सब ईंधन को।
घिस-घिस घिसने से आरी भी, काट डालती चन्दन को।

सम्यक् युक्ति युक्त तपों से, अविपाक निर्जरा होती है।
संक्लेश मुक्त सद्धर्म युक्त, वह कलिल कालिमा धोती है।।9।।

लोक भावना

लोक उर्ध्व और मध्य-अधौ के, भेदों से त्रय भेदमयी।
रत्नत्रय निज धर्म बिना ही, जीव जगत भवभ्रमत सभी।।
भ्रमण-भ्रमण नित करने से ही, भ्रमित हुई है सभी मती।
अतः धर्म को पाकर चेतन, काटो अब तो कर्म सभी।।10।।

बोधि दुर्लभ भावना

बोधि दुर्लभ कहते चेतन, रत्नत्रय मय भावों को।
एक-एक जब दुर्लभ हैं फिर, तीन रत्न की बात कहो।।
अर्जन जिसका महाकठिन है, रक्षण की फिर कथा कहां।
अतः पतन के हेतु अनेकों, उनसे रह तू सजग सदा।।11।।

धर्म भावना

धर्म स्वभावमयी चेतन, जिससे तू नित दूर रहा।
भव सिन्धु से पतित जनों को, पावन सुख में रखे सदा।
धर्म साधना स्वयं समाहित, सत्य हृदय के भावों से।
जिससे लसती द्रव्य साधना, 'विराग' शीर्ष ही धारो ये।।12।।

दोहा

विरक्ति भावना हे प्रभु, भायी विरक्ति काज।
वीतरागता प्राप्त हो, मिटे जगत संताप।।13।।
साध्य स्मरण नित रहे, यही भावना हेतु।
यथा शक्ति बढ़ता रहूँ, पाऊँ भव का सेतु।।14।।

साध्य सिद्धि जब तक नहीं, रहे भावना सार।
शिवपथ पर मम गमन हो, खुले मोक्ष का द्वार।।15।।

समाधि भावना

दिन रात मेरे स्वामी, मैं भावना ये भाऊँ।
देहान्त के समय में, तुमको न भूल जाऊँ॥

शत्रु अगर कोई हों, संतुष्ट उनको कर दूँ।
समता का भाव धर कर, सब से क्षमा कराऊँ॥

त्यागूँ आहार पानी, औषध विचार अवसर।
टूटे नियम न कोई, दृढ़ता हृदय में लाऊँ॥

जागें नहीं कषायें, नहिं वेदना सतावे।
तुमसे ही लौ लगी हो, दुर्ध्यान को भगाऊँ॥

आतम स्वरूप अथवा, आराधना विचारूँ।
अरहन्त सिद्ध साधू, रटना यही लगाऊँ॥

धर्मात्मा निकट हों, चरचा धर्म सुनावें।
वे सावधान रक्खें, गाफिल न होने पाऊँ॥

जीने की हो न बांछा, मरने की हो न इच्छा।
परिवार मित्र जन से, मैं मोह को हटाऊँ॥

भोगे जो भोग पहले, उनका न होवे सुमरन।
मैं राज्य सम्पदा या, पद इन्द्र का न चाहूँ॥

रत्नत्रय का पालन, हो अन्त में समाधि।
'शिवराम' प्रार्थना यह, जीवन सफल बनाऊँ॥

समाधि मरण (भाषा)

गौतम स्वामी बन्दौं नामी मरण समाधि भला है।
मैं कब पाऊँ निश दिन ध्याऊँ गाऊँ वचन कला है॥
देव धर्म गुरु प्रीति महा दृढ़ सप्त व्यसन नहिं जाने।
त्याग बाईस अभक्ष संयमी बारह व्रत नित ठाने॥1॥

चक्की उखरी चूलि बुहारी पानी त्रस न विराधै।
बनिज करै पर द्रव्य हरै नहिं छहों कर्म इमि साधै॥
पूजा शास्त्र गुरुन की सेवा संयम तप चहुँ दानी।
पर उपकारी अल्प अहारी सामायिक विधि ज्ञानी॥2॥

जाप जपै तिहुँ योग धरै दृढ़, तन की ममता टारै।
अन्त समय वैराग्य सम्हारै, ध्यान समाधि विचारै॥
आग लगै अरु नाव डुबै जब, धर्म विघन तब आवै।
चार प्रकार आहार त्यागि के, मन्त्र सु-मन में ध्यावे॥3॥

रोग असाध्य जरा बहु देखे, कारण और निहारै।
बात बड़ी है जो बनि आवे, भार भवन को टारै॥
जो न बने तो घर में रहकरि, सबसों होय निराला।
मात पिता सुत तियको सौपें, निज परिग्रह इहिकाला॥4॥

कुछ चैत्यालय कुछ श्रावकजन, कुछ दुखिया धन देई।
क्षमा क्षमा सब ही सों कहिके, मन की शल्य हनेई॥
शत्रुनसों मिल निज कर जोरे, मैं बहु कीनी बुराई।
तुमसे प्रीतम को दुख दीने, क्षमा करो सो भाई॥5॥

धन धरती जो मुखसों मांगै, सो सब दे संतोषै।
छहों काय के प्राणी ऊपर, करुणा भाव विशेषै॥
ऊँच नीच घर बैठ जगह इक, कुछ भोजन कुछ पै लै।
दूधाधारी क्रम क्रम तजि के, छाछ अहार पहेलै॥6॥

छाछ त्यागि के पानी राखै, पानी तजि संथारा।
भूमि मांहि थिर आसन मांडै, साधर्मी ढिंग प्यारा॥
जब तुम जानो यह न जपै है, तब जिनवाणी पढ़िये।
यों कहि मौन लियो सन्यासी, पंच परम पद गहिये॥7॥

चार अराधन मन में ध्यावै, बारह भावन भावै।
दशलक्षण मुनि-धर्म विचारै, रत्नत्रय मन ल्यावै॥
पैंतीस सोलह षटपन चारों, दुइ इक बरन विचारै।
काया तेरी दुख की ढेरी, ज्ञानमयी तू सारै॥8॥

अजर अमर निज गुणसों पूरै, परमानन्द सुभावै।
आनन्दकन्द चिदानंद साहब, तीन जगतपति ध्यावै॥
क्षुधा तृषादिक होय परीषह, सहै भाव सम राखै।
अतीचार पाँचों सब त्यागै, ज्ञान सुधारस चाखै॥9॥

हाड मांस सब सूख जाय जब, धर्मलीन तन त्यागै।
अद्भुत पुण्य उपाय स्वर्ग-में, सेज उठै ज्यों जागै॥
तहाँ तैं आवै शिवपद पावै, विलसै सुक्ख अनन्तो।
'द्यानत' यह गति होय हमारी, जैनधर्म जयवन्तो॥10॥

जिन दर्शन की महिमा

दिट्ठे तुमम्मि जिणवर चम्ममएणच्छिणा वि तं पुण्णं।
जं जणइ पुरो केवलदंसणणाणाइ णयणाइं।।757।।

(पद्मनंदी पंच विशंतिका)

अर्थात् हे जिनेन्द्र! चर्ममय नेत्रों से भी आपका दर्शन होने पर वह पुण्य प्राप्त होता है जो कि भविष्य में केवलदर्शन और केवलज्ञान रूप नेत्र को उत्पन्न करता है।

समाधि मरण

(कवि सूरचन्द कृत)

बन्दों श्री अरहंत परमगुरु, जो सबको सुखदाई।
इस जग में दुख जो मैं भुगते, सो तुम जानो राई।।
अब मैं अरज करूँ प्रभु तुमसे, कर समाधि उर माँही।
अन्त समय मैं यह वर मांगूँ, सो दीजै जग राई।।1।।

भव भव में तनधार नया मैं, भव भव शुभ संग पायो।
भव भव में नृपरिद्धि लई मैं मात पिता सुत थायो।।
भव भव में तन पुरुषतनों धर, नारी हूँ तन लीनो।
भव भव में मैं भयो नपुंसक, आतम सुख नहिं चीन्हो।।2।।

भव भव में सुरपदवी पाई, ताके सुख अति भोगे,।
भव भव में गति नरक तनो धर, दुख पायो विधियोगे।।
भव भव में तिर्यंच योनिधर, पायो दुख अति भारी।
भव भव में साधर्मी जन को, संग मिल्यो हितकारी।।3।।

भव भव में जिनपूजन कीनी, दान सुपात्रहि दीनो।
भव भव में मैं समवसरण में, देखो जिनगुण भीनो।।
ऐसी वस्तु मिलीं भव भव में, सम्यकगुण नहिं पायो।
नहिं समाधिजुत मरण कियो मैं, तातैं जग भरमायो।।4।।

काल अनादि गयो जग भ्रमतैं, सदा कुमरणहिं कीनो।
एक बार हूँ सम्यकयुत मैं, निज आतम नहिं चीनो।।
जो निज पर को ज्ञान होय तो, मरण समय दुख काई।
देह विनासी मैं निज वासी, जोति स्वरूप सदाई।।5।।

विषय कषायन के वश होकर, देह आपनो जान्यो।
कर मिथ्या सरधान हिये बिच, आतम नाहिं पिछान्यो।।

यों कलेश हियधार मरणकर, चारों गति भरमायो।
सम्यकदर्शन-ज्ञान-चरन ये, हिरदे में नहिं लायो।।6।।

अब या अरज करूं प्रभु सुनिये, मरण समय यह मांगो।
रोगजनित पीड़ा मत होवे, अरु कषाय मत जागो।।
ये मुझ मरण समय दुखदाता, इन हर साता कीजै।
जो समाधियुत मरण होय मुझ, अरु मिथ्यामद छीजे।7।।

यह तन सात कुधातमई है, देखत ही घिन आवै।
चर्म लपेटी ऊपर सोहै, भीतर विष्टा पावै।।
अति दुर्गन्ध अपावनसों यह, मूरख प्रीति बढ़ावै।
देह विनासी जिय अविनासी, नित्यस्वरूप कहावै।।8।।

यह तन जीर्ण कुटीसम आतम, यातैं प्रीति न कीजै।
नूतन महल मिलै जब भाई, तब यामैं क्या छीजै।।
मृत्यु होन से हानि कौन है, याको भय मत लावो।
समता से जो देह तजोगे, सो शुभतन तुम पावो।।9।।

मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, इस अवसर के माँहीं।
जीरन तन से देत नयो यह, या सम काहू नाहीं।।
या सेती इस मृत्यु समय पर, उत्सव अति ही कीजै।
क्लेश भाव को त्याग सयाने, समता भाव धरीजै।।10।।

जो तुम पूरब पुण्य किये हैं, तिनको फल सुखदाई।
मृत्यु मित्र बिन कौन दिखावै, स्वर्ग सम्पदा भाई।।
रागद्वेष को छोड़ सयाने, सात व्यसन दुखदाई।
अन्त समय में समता धारो, पर भव पन्थ सहाई।11।।

कर्म महादुठ बैरी मेरो, तासेती दुखपावै।
तन पिंजरे में बंद कियो मोहि, यासों कौन छुड़ावै।।
भूख तृषा दुख आदिअनेकन, इस ही तनमें गाढ़ै।

मृत्युराज अब आय दयाकर, तन पिंजरसौ काढ़ै।।12।।

नाना वस्त्राभूषण मैंने, इस तन को पहराये।
गन्ध सुगन्धित अतर लगाये, षट्रस असन कराये।।
रात दिना मैं दास होयकर, सेवकरी तन केरी।
सो तन मेरे काम न आयो, भूल रह्यो निधि मेरी।।13।।

मृत्युराज को शरण पाय तन, नूतन ऐसी पाऊँ।
जामैं सम्यक रतन तीन लहि, आठों कर्म खपाऊँ।।
देखो तन सम ओर कृतघ्नी, नाहिं सु या जगमाहीं।
मृत्यु समय में ये ही परिजन, सबही जहिं, दुखदाई।।14।।

यह सब मोह बढ़ावन हारे, जियको दुर्गति दाता।
इनसे ममत निबारो जियरा, जो चाहो सुख साता।।
मृत्यु-कल्पद्रुम पाय सयाने, मांगो इच्छा जेती।
समता धरकर मृत्यु करो तो, पावो सम्पत्ति तेती।।15।।

चौआराधन सहित प्राण तज, तो या पदवी पावो।
हरि प्रतिहरि चक्री तीर्थेश्वर, स्वर्गमुक्ति में जावो।।
मृत्यु कल्पद्रुम सम नहिं दाता, तीनों लोक मंझारै।
ताको पाय कलेश करो मत, जन्म जवाहर हारे।।16।।

इस तन में क्या राचै जियरा, दिन दिन जीरन हो है।
तेजकांति बल नित्य घटत है, या सम अथिर सु को है।।
पांचों इन्द्री शिथिल भई अब, श्वास शुद्ध नहिं आवै।
तापर भी ममता नहिं छोड़ै, समता उर नहिं लावै।।17।।

मृत्युराज उपकारी जियको, तनसौं तोहि छुड़ावै।
नातर या तन बन्दीगृह में, परयो परयो बिललावै।।
पुद्गल के परमाणु मिलकै, पिण्ड रूप तन भासी।
याही मूरत मैं अमूरती, ज्ञानज्योति गुणवासी।।18।।

रोगशोक आदिक जो वेदन, ते सब पुद्गल लारै।
मैं तो चेतन व्याधि बिना नित, हैं सो भाव हमारे।।
या तन सो इस क्षेत्रसम्बन्धी, कारन आन बन्यो है।
खान पान दे याको पोष्यो, अब समभाव ठन्यो है।19।।

मिथ्यादर्शन आत्मज्ञान बिन, यह तन अपनो मान्यो।।
इन्द्री भोग गिने सुख मैंने, आपो नाहिं पिछान्यो।
तन विनाशतै नाश जान निज, यह अयान दुखदाई।
कुटुम्ब आदि को अपनो जान्यो, भूल अनादि छाई।।20।।

अब निज भेद जथारथ समझ्यो, मैं हूँ ज्योतिस्वरूपी।
उपजै बिनसै सो यह पुद्गल जान्यो याको रूपी।।
इष्ट अनिष्ट जेते सुख दुख हैं, सो सब पुद्गल लागे।
मैं जब अपनो रूप विचारो, तब वे सब दुख भागे।।21।।

बिन समता तनैक धरे मैं, तिनमें ये दुख पायो।
शस्त्रघात तैं नन्त बार मर नाना योनि भ्रमायो।।
बार अनन्तहिं अग्नि माहिं जर, मूवो सुमति न लायो।
सिंह व्याघ्र अहिनैक बार मुझ, नाना दुःख दिखायो।।22।।

बिन समाधि ये दुःख लहे मैं, अब उर समता आई।
मृत्युराज को भय नहिं मानो, देवे तन सुखदाई।।
यातें जब लग मृत्यु न आवै, जब लग जप तप कीजै।
जप तप बिन इस जग के मांही, कोई भी नहिं सीजै।।23।।

स्वर्ग सम्पदा तपसों पावै, तपसों कर्म नसावै।
तपही सों शिवकामिनिपति है, यासों तप चित लावै।।
अब मैं जानी समता बिन मुझ, कोऊ नाहिं सहाई।
मात पिता सुत बान्धव तिरिया, येसब हैं दुखदाई।।24।।

मृत्यु समय में मोह करें ये, तातैं आरत हो है।

आरत तें गति नीची पावै, यों लख मोह तज्यो है।।
और परिग्रह जेते जग में, तिनसौं प्रीति न कीजै।
परभव में ये संग न चालैं, नाहक आरत कीजै।।25।।

जे जे वस्तु लखत हैं ते पर, तिनसों नेह निवारो।
परगति में ये साथ न चालैं, ऐसो भाव विचारो।।
जो पर भव में संग चलै मुझ, तिनसे प्रीति सु कीजै।
पंच पाप तज समता धारो, दान चार विधि कीजै।।26।।

दश लक्षणमय धर्म धरो उर, अनुकम्पा उर लावो।
षोडशकारण नित-चिंतो, द्वादश भावना भावो।।
चारों परवी प्रोषध कीजै, असन रात को त्यागो।
समता धर दुरभाव निवारो, संयमसों अनुरागो।।27।।

अन्तसमय में ये शुभ भावहिं, होवै आनि सहाई।
स्वर्ग मोक्षफल तोहि दिखावैं, रिद्धि देहिं अधिकाई।।
खोटे भाव सकल जिय त्यागो, उर में समता लाके।
जासेती गति चार दूर कर, बसो मोक्षपुर जाके।।28।।

मन थिरता करके तुम चिंतो, चौ आराधन भाई।
वे ही ताकौ सुखकी दाता, और हितू कोउ नाहीं।।
आगे बहु मुनिराज भये हैं, तिन गहि थिरता भारी।
बहु उपसर्ग सहै शुभ भावन, आराधन उर धारी।।29।।

तिनमें कछु इक नाम कहूँ मैं, सुनो भव्य चित्त लाके।
भावसहित अनुमोदे तासो, दुर्गति होय न जाके।।
अरु समता निज उर में आवै, भाव अधीरज जावे।
यों निशिदिन जोउन मुनिवर को, ध्यान हिये बिच लावै।।30।।

धान्य धन्य सुकुमाल महामुनि, कैसे धीरज धारी।
एक स्यालनी युग बालकयुत, पाँव भख्यो दुखकारी।।

यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित्त धारी।
तो तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्यु महोत्सव भारी।।31।।

धन्य धन्य जु सुकौशल स्वामी, व्याघ्री ने तन खायो।
तो श्री मुनि नेक डिगे नहिं, आतमसों हित लायो।।
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्युमहोत्सव भारी।।32।।

देखो गजमुनि के सिर ऊपर,विप्र अगिनि बहु बारी।
शीश जलै जिमि लकड़ी तनको, तो भी नाहिं चिंगारी।
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्युमहोत्सव भारी।।33।।

सनत्कुमार मुनि के तन में, कुष्ट वेदना व्यापी,
छिन्न-भिनन मन तासो हूबो, तब चिन्त्यो गुण आपी।
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्युमहोत्सव भारी।।34।।

श्रेणिकसुत गंगा मे डूब्यो, तब जिन नाम चितार्यो,
धर सलेखना परिग्रह छोड्यो, शुद्धभाव उर धार्यो।
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्युमहोत्सव भारी।।35।।

समन्तभद्र मुनिवर के तन में, क्षुधा वेदना आई।
ता दुःख में मुनि नेक न डिगियो, चिन्त्यो निजगुण भाई।।
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्युमहोत्सव भारी।।36।।

ललितघटादिक तीस दोय मुनि, कौशाम्बी तट जानो।
नदी में मुनि बहकर डूबे, सो दुख उन नहिं मानो।।
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।

तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्युमहोत्सव भारी।।37।।

धर्मघोष मुनि चम्पानगरी, बाह्य ध्यान धर ठाढ़ो।
एक मास की कर मर्यादा, तृषा दुःख सह गाढ़ो।।
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्युमहोत्सव भारी।।38।।

श्रीदतमुनि के पूर्व जन्म को, बैरी देव सु आके।
विक्रिय कर दुख शीततनो सो सह्यो साधु मनलाके।।
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्युमहोत्सव भारी।।39।।

वृषभसेन मुनि उष्ण शिला पर ध्यान धरयो मनलाई।
सूर्य घाम अरु उष्ण पवन की, वेदन सहि अधिकाई।।
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्युमहोत्सव भारी।।40।।

अभयघोष मुनि काकंदीपुर, महावेदना पाई।
वैरी चण्ड ने सब तन छेद्यो, दुख दीनो अधिकाई।।
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्युमहोत्सव भारी।।41।।

विद्युतचर ने बहु दुख पायो, तोभी धीर न त्यागी।
शुभभावन से प्राण तजे निज, धन्य और बड़भागी।।
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्युमहोत्सव भारी।।42।।

पुत्र चिलाती नामा मुनिको, बैरी ने तन घातो।
मोटे मोटे कीट पड़े तन, तापर निज गुण रातो।।
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्युमहोत्सव भारी।।43।।

दण्डकनामा मुनि की देही, बाणन कर अति भेदी।
तापर नेक डिगे नहिं वे मुनि, कर्म महारिपु छेदी।।
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्युमहोत्सव भारी।।44।।

अभिनन्दन मुनि आदि पाँच सौ, घानि पेलि जु मारे।
तौ भी श्रीमुनि समता धारी, पूरब कर्म बिचारे।।
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्युमहोत्सव भारी।।45।।

चाणक मुनि गौघर के माही, मूँद अगनि परजाल्यो।
श्रीगुरु उर समभाव धारके, अपनो रूप सम्हाल्यो।।
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्युमहोत्सव भारी।।46।।

सात शतक मुनिवर ने पायो, हस्तिनापुर में जानो।
बलिविप्रकृत घोर उपद्रव, सो मुनिवर नहिं मानो।।
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्युमहोत्सव भारी।।47।।

लोहमयी आभूषण गढ़के, ताते कर पहराये।
पाँचों पांडव मुनि के तन में, तो भी नाहिं चिगाये।।
यह उपसर्ग सहो धर थिरता, आराधन चित धारी।
तौ तुमरे जिय कौन दुःख है, मृत्युमहोत्सव भारी।।48।।

और अनेक भये इस जग में, समता रस के स्वादी।
वे ही हमको हों सुखदाता, हरहैं टेव प्रमादी।।
सम्यक् दर्शन ज्ञान चरण तप, ये आराधन चारों।
ये ही मोकूं सुख के दाता, इन्हें सदा उर धारों।।49।।

यों समाधि उर माही लाबो, अपनो हित जो चाहो।
तज ममता अरु आठों मदको, जोतिस्वरूपी ध्यावो।।
जो कोई नित करत पयानो, ग्रामान्तर के काजै।
सो भी शकुन विचारै नीके, शुभ के कारण साजै।।50।।

मातपिता अरु सर्व कुटुम सों, नीको शकुन बनावे।
हलदी-धनिया-पुंगी-अक्षित, दूब-दही-फल लावै।।
एक ग्राम जाने के कारण, करैं शुभाशुभ सारे।
जब परगतिको करत पयानो, तब नहिं सोचे प्यारे।।51।।

सर्व कुटुम्ब जब रोवन लागै, तोहि रुलावे सारे।
ये अपशुकुन करै सुन तोकों, तू यों क्यों न विचारे।।
अब परगति को चालत बिरियां, धर्मध्यान उर आनो।
चारों आराधन आराधो, मोहतनों दुखहानो।।52।।

होय निःशल्य तजो सब दुविधा, आतम राम सुध्यावो।
जब परगतिको करहु पयानो, परम तत्त्व उर लावो।।
मोह जालको काट पियारे, अपनो रूप बिचारो।
मृत्यु मित्र उपकारी तेरो, यों निश्चय उर धारो।।53।।

मृत्यु महोत्सव पाठको, पढ़ो सुनो बुधिवान।
सरधार धर नित सुख लहो, 'सूरचन्द्र' शिवथान।।
पंच उभय नवएक नभ, सम्बत् सो सुखदाय।
आश्विन श्यामा सप्तमी, कह्यो पाठ मन लाय।।

****

निर्वाणकाण्डभाषा

वीतराग वंदौं सदा, भाव सहित सिरनाय।
कहूँ कांड निर्वाण की, भाषा सुगम बनाय॥
(चौपाई)

अष्टापद आदीश्वर स्वामी, वासुपूज्य चंपापुर नामि।
नेमिनाथ स्वामी गिरनार, वन्दौं भाव-भगति उर धार॥

चरम तीर्थंकर चरम-शरीर, पावापुरि स्वामी महावीर।
शिखरसम्मेद जिनेसुर बीस, भाव सहित वन्दौं निश-दीस॥

वरदत्तराय रु इन्द मुनिंद, सायरदत्त आदि गुणवृन्द।
नगर तारवर मुनि उठकोड़ि, वन्दौं भाव सहित कर जोड़ि॥

श्रीगिरनार शिखर विख्यात, कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात।
संबु प्रद्युम्न कुमर द्वै भाय, अनिरुध आदि नमूँ तसु पाय॥

रामचन्द्र के सुत द्वै वीर, लाडनरिंद आदि गुणधीर।
पाँच कोड़ि मुनि मुक्ति मँझार, पावागिरि वन्दौं निरधार॥

पाण्डव तीन द्रविड़-राजान, आठ कोड़ि मुनि मुकति पयान।
श्री शत्रुंजय-गिरि के सीस, भाव सहित वन्दौं निश-दीस॥

जे बलभद्र मुकति में गये, आठ कोड़ि मुनि और हू भये।
श्रीगजपंथ शिखर सुविशाल, तिनके चरण नमूँ तिहुँ काल॥

राम हणू सुग्रीव सुडील, गवय गवाख्य नील महानील।
कोड़ि निन्याणवै मुक्ति पयान, तुंगीगिरि वन्दौं धरि ध्यान॥

नंग अनंग कुमार सुजान, पाँच कोड़ि अरु अर्ध प्रमान।
मुक्ति गये सोनागिरि-शीश ते वन्दों त्रिभुवनपति ईश॥

रावण के सुत आदिकुमार, मुक्ति गये रेवा-तट सार।
कोटि पंच अरु लाख पचास, ते वन्दौं धरि परम हुलास॥

रेवानदी सिद्धवर कूट, पश्चिम दिशा देह जहँ छूट।

द्वै चक्री दश कामकुमार, उठकोड़ि वन्दौं भव पार॥

बड़वानी बड़नयर सुचंग, दक्षिण दिशि गिरि चूल उतंग।
इन्द्रजीत अरु कुम्भ जु कर्ण, ते वन्दौं भव-सागर-तर्ण॥

स्वर्णभद्र आदि मुनि चार, पावागिरि-वर-शिखर मँझार।
चेलना-नदी-तीर के पास, मुक्ति गये वन्दों नित तास॥

फलहोड़ी बड़गाम अनूप, पश्चिम दिशा द्रोणगिरि रूप।
गुरुदत्तादि मुनीसुर जहाँ, मुक्ति गये वन्दों नित तहाँ॥

बाल महाबाल मुनि दोय, नागकुमार मिले त्रय होय।
श्री अष्टापद मुक्ति मँझार, ते वन्दौं नित सुरत सँभार॥

अचलापुर की दिश ईसान, तहाँ मेढ़गिरि नाम प्रधान।
साढ़े तीन कोड़ि मुनिराय, तिनके चरण नमूँ चित लाय॥

वंसस्थल वन के ढिंग होय, पश्चिम दिशा कुन्थुगिरि सोय।
कुलभूषण दिशभूषण नाम, तिनके चरणनि करूँ प्रणाम॥

जसरथ राजा के सुत कहे, देश कलिंग पाँच सौ लहे।
कोटिशिला मुनि कोटि प्रमान, वन्दन करूँ जोरि जुग पान॥

समवसरण श्रीपार्श्व-जिनन्द, रेसिन्दी गिरि-नयनानन्द।
वरदत्तादि पंच ऋषिराज, ते वन्दौं नित धरम-जिहाज॥

मथुरापुरी पवित्र उद्यान, जम्बूस्वामी गये निर्वाण।
चरमकेवली पंचमकाल, ते वन्दौं नित दीनदयाल॥

तीन लोक के तीरथ जहाँ, नित प्रति वन्दन कीजै तहाँ।
मन वच काय सहित सिर नाय, वन्दन करहिं भविक गुण गाय॥

संवत सतरहसौ इकताल, आश्विन सुदि दशमी सुविशाल।
'भैया! वंदन करहिं त्रिकाल, जय निर्वाण काण्ड गुणमाल

सम्बोधन

सदा संतोष कर प्राणी, अगर सुख से रहा चाहे।
घटा दे मन की तृष्णा को, अगर अपना भला चाहे॥
आग में जिस तरह ईंधन पड़ेगा ज्योति ऊँची हो।
बढ़ा मत लोभ की तृष्णा, अगर दुःख से बचा चाहे॥
वही धनवान है जग में, लोभ जिसके नहीं मन में।
वह निर्धन रंक होता है, जो परधन को हरा चाहे॥
दुःखी रहते हैं, वह निशिदिन, जो आरत ध्यान करते हैं।
न कर लालच अगर आजाद, रहने का मजा चाहे॥
बिना माँगे मिले मोती, न्यामत देख दुनिया में।
भीख माँगे नहीं मिलती, अगर कोई गहा चाहे॥

इष्ट प्रार्थना

भावना दिन रात मेरी, सब सुखी संसार हो।
सत्य संयम शील का, व्यवहार घर-घर बार हो॥टेक॥
धर्म का प्रचार हो अरु देश का उद्धार हो।
और ये बिगड़ा हुआ, भारत चमन गुलजार हो॥1॥
ज्ञान के अभ्यास से, जीवों का पूर्ण विकाश हो।
धर्म के प्रचार से, हिंसा का जग से ह्रास हो॥2॥
शान्ति अरु आनन्द का, हर एक घर में वास हो।
वीर वाणी पर सभी, संसार का विश्वास हो॥3॥
रोग अरु भय शोक होवें, दूर सब परमात्मा।
कर सकें कल्याण ज्योति, सब जगत की आत्मा॥4॥

देव-स्तुति

अहो! जगतगुरु देव, सुनियो अरज हमारी।
तुम प्रभु दीनदयाल, मैं दुखिया संसारी॥
इस भव वन के माँहिं, काल अनादि गमायो।
भ्रम्यो चतुर्गति माँहिं, सुख नहिं, दुख बहु पायो॥
कर्म महारिपु जोर, एक न कान करै जी।
मन मान्या दुख देहि, काहूसों नाहिं डरै जी॥
कबहूँ इतर निगोद, कबहूँ नरक दिखावे।
सुर-नर-पशुगति माँहिं, बहुविधि नाच-नचावे॥
प्रभु! इनको परसंग, भव-भव माँहिं बुरो जी।
जे दुख देखे देव! तुमसों नाहिं दुरो जी॥
एक जनम की बात, कहि ना सकों, सुनि स्वामी।
तुम अनन्त पर्याय, जानत अन्तरयामी॥
मैं तो एक अनाथ, ये मिलि दुष्ट घनेरे।
कियो बहुत बेहाल, सुनियो साहिब मेरे॥
ज्ञान महानिधि लूटि, रंक निबल करि डार्‌यो।
इन ही तुम मुझ माँहिं, हे जिन! अंतर पार्‌यो॥
पाप पुण्य मिल दोय, पायनि बेड़ी डारी।
तन कारागृह माँहिं, मोहि दियो दुख भारी॥
इनको नेक विगार, मैं कछु नांहि कियो जी।
बिन कारण जगबन्धु! बहुविधि बैर लियो जी॥
अब आयो तुम पास, सुनि जिन सुजस तिहारो।
नीति-निपुन महाराज कीजे न्याय हमारो॥
दुष्टन देहु निकार, साधुन को रख लीजे।
विनवै 'भूधरदास' हे प्रभु! ढील न कीजे॥

मोक्षशास्त्र (तत्त्वार्थसूत्र)

(प.पू. आचार्य उमास्वामी जी विरचित)

मोक्षमार्गस्य नेतारं, भेत्तारं कर्मभूभृताम्।
ज्ञातारं विश्वतत्त्वानां, वंदे तद्गुणलब्धये॥
त्रैकाल्यं द्रव्य-षट्कं, नव पद-सहितं जीव-षट्काय-लेश्याः।
पञ्चान्येचास्तिकाया, व्रत-समिति-गति-ज्ञान-चारित्र-भेदाः॥
इत्येतन्मोक्षमूलं, त्रिभुवन-महितैः प्रोक्तमर्हद्भिरीशैः।
प्रत्येति श्रद्धधाति, स्पृशति च मतिमान् यः सवैशुद्धदृष्टिः॥1॥
सिद्धे जयप्पसिद्धे, चउव्विहाराहणाफलं पत्ते।
वंदित्ता अरहन्ते, वोच्छं आराहणा कमसो॥2॥
उज्जोवणमुज्जवणं, णिव्वहणं साहणं च णिच्छरणं।
दंसण-णाण-चरित्तं तवाणमाराहणा भणिया॥3॥

प्रथम अध्याय

सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्राणि-मोक्षमार्गः।1। तत्त्वार्थ-श्रद्धानं सम्यग्दर्शनं।2। तन्निसर्गादधिगमाद्वा।3। जीवाजीवास्रव-बंध-संवर-निर्जरा-मोक्षास्तत्त्वं।4। नाम-स्थापना-द्रव्य-भावतस्तन्न्यासः।5। प्रमाण-नयैरधिगमः।6। निर्देशस्वामित्व-साधनाधिकरण-स्थिति-विधानतः।7। सत्संख्या-क्षेत्र- स्पर्शन-कालांतर-भावाल्पबहुत्वैश्च।8। मति-श्रुतावधि- मनःपर्यय केवलानि ज्ञानं।9। तत्प्रमाणे।10। आद्ये परोक्षं।11। प्रत्यक्षमन्यत्।12। मतिः स्मृतिः संज्ञा चिंताऽभिनिबोध इत्यनर्थान्तरं।13। तदिन्द्रियानिन्द्रिय-निमित्तं।14। अवग्रहेहावाय-धारणाः।15। बहु-बहुविधक्षिप्रानिः सृतानुक्त-ध्रुवाणां सेतराणां।16। अर्थस्य।17। व्यञ्जनस्यावग्रहः।18।

न चक्षु-रनिन्द्रियाभ्यां।19। श्रुतं मतिपूर्वं द्व्यनेकद्वादशभेदं।20। भवप्रत्ययोऽवधिर्देव-नारकाणां।21।क्षयोपशम-निमित्तः षड्विकल्पः शेषाणां।22। ऋजु-विपुलमती मनः पर्ययः।23। विशुद्ध्यप्रतिपाताभ्यां तद्विशेषः।24। विशुद्धिक्षेत्र स्वामिविषयेभ्योऽवधि-मनः पर्यययोः।25।मतिश्रुतयोर्निबंधो द्रव्येष्वसर्व-पर्यायेषु।26। रूपिष्ववधेः।27। तदनंतभागे मनः पर्ययस्य।28। सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य।29। एकादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः।30। मतिश्रुता-वधयो विपर्ययश्च।31। सदसतो-रविशेषाद्यदृच्छोप-लब्धेरुन्म-त्तवत्।32। नैगम-संग्रह-व्यवहारर्जु सूत्र-शब्द-समभिरूढैवंभूता नयाः।33।

(इति तत्त्वार्थसूत्रे, मोक्षशास्त्रे प्रथमोऽध्यायः।1।)

द्वितीय अध्याय

औपशमिक-क्षायिकौ भावौ मिश्रश्च जीवस्य स्वतत्त्वमौदयिक-पारिणामिकौ च।1। द्विनवाष्टादशै-कविंशति-त्रि-भेदा यथाक्रमं।2। सम्यक्त्व-चारित्रे।3। ज्ञानदर्शन-दान-लाभभोगोपभोग-वीर्याणि च।4। ज्ञानाज्ञान दर्शनलब्ध-यश्चतुस्त्रित्रिपञ्चभेदाः सम्यक्त्व-चारित्र संयमा-संयमाश्च।5। गति-कषाय-लिंग-मिथ्यादर्शना-ज्ञाना-संयतासिद्ध- लेश्या-श्चतुश्चतुस्त्रये-कैकैकैकषड्भेदाः।6। जीवभव्याभव्यत्वानि च।7। उपयोगो लक्षणं।8। स द्विविधोऽष्ट चतुर्भेदः।9। संसारिणो मुक्ताश्च।10। समनस्काऽमनस्काः।11। संसारिणस्त्रस-स्थावराः।12। पृथिव्यप्तेजोवायु-वनस्पतयः स्थावराः।13। द्वीन्द्रियादय-स्त्रसाः।14। पंचेन्द्रियाणि।15। द्विविधानि।16। निर्वृत्त्युपकरणे द्रव्येन्द्रियं।17। लब्ध्युपयोगौ भावेन्द्रियं।18।

स्पर्शन-रसन-घ्राण-चक्षुः श्रोत्राणि।19। स्पर्श-रस-गंध वर्ण-शब्दास्तदर्थाः।20। श्रुतमनिन्द्रियस्य।21। वनस्पत्यन्ताना-मेकम्।22। कृमि-पिपीलिका-भ्रमर-मनुष्यादीनामेकैक वृद्धानि।23। संज्ञिनः समनस्काः।24। विग्रहगतौ कर्मयोगः।25। अनुश्रेणि गतिः।26। अविग्रहा जीवस्य।27। विग्रहवती च संसारिणः प्राक् चतुर्भ्यः।28। एकसमयाऽ-विग्रहा।29। एकं द्वौ त्रीन्वानाहारकः।30। संमूर्च्छनगर्भोपपादा जन्म।31। सचित्त-शीत-संवृताः सेतरा मिश्राश्चैक-शस्तद्योनयः।32। जरायुजाण्डज-पोतानां गर्भः।33। देव-नारकाणामुपपादः।34। शेषाणां सम्मूर्च्छनं।35। औदारिक-वैक्रियिकाहारक-तैजस कार्मणानि शरीराणि।36। परं परं सूक्ष्मं।37। प्रदेशतोऽसंख्येयगुणं प्राक् तैजसात्।38। अनंतगुणे परे।39। अप्रतीघाते।40। अनादिसंबंधे च।41। सर्वस्य।42। तदादीनि भाज्यानि युगपदेकस्मिन्ना चतुर्भ्यः।43। निरुपभोगमन्त्यम्।44। गर्भसम्मूर्च्छनजमाद्यं।45। औपपादिकं वैक्रियिकं।46। लब्धि-प्रत्ययं च।47। तैजसमपि।48। शुभं विशुद्धमव्याघाति चाहारकं प्रमत्तसंयतस्यैव।49। नारकसंमूर्च्छिनो नंपुसकानि।50। न देवाः।51। शेषास्त्रिवेदाः।52। औपपादिकचरमोत्तम-देहाऽसंख्येय-वर्षायुषोऽनपवर्त्यायुषः।53।

(इति तत्त्वार्थसूत्रे, मोक्षशास्त्रे द्वितीयोऽध्यायः॥)

तृतीय अध्याय

रत्न-शर्करा-बालुका-पङ्क-धूम-तमो-महातमः-प्रभा-भूमयो-घनाम्बुवाताकाश-प्रतिष्ठाः सप्ताऽधोऽधः।1। तासु त्रिंशत्पञ्च-विंशति-पञ्चदश दश-त्रि पंचोनैक-नरक शतसहस्राणि पंच चैव यथाक्रमं।2। नारका नित्याशुभतर-लेश्या- परिणाम-देह वेदना-

विक्रियाः।3। परस्परोदीरित-दुःखाः।4। संक्लिष्टाऽसुरोदीरित-दुःखाश्च-प्राक् चतुर्थ्याः।5। तेष्वेक-त्रि-सप्त-दश-सप्तदश-द्वाविंशति- त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमा सत्त्वानां परा स्थितिः।6। जंबूद्वीप-लवणोदादयः शुभनामानो द्वीप-समुद्राः।7। द्विर्द्विर्विष्कंभाः पूर्व-पूर्वपरिक्षेपिणो वलयाकृतयः।8। तन्मध्ये मेरु-नाभिर्वृत्तो योजन-शतसहस्र-विष्कम्भो जम्बूद्वीपः।9। भरत-हैमवत-हरि-विदेह- रम्यक-हैरण्य- वतैरावतवर्षाः क्षेत्राणि।10। तद्विभाजिनः पूर्वापरायता हिमवन्महा- हिमवन्निषध-नील-रुक्मि-शिखरिणो वर्षधरपर्वताः।11। हेमार्जुन-तपनीय-वैडूर्य- रजत-हेममयाः।12। मणिविचित्र-पार्श्वा उपरि मूले च तुल्य-विस्ताराः।13। पद्म-महापद्म-तिगिंछ-केशरि-महापुंडरीक-पुण्डरीका ह्रदास्तेषामुपरि।14। प्रथमो योजन-सहस्रायामस्तदर्द्ध विष्कम्मो ह्रदः।15। दशयोजनावगाहः।16। तन्मध्ये योजनं पुष्करम्।17। तद्द्वि-गुण-द्विगुणा ह्रदाः पुष्कराणि च।18। तन्निवासिन्यो देव्यः श्री-ह्री-धृति-कीर्ति-बुद्धि-लक्ष्म्यः पल्योपमस्थितयः ससामानिक- परिषत्काः।19। गङ्गा-सिन्धु- रोहिद्रोहितास्या-हरिद्धरिकान्ता-सीता-सीतोदा- नारी-नरकान्ता-सुवर्ण रूप्यकूला-रक्ता-रक्तोदाः सरितस्तन्मध्यगाः। 20। द्वयोर्द्वयोः पूर्वाः पूर्वगाः।21। शेषास्त्व-परगाः।22। चतुर्दश नदी-सहस्र परिवृता गङ्गा-सिन्ध्वादयो नद्यः।23। भरतः षड्विंशति- पंचयोजनशत-विस्तारः षट् चैकोन-विंशति-भागा योजनस्य।24। तद्द्विगुण-द्विगुण-विस्तारा वर्षधर-वर्षा विदेहान्ताः।25। उत्तरा दक्षिण-तुल्याः।26। भरतैरावतयोर्वृद्धि-ह्रासौ षट्-समयाभ्यामुत्सर्पिण्य-वसर्पिणीभ्याम्।27। ताभ्यामपरा भूमयोऽवस्थिताः।28।एक-द्वि-त्रि-पल्योपम-स्थितयो हैमवतक-हारिवर्षक- दैवकुरवकाः।29। तथोत्तराः।30। विदेहेषु संख्येय-

कालाः ।31। भरतस्य विषकम्भो जम्बूद्वीपस्य नवति शत-भागः ।32। द्विर्धातकीखण्डे ।33। पुष्करार्द्धे च ।34। प्राङ्मानुषोत्तरान्मनुष्याः ।35। आर्या म्लेच्छाश्च ।36। भरतैरावत-विदेहाः कर्मभूमयोऽन्यत्र देवकुरुत्तरकुरुभ्यः ।37। नृस्थिती परावरे त्रिपल्योपमान्तर्मुहूर्ते ।38। तिर्यग्योनिजानां च ।39।

(इति तत्त्वार्थसूत्रे, मोक्षशास्त्रे तृतीयोऽध्यायः।।)

चतुर्थ अध्याय

देवाश्चतुर्णिकायाः ।1। आदितस्त्रिषु पीतान्तलेश्याः ।2। दशाष्ट-पञ्च-द्वादश- विकल्पाः कल्पोपपन्नपर्यन्ताः ।3। इन्द्र-सामानिक-त्रायस्त्रिंश- पारिषदात्मरक्षलोक-पालानीक-प्रकीर्णकाभियोग्य किल्विषिकाश्चैकशः ।4। त्रायस्त्रिंश-लोकपालवर्ज्या व्यंतर-ज्योतिष्काः ।5। पूर्वयोर्द्वीन्द्राः ।6। काय-प्रवीचारा आ ऐशानात् ।7। शेषाःस्पर्श-रूप-शब्द-मनः-प्रवीचारा ।8। परेऽप्रवीचाराः ।9। भवन-वासिनोऽसुर-नाग- विद्युत्सुपर्णाग्नि-वात-स्तनितोदधि-द्वीप-दिक्कुमाराः ।10। व्यन्तराः किन्नर-किंपुरुष- महोरग-गन्धर्व-यक्ष-राक्षस-भूत-पिशाचाः ।11। ज्योतिष्काः सूर्याचन्द्रमसौ गृह-नक्षत्र-प्रकीर्णक तारकाश्च ।12। मेरु-प्रदक्षिणा नित्य-गतयो नृ-लोके ।13। तत्कृतःकाल-विभागः ।14। बहिरवस्थिताः ।15। वैमानिकाः ।16। कल्पोपपन्नाः कल्पातीताश्च ।17। उपर्युपरि ।18। सौधर्मैशान-सानत्कुमार-माहेन्द्र-ब्रह्म-ब्रह्मोत्तर-लान्तव-कापिष्ठ शुक्र-महाशुक्र-शतार-सहस्रारेष्वानत-प्राणतयोरारणाच्युत-योर्नवसु-ग्रैवेयकेषु विजय-वैजयन्त-जयन्तापराजितेषु सर्वार्थसिद्धौ च ।19। स्थिति-प्रभाव-सुख- द्युति-लेश्या-विशुद्धीन्द्रिया-वधि-विषयतोऽधिकाः ।20। गति-शरीर-परिग्रहाभिमानतो हीनाः ।21।

पीत पद्म-शुक्ल-लेश्या द्वि-त्रि-शेषेषु।22। प्राग्ग्रैवेयकेभ्यः कल्पाः।23। ब्रह्म-लोकालया लौकान्तिकाः।24। सारस्वता-दित्य-वह्न्यरुण-गर्दतोय-तुषिताव्या- बाधारिष्टाश्च।25। विजयादिषु द्वि-चरमाः।26। औपादिक-मनुष्येभ्यः शेषास्तिर्यग्योनयः।27। स्थितिरसुर-नाग-सुपर्ण-द्वीप-शेषाणां सागरोपम-त्रिपल्योपमार्ध- हीनमिताः।28। सौधर्मेशानयोः सागरोपमेऽधिके।29। सानत्कुमार माहेन्द्रयोः सप्त।30। त्रि-सप्त नवैकादश-त्रयोदश-पञ्चदशभिरधिकानि तु।31। आरणाच्युता-दूर्ध्वमेकैकेन नवसु ग्रैवेयकेषु विजयादिषु सर्वार्थसिद्धौ च।32। अपरा पल्योपममधिकम्।33। परतः परतः पूर्वापूर्वाऽनन्तरा।34। नारकाणां च द्वितीयादिषु।35। दश-वर्ष-सहस्राणि प्रथमायाम्।36। भवनेषु च।37। व्यन्तराणां च।38। परा पल्योपममधिकम्।39। ज्योतिष्काणां च।40। तदष्ट-भागोऽपरा।41। लौकान्तिकानामष्टौ सागरोपमाणि सर्वेषाम्॥42॥

(इति तत्त्वार्थसूत्रे, मोक्षशास्त्रे चतुर्थोऽध्यायः॥)

पंचम् अध्याय

अजीवकाया धर्माधर्माकाश-पुद्गलाः।1। द्रव्याणि।2। जीवाश्च।3। नित्यावस्थितान्यरूपाणि।4। रूपिणः पुद्गलाः।5। आ आकाशादेकद्रव्याणि।6। निष्क्रियाणि च।7। असंख्येयाः प्रदेशा धर्माधर्मैकजीवानाम्।8। आकाशस्यानन्ताः।9। संख्येया संख्येयाश्च पुद्गलानाम्।10। नाणोः।11। लोकाकाशे-ऽवगाहः।12। धर्माधर्मयोःकृत्स्ने।13। एकप्रदेशादिषु भाज्यः पुद्गलानाम्।14। असंख्येय-भागादिषु जीवानाम्।15। प्रदेश-संहार-विसर्पाभ्यां प्रदीपवत्।16। गति-स्थित्युपग्रहौ धर्मा

धर्मयोरुपकारः।17। आकाशस्याव-गाहः।18। शरीर-वाङ्-मनःप्राणापानाः पुद्गलानाम्।19। सुख-दुःख जीवित-मरणोपग्रहाश्च।20। परस्परोपग्रहो जीवानाम्।21। वर्तना-परिणाम-क्रियापरत्वापरत्वे च कालस्य।22। स्पर्श-रस-गंध-वर्णवन्तः पुद्गलाः।23। शब्द-बन्ध सौक्ष्म्य-स्थौल्य-संस्थान-भेद-तमश्छाया- तपोद्योतवन्तश्च।24। अणवः स्कन्धाश्च।25। भेदसंघातेभ्यः उत्पद्यन्ते।26। भेदादणुः।27। भेद-संघाताभ्यां चाक्षुषः।28। सद् द्रव्य-लक्षणम्।29। उत्पाद-व्यय ध्रौव्य-युक्तं सत्।30। तद्भावाव्ययं नित्यम्।31। अर्पितानर्पितसिद्धेः।32। स्निग्ध-रूक्षत्वाद्बन्धः।33। न जघन्य-गुणानाम्।34। गुणसाम्ये सदृशानाम्।35। द्व्यधिकादि-गुणानां तु।36। बन्धेऽधिकौ परिणामिकौ च।37। गुणपर्ययवद् द्रव्यम्।38। कालश्च।39। सोऽनन्तसमयः।40। द्रव्याश्रया निर्गुणा गुणाः।41। तद्भावः परिणामः।42।

(इति तत्त्वार्थसूत्रे, मोक्षशास्त्रे पंचमोऽध्यायः॥)

षष्ठम् अध्याय

काय-वाङ्मनःकर्म-योगः।1। स आस्रवः।2। शुभः पुण्य-स्याशुभः पापस्य।3। सकषायाकषाययोः साम्परायि-केर्यापथयोः।4। इन्द्रिय-कषायाव्रत-क्रियाः पञ्च-चतुःपञ्च पञ्चविंशति संख्याः पूर्वस्य भेदाः।5। तीव्र-मन्द-ज्ञाता-ज्ञातभावाधिकरण- वीर्य-विशेषेभ्यस्तद्विशेषः।6। अधिकरणं जीवाजीवाः।7। आद्यं संरम्भ-समारम्भारम्भ- योगकृतकारिता-नुमत-कषाय-विशेषैस्त्रिस्त्रिस्त्रिश्चतुश्चैकशः।8। निर्वर्तना - निक्षेप-संयोग-निसर्गाद्वि-चतुर्द्वि-त्रि-भेदाः परम्।9। तत्प्रदोष-निह्नव- मात्सर्यान्तराया-सादनोपघाता ज्ञान-दर्शना-

वरणयोः ।10। दुःख शोक-तापाक्रन्दन- वध-परिदेवनान्यात्म-परोभय-स्थान्यसद्-वेद्यस्य ।11। भूत-व्रत्यनुकम्पादान-सराग संयमादियोगः क्षांतिः शौचमिति सद्वेद्यस्य ।12। केवलि-श्रुत-संघ-धर्म-देवावर्णवादो दर्शनमोहस्य ।13। कषायोदयात्तीव्र-परिणामश्चारित्रमोहस्य ।14। बह्वारम्भ-परिग्रहत्वं नारकस्यायुषः ।15। माया तैर्यग्योनस्य ।16। अल्पारम्भ परिग्रहत्वं मानुषस्य ।17। स्वभाव-मार्दवंच ।18। निःशील-व्रतत्वं च सर्वेषाम् ।19। सरागसंयमसंयमासंयमा- कामनिर्जराबालतपांसि देवस्य ।20। सम्यक्त्वं च ।21। योगवक्रता विसंवादनं चाशुभस्य नाम्नः ।22। तद्विपरीतंशुभस्य ।23। दर्शन विशुद्धिर्विनयसम्पन्नता शीलव्रतेष्व- नतिचारोऽभीक्ष्णज्ञानोपयोग-संवेगौ शक्तितस्त्यागतपसी साधु- समाधि- वैयावृत्यकरण-मर्हदाचार्यबहुश्रुत-प्रवचनभक्तिरावश्यका-परिहाणि-र्मार्गप्रभावना प्रवचन-वत्सलत्वमिति तीर्थकरत्वस्य ।24। परात्म निन्दा-प्रशंसे सदसद्गुणोच्छादनोद्भावने च नीचैर्गोत्रस्य ।25। तद्विपर्ययो नीचैर्वृत्त्यनुत्सेकौ चोत्तरस्य ।26। विघ्नकरणमन्तरायस्य ।27।

(इति तत्त्वार्थसूत्रे मोक्षशास्त्रे षष्ठोऽध्यायः ।।)

सप्तम अध्याय

हिंसाऽनृत-स्तेयाब्रह्म-परिग्रहेभ्यो विरतिर्व्रतम् ।1। देश-सर्वतोऽणु-महती ।2। तत्स्थैर्यार्थं भावनाः पञ्च पञ्च ।3। वाङ्मनोगुप्तीर्या-दाननिक्षेपण समित्यालोकित-पान- भोजनानि पञ्च ।4। क्रोध-लोभ-भीरुत्व-हास्य- प्रत्याख्यानान्यनुवीचि-भाषणं च पञ्च ।5। शून्यागार-विमोचितावास-परोपरोधाकरण-भैक्ष्यशुद्धि-सधर्माविसंवादाः पञ्च ।6। स्त्रीरागकथाश्रवण-तन्मनोहरांग-निरीक्षण-पूर्वरतानुस्मरण-वृष्येष्टरस- स्वशरीरसंस्कारत्यागाः

पञ्च।7। मनोज्ञा-मनोज्ञेन्द्रिय-विषय-राग-द्वेष-वर्जनानि पञ्च।8। हिंसा दिष्विहामुत्रापायावद्य दर्शनम्।9। दुःखमेव वा।10। मैत्री-प्रमोद-कारुण्य-माध्यस्थानि च सत्त्व-गुणाधिक-क्लिश्यमानाऽविनयेषु।11। जगत्काय-स्वभावौ वा संवेग-वैराग्यार्थम्।12। प्रमत्तयोगात्प्राण-व्यपरोपणं हिंसा।13। असदभिधानमनृतम्।14। अदत्तादानं स्तेयम्।15। मैथुनमब्रह्म।16। मूर्च्छा परिग्रहः।17। निःशल्यो व्रती।18। अगार्यनगारश्च।19। अणुव्रतोऽगारी।20। दिग्देशानर्थदण्ड-विरति-सामायिक-प्रोषधोपवासोपभोग- परिभोग-परिमाणा-तिथिसंविभाग-व्रत- सम्पन्नश्च।21। मारणान्तिकीं सल्लेखनां जोषिता।22। शङ्का-कांक्षा-विचिकित्सान्य- दृष्टि-प्रशंसा-संस्तवाः सम्यग्दृष्टेरतीचाराः।23। व्रत-शीलेषु पञ्च पञ्च यथाक्रमम्।24। बन्ध-वध-च्छेदातिभारा-रोपणान्नपान-निरोधाः।25। मिथ्योपदेश-रहोभ्याख्यान-कूटलेखक्रिया-न्यासापहार-साकारमन्त्रभेदाः।26। स्तेन-प्रयोग-तदाहृतादान-विरुद्धराज्यातिक्रम-हीनाधिकमानोन्मानप्रतिरूपक-व्यवहाराः।27। परविवाहकरणेत्वरिका-परिगृहीतापरिगृहीता-गमनानङ्गक्रीडा-कामतीव्राभि-निवेशाः।28। क्षेत्रवास्तु-हिरण्य-सुवर्ण-धनधान्य दासीदास-कुप्य(भाण्ड्य)-प्रमाणातिक्रमाः।29। ऊर्ध्वाधस्तिर्यग्व्यतिक्रम क्षेत्रवृद्धि-स्मृत्यन्तराधानानि।30। आनयन-प्रेष्य-प्रयोग-शब्द- रूपानुपात- पुद्गलक्षेपाः।31। कन्दर्प-कौत्कुच्य-मौखर्यासमीक्ष्या-धिकरणोपभोग-परिभोगानर्थक्यानि।32। योग दुष्प्रणिधानानादर स्मृत्यनुपस्थानानि।33। अप्रत्यवेक्षिता-प्रमार्जितोत्सर्गादान-संस्तरोपक्रमणानादर-स्मृत्यनुपस्थानानि।34। सचित्त-सम्बन्ध-सम्मिश्राभिषवदुः पक्वाहाराः।35। सचित्तनिक्षेपापिधान-

परव्यपदेश-मात्सर्य-कालातिक्रमाः ।36। जीवित-मरणाशंसा-मित्रानुराग-सुखानुबन्ध- निदानानि ।37। अनुग्रहार्थं स्वस्यातिसर्गो दानम्38। विधि-द्रव्य-दातृ-पात्र-विशेषात्त-द्विशेषः ।39।

(इति तत्त्वार्थसूत्रे, मोक्षशास्त्रे सप्तमोऽध्यायः।।)

अष्टम् अध्याय

मिथ्यादर्शनाविरित-प्रमाद-कषाय-योगा बन्धहेतवः ।1। सकषायत्वाज्जीवः कर्मणो योग्यान् पुद्गलानादत्ते स बन्धः ।2। प्रकृति-स्थित्यनुभाग-प्रदेशास्तद्द्विधयः ।3। आद्यो ज्ञान-दर्शनावरण-वेदनीय-मोहनीयायुर्नाम-गोत्रान्तरायाः ।4। पञ्च-नव- द्व्यष्टाविंशति-चतुर्द्विचत्वारिंशद्-द्वि-पञ्च-भेदा यथाक्रमम् ।5। मति-श्रुतावधि- मनःपर्यय-केवलानाम् ।6। चक्षुरचक्षुरवधि-केवलानां निद्रा-निद्रानिद्राप्रचला- प्रचलाप्रचला-स्त्यानगृद्धयश्च ।7। सदसद्वेद्ये ।8। दर्शनचारित्र मोहनीयाकषाय-कषायवेदनीयाख्यास्त्रि-द्वि-नव-षोडश भेदाः सम्यक्त्व-मिथ्यात्व-तदुभयान्यकषाय कषायौ हास्य-रत्यरति-शोक-भयजुगुप्सा-स्त्री-पुन्नपुंसक-वेदा अनन्तानु-बन्ध्यप्रत्याख्यान-प्रत्याख्यान- संज्वलन-विकल्पाश्चैकशः क्रोध-मान-माया लोभाः ।9। नारकतैर्यग्योन-मानुष-दैवानि ।10। गति-जाति-शरीराङ्गोपाङ्ग- निर्माण- बन्धन- संघात-संस्थान- संहनन-स्पर्श-रस - गन्ध - वर्णा - नुपूर्व्या गुरु- लघूपघात- परघातातपो-द्योतोच्छ्वास-विहायोगतयः प्रत्येकशरीर- त्रस- सुभग- सुस्वर-शुभ- सूक्ष्म-पर्याप्ति-स्थिरादेय-यशःकीर्ति-सेतराणि तीर्थकरत्वं च ।11। उच्चैर्नीचैश्च ।12। दान-लाभभोगोपभोगवीर्याणाम् ।13। आदि-तस्तिसृणामन्तरायस्य च त्रिंशत्सागरोपम- कोटिकोट्यः परा स्थितिः ।14। सप्ततिर्मोहनीयस्य ।15। विंशतिर्नाम-गोत्रयोः ।16।

त्रयस्त्रिंशत्सागरोपमाण्यायुषः।17। अपरा द्वादश-मुहूर्ता वेदनीयस्य।18। नाम-गोत्रयोरष्टौ।19। शेषाणामन्तर्मुहूर्ता।20। विपाकोऽनुभवः।21। स यथानाम।22। ततश्चनिर्जरा।23। नाम-प्रत्ययाः सर्वतोयोग विशेषात्- सूक्ष्मैक- क्षेत्रावगाह-स्थिताः सर्वात्म-प्रदेशेष्वनन्तानन्त प्रदेशाः।24। सद्वेद्य-शुभायुर्नाम-गोत्राणि पुण्यम्।25। अतोऽन्यत्पापम्।26।

(इति तत्त्वार्थसूत्रे, मोक्षशास्त्रे अष्टमोऽध्यायः।।)

नवम् अध्याय

आस्रव-निरोधः संवरः।1।स-गुप्ति-समिति-धर्मानुप्रेक्षा परीषहजय-चारित्रैः।2। तपसा निर्जरा च।3। सम्यग्योग-निग्रहो गुप्तिः।4। ईर्या-भाषैषणादाननिक्षेपोत्सर्गाः समितयः।5। उत्तम-क्षमा-मार्दवार्जव-शौच-सत्य-संयम-तपस्त्यागाकिञ्चन्य- ब्रह्मचर्याणि धर्मः।6। अनित्याशरण-संसारैकत्वान्यत्वाशुच्या-स्रवसंवरनिर्जरा-लोक-बोधि दुर्लभ-धर्मस्वाख्यातत्त्वानुचिन्तनमनुप्रेक्षाः।7। मार्गाच्यवन-निर्जरार्थं परिषोढव्याः परीषहाः।8। क्षुत्पिपासा-शीतोष्ण-दंशमशक-नाग्न्यारति- स्त्रीचर्या-निषद्या-शय्याक्रोश-वध-याचनाऽलाभ-रोग-तृण-स्पर्श- मल-सत्कार-पुरस्कार-प्रज्ञाज्ञाना दर्शनानि।9। सूक्ष्मसाम्परायछद्मस्थवीतरागयो-श्चतुर्दश।10। एकादश जिने।11। बादरसाम्पराये सर्वे।12। ज्ञानावरणे प्रज्ञाज्ञाने।13। दर्शनमोहान्तराययोरदर्शनालाभौ।14। चारित्र-मोहे नाग्न्यारति-स्त्री-निषद्याक्रोश-याचना-सत्कारपुरस्काराः।15। वेदनीये शेषाः।16। एकादयो भाज्या-युगपदेकस्मिन्नैकोनविंशतेः।17। सामायिकच्छेदोपस्थापना-परिहारविशुद्धि-सूक्ष्मसाम्पराय-यथाख्यातमिति चारित्रम्।18। अनशनाव- मौदर्य-वृत्तिपरिसंख्यान-रसपरित्याग-विविक्त

शय्यासन कायक्लेशा बाह्यं तपः।19। प्रायश्चित्त-विनय-वैयावृत्त्य-स्वाध्याय-व्युत्सर्ग-ध्यानान्युत्तरं।20। नवचतुर्दश-पञ्च- द्वि-भेदा यथाक्रमं प्राग्ध्यानात्।21। आलोचना-प्रतिक्रमण-तदुभय-विवेक- व्युत्सर्ग-तपश्छेद-परिहारोप-स्थापनाः।22। ज्ञान-दर्शन-चारित्रोपचाराः।23। आचार्योपाध्याय-तपस्वि-शैक्ष्य-ग्लान-गण-कुल-संघ-साधु-मनोज्ञानाम्।24। वाचनापृच्छनानुप्रेक्षाम्नाय-धर्मोपदेशाः।25। बाह्याभ्यन्त-रोपध्योः।26। उत्तमसंहन- नस्यैकाग्रचिन्ता-निरोधो ध्यान-मान्तर्मुहूर्तात्।27। आर्त्तरौद्र-धर्म्य-शुक्लानि।28। परे मोक्ष-हेतू।29। आर्त्तममनोज्ञस्य संप्रयोगे तद्विप्रयोगाय स्मृति-समन्वाहारः।30। विपरीतम् मनोज्ञस्य।31। वेदनायाश्च।32। निदानं च।33। तदविरत-देशविरत- प्रमत्त-संयतानाम्।34। हिंसानृतस्तेय-विषय- संरक्षणेभ्यो रौद्रमविरत-देशविरतयोः।35। आज्ञापाय-विपाक-संस्थान-विचयाय धर्म्यम्।36। शुक्ले चाद्ये पूर्वविदः।37। परे केवलिनः।38। पृथक्त्वैकत्व-वितर्क-सूक्ष्म-क्रियाप्रतिपाति-व्युपरतक्रिया-निवर्तीनि।39। त्र्येकयोगकाय-योगायोगानाम्।40। एकाश्रयेसवितर्क-वीचारे पूर्वे।41। अवीचारं द्वितीयम्।42। वितर्कः श्रुतम्।43। वीचारोऽर्थ-व्यञ्जन-योग-संक्रान्तिः।44। सम्यग्दृष्टि श्रावक-विरतानन्त- वियोजक-दर्शनमोह-क्षपकोपशम-कोपशान्त- मोह-क्षपक-क्षीणमोह-जिनाः क्रमशोऽसंख्येय गुण-निर्जराः।45। पुलाक-वकुश- कुशील-निर्ग्रन्थ-स्नातका निर्ग्रन्थाः।46। संयम-श्रुत-प्रतिसेवना तीर्थ-लिङ्ग-लेश्योपपाद-स्थान-विकल्पतः साध्याः।47।

(इति तत्त्वार्थसूत्रे (मोक्षशास्त्रे) नवमोऽध्यायः।।)

दशम् अध्याय

मोहक्षयाज्ज्ञान-दर्शनावरणान्तराय-क्षयाच्च केवलम्।1।

बन्धहेत्वभावनिर्जराभ्यां कृत्स्न-कर्म विप्रमोक्षो मोक्षः।2। औपशमिकादि-भव्यत्वानां च।3। अन्यत्र केवलसम्यक्त्व ज्ञान-दर्शन-सिद्धत्वेभ्यः।4। तदनन्तरमूर्ध्वं गच्छत्या-लोकान्तात्।5। पूर्वप्रयोगादसङ्गत्वाद् बन्धच्छेदात्तथा-गतिपरिणामाच्च।6। आविद्धकुलाल-चक्रवद्व्यपगतलेपा-लाम्बुवदे-रण्डबीजवद्-अग्निशिखावच्च।7। धर्मास्ति- कायाभावात्।8। क्षेत्र-काल-गति-लिङ्ग-तीर्थ-चारित्र- प्रत्येकबुद्ध-बोधित- ज्ञानावगाहनान्तर-संख्याल्पबहुत्वतः साध्याः।9।

(इति तत्त्वार्थसूत्रे, मोक्षशास्त्रे दशमोऽध्यायः।।)

अक्षर-मात्र-पद-स्वर-हीनं व्यञ्जन-संधि-विवर्जित-रेफम्।
साधुभिरत्र मम क्षमितव्यं को न विमुह्यति शास्त्र-समुद्रे।1।

दशाध्याये परिच्छिन्ने तत्त्वार्थे पठिते सति।
फलं स्यादुपवासस्य भाषितं मुनिपुङ्गवैः।2।
तत्त्वार्थसूत्रकर्त्तारं गृद्धपिच्छोपलक्षितम्।
वन्दे गणीन्द्र सञ्जातमुमास्वामि-मुनीश्वरम्।3।
जं सक्कइ तं कीरइ, जं च ण सक्कइ तहेव सद्दहणं।
सद्दहमाणो जीवो पावइ अजरामरं ठाणं।4।
तवयरणं वयधरणं, संजमसरणं च जीव दया करणम्।।
अंते समाहिमरणं, चउविहदुक्खं णिवारेइ।5।
कोटिशतंद्वादश-चैवकोट्योलक्षाण्यशीतिस्त्र्यधिकानि चैव।
पञ्चाशदष्टौ च सहस्रसंख्यामेतच्छ्रुतंपञ्चपदंनमामि।6।
अरहन्त भासियत्थं गणहरदेवेहिं गंथियं सम्मं।
पणमामि भत्तिजुत्तो, सुदणाणमहोवहिं सिरसा।7।
गुरवः पांतु नो नित्यं ज्ञान दर्शन नायकाः।
चारित्रार्णव गम्भीराः मोक्षमार्गोपदेशकाः॥8॥

(इति तत्त्वार्थसूत्रापरनाम तत्त्वार्थाधिगममोक्षशास्त्रं समाप्तम्।)

श्रीजिनसहस्रनामस्तोत्रम्

(श्रीमद् भगवज्जिनसेनाचार्य कृत)

स्वयंभुवे नमस्तुभ्यमुत्पाद्यात्मानमात्मनि।
स्वात्मनैव तथोद्भूतवृत्तयेऽचिन्त्यवृत्तये॥१॥
नमस्ते जगतां पत्ये लक्ष्मीभर्त्रे नमोऽस्तु ते।
विदांवर नमस्तुभ्यं नमस्ते वदतांवरः॥२॥
कर्म शत्रुहणं देवमामनन्ति मनीषिणः।
त्वामानमत्सुरेण्मौलि-भा-मालाभ्यर्चित-क्रमम्॥३॥
ध्यान-दुर्घण-निर्भिन्न-घन-घाति-महातरुः।
अनन्त-भव-सन्तान-जयादासीरनन्तजित्॥४॥
त्रैलोक्य-निर्जयावाप्त-दुर्दर्प्पमतिदुर्जयम्।
मृत्युराजं विजित्यासीज्जिन मृत्युंजयो भवान्॥५॥
विधूताशेष-संसार-बन्धनो भव्य-बान्धवः।
त्रिपुरारिस्त्वमीशोऽसि जन्म-मृत्युजरान्तकृत्॥६॥
त्रिकाल-विजयाशेष-तत्त्वभेदात् त्रिधोत्थितम्।
केवलाख्यं दधच्चक्षुस्त्रिनेत्रोऽसि त्वमीशिता॥७॥
त्वामन्धकान्तकं प्राहुर्मोहान्धासुर-मर्द्दनात्।
अर्द्धं ते नारयो यस्मादर्धनारीश्वरोऽस्यतः॥८॥
शिवः शिव-पदाध्यासाद् दुरितारि-हरो हरः।
शंकरः कृतशं लोके शम्भवस्त्वं भवन्सुखे॥९॥
वृषभोऽसि जगज्ज्येष्ठः पुरुः पुरुः गुणोदयैः।
नाभेयो नाभि-सम्भूतेरिक्ष्वाकु-कुल-नन्दनः॥१०॥

त्वमेकः पुरुषस्कंधस्त्वं द्वे लोकस्य लोचने।
त्वं त्रिधा बुद्ध-सन्मार्गस्त्रिज्ञस्त्रिज्ञान-धारकः॥११॥
चतुः शरणमांगल्यमूर्तिस्त्वं चतुरस्त्रधीः।
पञ्च-ब्रह्ममयो देव पावनस्त्वं पुनीहि माम्॥१२॥
स्वर्गावतारिणे तुभ्यं सद्योजातात्मने नमः।
जन्माभिषेक-वामाय वामदेव नमोऽस्तु ते॥१३॥
सन्निष्क्रान्तावघोराय परं प्रशममीयुषे।
केवलज्ञान-संसिद्धावीशानाय नमोऽस्तु ते॥१४॥
पुरस्तत्पुरुषत्वेन विमुक्त-पद-भाजिने।
नमस्तत्पुरुषावस्थां भाविनीं तेऽद्य विभ्रते॥१५॥
ज्ञानावरणनिर्हासान्नमस्तेऽनन्तचक्षुषे।
दर्शनावरणोच्छेदान्नमस्ते विश्वदृश्वने॥१६॥
नमो दर्शनमोहघ्ने क्षायिकामलदृष्टये।
नमश्चारित्र मोहघ्ने विरागाय महौजसे॥१७॥
नमस्तेऽनन्त-वीर्याय नमोऽनन्त-सुखात्मने।
नमस्तेऽनन्त-लोकाय लोकालोकवलोकिने॥१८॥
नमस्तेऽनन्त-दानाय नमस्तेऽनन्त-लब्धये।
नमस्तेऽनन्त-भोगाय नमोऽनन्तोपभोगिने॥१९॥
नमः परम-योगाय नमस्तुभ्यमयोनये।
नमः परम-पूताय नमस्ते परमर्षये॥२०॥
नमः परम-विद्याय नमः पर-मत-च्छिदे।
नमः परम-तत्त्वाय नमस्ते परमात्मने॥२१॥

नमः परमरूपाय नमः परम-तेजसे।
नमः परम-मार्गाय नमस्ते परमेष्ठिने॥२२॥
परमर्द्धिजुषे धाम्ने परम-ज्योतिषे नमः।
नमः पारेतमः प्राप्तधाम्ने परतरात्मने॥२३॥
नमः क्षीण-कलंकाय क्षीण-बन्ध नमोऽस्तु ते।
नमस्ते क्षीण-मोहाय क्षीण-दोषाय ते नमः॥२४॥
नमः सुगतये तुभ्यं शोभनां गतिमीयुषे।
नमस्तेऽतीन्द्रिय-ज्ञान-सुखायानिन्द्रियात्मने॥२५॥
काय-बन्धननिर्मोक्षादकायाय नमोऽस्तु ते।
नमस्तुभ्यमयोगाय योगिनामधियोगिने॥२६॥
अवेदाय नमस्तुभ्यमकषायाय ते नमः।
नमः परम-योगीन्द्र-वन्दितांघ्रि-द्वयाय ते॥२७॥
नमः परम-विज्ञान नमः परम-संयम।
नमः परमदृग्दृष्ट-परमार्थाय ते नमः॥२८॥
नमस्तुभ्यमलेश्याय शुक्ललेश्यांशक-स्पृशे।
नमो भव्येतरावस्थाव्यतीताय विमोक्षिणे॥२९॥
संज्ञ्संज्ञिद्वयावस्थाव्यतिरिक्तामलात्मने।
नमस्ते वीतसंज्ञाय नमः क्षायिकदृष्टये॥३०॥
अनाहाराय तृप्ताय नमः परमभाजुषे।
व्यतीताशेषदोषाय भवाब्धेः पारमीयुषे॥३१॥
अजराय नमस्तुभ्यं नमस्ते वीतजन्मने।
अमृत्येव नमस्तुभ्यमचलायाक्षरात्मने॥३२॥
अलमास्तां गुणस्तोत्रमनन्तास्तावका गुणाः।

त्वां नामस्मृतिमात्रेण पर्युपासिसिषामहे॥ ३३ ॥
एवं स्तुत्वा जिनं देवं भक्त्या परमया सुधीः।
पठेदष्टोत्तरं नाम्नां सहस्त्रं पाप-शान्तये॥ ३४॥

।। इति प्रस्तावना ।।

प्रसिद्धाष्ट-सहस्त्रेद्धलक्षणं त्वां गिरां पतिम्।
नाम्नामष्टसहस्त्रेण तोष्टुमोऽभीष्टसिद्धये॥ १ ॥
श्रीमान्स्वयम्भूर्वृषभः शंभवः शंभुरात्मभूः।
स्वयंप्रभः प्रभुर्भोक्ता विश्वभूरपुनर्भवः॥ २ ॥
विश्वात्मा विश्वलोकेशो विश्वतश्चक्षुरक्षरः।
विश्वविद्विश्वविद्येशो विश्वयोनिरनश्वरः॥ ३ ॥
विश्वदृश्वा विभुर्धाता विश्वेशो विश्वलोचनः।
विश्वव्यापी विधिर्वेधाः शाश्वतो विश्वतोमुखः॥ ४ ॥
विश्वकर्मा जगज्ज्येष्ठो विश्वमूर्तिर्जिनेश्वरः।
विश्वदृग् विश्वभूतेशो विश्वज्योतिरनीश्वरः॥ ५ ॥
जिनो जिष्णुरमेयात्मा विश्वरीशो जगत्पतिः।
अनन्तजिदचिन्त्यात्मा भव्यबन्धुरबन्धनः॥ ६ ॥
युगादिपुरुषो ब्रह्मा पञ्चब्रह्ममयः शिवः।
परः परतरः सूक्ष्मः परमेष्ठी सनातनः॥ ७ ॥
स्वयंज्योतिरजोऽजन्मा ब्रह्मयोनिरयोनिजः।
मोहारिविजयी जेता धर्मचक्री दयाध्वजः॥ ८ ॥
प्रशान्तारिरनन्तात्मा योगी योगीश्वरार्चितः।
ब्रह्मविद् ब्रह्मतत्त्वज्ञो ब्रह्मोद्याविद्यतीश्वरः॥ ९ ॥
शुद्धो बुद्धः प्रबुद्धात्मा सिद्धार्थः सिद्धशासनः।
सिद्धः सिद्धांतविद् ध्येयः सिद्धसाध्योजगद्धितः॥ १० ॥

सहिष्णुरच्युतोऽनन्तः प्रभविष्णुर्भवोद्भवः।
प्रभूष्णुरजरोऽजर्यो भ्राजिष्णुर्धीश्वरोऽव्ययः॥११॥
विभावसुरसम्भूष्णुः स्वयम्भूष्णुः पुरातनः।
परमात्मा परंज्योतिस्त्रिजगत्परमेश्वरः॥१२॥

।। इति श्रीमदादिशतम्॥१॥

दिव्यभाषापतिर्दिव्यः पूतवाक्पूतशासनः।
पूतात्मा परमज्योतिर्धर्माध्यक्षो दमीश्वरः॥१॥
श्रीपतिर्भगवानर्हन्नरजा विरजाः शुचिः।
तीर्थकृत्केवलीशानः पूजार्हः स्नातकोऽमलः॥२॥
अनन्तदीप्तिर्ज्ञानात्मा स्वयम्बुद्धः प्रजापतिः।
मुक्तः शक्तो निराबाधो निष्कलो भुवनेश्वरः॥३॥
निरञ्जनो जगज्ज्योतिर्निरुक्तोक्तिरनामयः।
अचलस्थितिरक्षोभ्यः कूटस्थः स्थाणुरक्षयः॥४॥
अग्रणीर्ग्रामणीर्नेता प्रणेता न्यायशास्त्रकृत्।
शास्ता धर्मपतिर्धर्म्यो धर्मात्मा धर्मतीर्थकृत्॥५॥
वृषध्वजो वृषाधीषो वृषकेतुर्वृषायुधः।
वृषो वृषपतिर्भर्ता वृषभांको वृषोद्भवः॥६॥
हिरण्यनाभिर्भूतात्मा भूतभृद् भूतभावनः।
प्रभवो विभवो भास्वान् भवो भावो भवान्तकः॥७॥
हिरण्यगर्भः श्रीगर्भः प्रभूतविभवोऽभवः।
स्वयंप्रभू प्रभूतात्मा भूतनाथो जगत्पतिः॥८॥
सर्वादिः सर्वदृक् सार्वः सर्वज्ञः सर्वदर्शनः।
सर्वात्मा सर्वलोकेशः सर्ववित्सर्वलोकजित्॥९॥

सुगतिः सुश्रुतः सुश्रुत् सुवाक् सूरिर्बहुश्रुतः।
विश्रुतः विश्वतः पादो विश्वशीर्षःशुचिश्रवाः ॥१०॥
सहस्त्रशीर्षः क्षेत्रज्ञः सहस्त्राक्षः सहस्त्रपात्।
भूतभव्यभवद्भर्ता विश्वविद्यामहेश्वरः ॥११॥

।।इति दिव्यादिशतम् ॥२॥

स्थविष्ठः स्थविरो ज्येष्ठः प्रष्ठः प्रेष्ठो वरिष्ठधीः।
स्थेष्ठो गरिष्ठो बंहिष्ठः श्रेष्ठोऽणिष्ठो गरिष्ठगीः ॥१॥
विश्वभृद्विश्वसृड् विश्वेड् विश्वभुग्विश्वनायकः।
विश्वाशीर्विश्वरूपात्मा विश्वजिद्विजितान्तकः ॥२॥
विभवो विभयो वीरो विशोको विजरोजरन्।
विरागो विरतोऽसंगो विविक्तो वीतमत्सरः ॥३॥
विनेयजनताबन्धुर्विलीनाशेषकल्मषः।
वियोगो योगविद्विद्वान्विधाता सुविधिः सुधीः ॥४॥
क्षान्तिभाक्पृथिवीमूर्ति शान्तिभाक् सलिलात्मकः।
वायुमूर्तिरसङ्गात्मा वह्निमूर्तिरधर्मधृक् ॥५॥
सुयज्वा यजमानात्मा सुत्वा सूत्रामपूजितः।
ऋत्विग्यज्ञपतिर्यज्ञो यज्ञाङ्गममृतं हविः ॥६॥
व्योममूर्तिरमूर्तात्मा निर्लेपो निर्मलोऽचलः।
सोममूर्तिः सुसौम्यात्मा सूर्यमूर्तिर्महाप्रभः ॥७॥
मन्त्रविन्मन्त्रकृन्मन्त्री मन्त्रमूर्तिरनन्तगः।
स्वतन्त्रस्तन्त्र कृत्स्वन्तः कृतान्तान्तः कृतान्तकृत् ॥८॥
कृती कृतार्थ सत्कृत्यः कृतकृत्यः कृतक्रतुः।
नित्यो मृत्युञ्जयोऽमृत्युरमृतात्माऽमृतोद्भवः ॥९॥

ब्रह्मनिष्ठः परंब्रह्म ब्रह्मात्मा ब्रह्मसम्भवः।
महाब्रह्मपतिर्ब्रह्मेड् महाब्रह्मपदेश्वरः॥१०॥
सुप्रसन्नः प्रसन्नात्मा ज्ञानधर्मदमप्रभुः।
प्रशमात्मा प्रशान्तात्मा पुराणपुरुषोत्तमः॥११॥
।। इति स्थविष्ठादिशतम् ॥३॥
महाशोकध्वजोऽशोकः कः स्रष्टा पद्मविष्टरः।
पद्मेशः पद्मसम्भूतिः पद्मनाभिरनुत्तरः॥१॥
पद्मयोनिर्जगद्योनिरित्यः स्तुत्यः स्तुतीश्वरः।
स्तवनार्हो हृषीकेशो जितजेयः कृतक्रियः॥२॥
गणाधिपो गणज्येष्ठो गण्यः पुण्यो गणाग्रणीः।
गुणाकरो गुणाम्भोधिर्गुणज्ञो गुणनायकः॥३॥
गुणादरी गुणोच्छेदी निर्गुणः पुण्यगीर्गुणः।
शरण्यः पुण्यवाक्पूतो वरेण्यः पुण्यनायकः॥४॥
अगण्यः पुण्यधीर्गुण्यः पुण्यकृत्पुण्यशासनः।
धर्मारामो गुणग्रामः पुण्यापुण्यनिरोधकः॥५॥
पापापेतो विपापात्मा विपाप्मा वीतकल्मषः।
निर्द्वन्दो निर्मदः शान्तो निर्मोहो निरुपद्रवः॥६॥
निर्निमेषो निराहारो निष्क्रियो निरुपप्लवः।
निष्कलंको निरस्तैना निर्धूतांगो निरास्त्रवः॥७॥
विशालोविपुलज्योतिरतुलोऽचिन्त्यवैभवः।
सुसंवृतः सुगुप्तात्मा सुभृत् सुनयतत्त्ववित्॥८॥
एकविद्यो महाविद्यो मुनिः परिवृढः पतिः।
धीशो विद्यानिधिः साक्षी विनेता विहतान्तकः॥९॥

पिता पितामहः पाता पवित्रः पावनो गतिः।
त्राता भिषग्वरोवर्यो वरदः परमः पुमान्॥१०॥
कविः पुराणपुरुषो वर्षीयान्वृषभः पुरुः।
प्रतिष्ठाप्रसवो हेतुर्भुवनैक पितामहः॥११॥
।। इति महाशोकध्वजादिशतम्॥४॥
श्रीवृक्षलक्षणः श्लक्ष्णो लक्षण्यः शुभलक्षणः।
निरक्षः पुण्डरीकाक्षः पुष्कलः पुष्करेक्षणः॥१॥
सिद्धिदः सिद्धसंकल्पः सिद्धात्मा सिद्धसाधनः।
बुद्धबोध्यो महाबोधिर्वर्धमानो महर्द्धिकः॥२॥
वेदांगो वेदविद्वेद्यो जातरूपो विदांवरः।
वेदवेद्यः स्वसंवेद्यो विवेदो वदतांवरः॥३॥
अनादिनिधनोऽव्यक्तो व्यक्तवाग्व्यक्तशासनः।
युगादिकृद्युगाधारो युगादिर्जगदादिजः॥४॥
अतीन्द्रोऽतीन्द्रियो धीन्द्रो महेन्द्रोऽतीन्द्रियार्थदृक्।
अनिन्द्रियोऽहमिन्द्राच्र्यो महेन्द्रमहितो महान्॥५॥
उद्भवः कारणं कर्त्ता पारगो भवतारकः।
अग्राह्यो गहनं गुह्यं परार्घ्यः परमेश्वरः॥६॥
अनन्तर्द्धिरमेयर्द्धिः रचिन्त्यर्द्धिः समग्रधीः।
प्राग्रयः प्राग्रहरोऽभ्यग्रः प्रत्यग्रोऽग्रयोऽग्रिमोऽग्रजः॥७॥
महातपा महातेजा महोदर्को महोदयः।
महायशा महाधामा महासत्त्वो महाधृतिः॥८॥
महाधैर्यो महावीर्यो महासम्पन्महाबलः।
महाशक्तिर्महाज्योतिर्महाभूतिर्महाद्युतिः॥९॥

महामतिर्महानीतिर्महाक्षान्तिर्महादयः ।
महाप्राज्ञो महाभागो महानन्दो महाकविः ॥१० ॥
महामहा महाकीर्तिर्महाकान्तिर्महावपुः ।
महादानो महाज्ञानो महायोगो महागुणः ॥११ ॥
महामहपतिः प्राप्तमहाकल्याणपञ्चकः ।
महाप्रभुर्महाप्रातिहार्याधीशो महेश्वरः ॥१२ ॥

।। इति वृक्षलक्षणादिशतम् ॥५ ॥

महामुनिर्महामौनी महाध्यानी महादमः ।
महाक्षमो महाशीलो महायज्ञो महामखः ॥१ ॥
महाव्रतपतिर्मह्यो महाकान्तिधरोऽधिपः ।
महामैत्री महामेयो महोपायो महोमयः ॥२ ॥
महाकारुणिको मन्ता महामन्त्रो महायतिः ।
महानादो महाघोषो महेज्यो महसांपतिः ॥३ ॥
महाध्वरधरो धुर्यो महौदार्यो महिष्ठवाक् ।
महात्मा महसांधाम महर्षिर्महितोदयः ॥४ ॥
महाक्लेशाङ्कुशः शूरो महाभूतपतिर्गुरुः ।
महापराक्रमोऽनन्तो महाक्रोधारिपुर्वशी ॥५ ॥
महाभवाब्धिसन्तारिर्महामोहाद्रिसूदनः ।
महागुणाकरः क्षान्तो महायोगीश्वरः शमी ॥६ ॥
महाध्यानपतिर्ध्याता महाधर्मा महाव्रतः ।
महाकर्मारिहाऽत्मज्ञो महादेवो महेशिता ॥७ ॥
सर्वक्लेशापहः साधुः सर्वदोषहरो हरः ।
असंख्येयोऽप्रमेयात्मा शमात्मा प्रशमाकरः ॥८ ॥

सर्वयोगीश्वरोऽचिन्त्यः श्रुतात्मा विष्टरश्रवाः।
दान्तात्मा दमतीर्थेशो योगात्मा ज्ञानसर्वगः॥९॥
प्रधानमात्मा प्रकृतिः परमः परमोदयः।
प्रक्षीणबन्धः कामारिः क्षेमकृत्क्षेमशासनः॥१०॥
प्रणवः प्रणयः प्राणः प्राणदः प्रणतेश्वरः।
प्रमाणं प्रणिधिर्दक्षो दक्षिणोध्वर्युरध्वरः॥११॥
आनन्दो नन्दनो नन्दो वन्द्योऽनिन्द्योऽभिनन्दनः।
कामहा कामदः काम्यः कामधेनुररिञ्जयः॥१२॥

।।इति महामुन्यादिशतम् ॥६॥

असंस्कृत सुसंस्कारः प्राकृतो वैकृतान्तकृत्।
अन्तकृत्कान्तगुः कान्तश्चिन्तामणिरभीष्टदः॥१॥
अजितो जितकामारिरमितोऽमितशासनः।
जितक्रोधो जितामित्रो जितक्लेशो जितान्तकः॥२॥
जिनेन्द्रः परमानन्दो मुनीन्द्रो दुन्दुभिस्वनः।
महेन्द्रवन्द्यो योगीन्द्रो यतीन्द्रो नाभिनन्दनः॥३॥
नाभेयो नाभिजोऽजातः सुव्रतो मनुरुत्तमः।
अभेद्योऽनित्ययोऽनाश्वानधिकोऽधिगुरुः सुधीः॥४॥
सुमेधा विक्रमी स्वामी दुराधर्षो निरुत्सुकः।
विशिष्टः शिष्टभुक्शिष्टः प्रत्ययः कामनोऽनघः॥५॥
क्षेमी क्षेमङ्करोऽक्षय्यः क्षेमधर्मपति क्षमी।
अग्राह्यो ज्ञाननिग्राह्यो ध्यानगम्यो निरुत्तरः॥६॥
सुकृती धातुरिज्यार्हः सुनयश्चतुराननः।
श्रीनिवासश्चतुर्वक्त्रश्चतुरास्यश्चतुर्मुखः॥७॥

सत्यात्मा सत्यविज्ञानः सत्यवाक्सत्यशासनः।
सत्याशीः सत्यसन्धानः सत्यः सत्यपरायणः ॥८॥
स्थेयान्स्थवीयान्नेदीयान्दवीयान् दूरदर्शनः।
अणोरणीयाननणुर्गुरुराद्यो गरीयसाम् ॥९॥
सदायोगः सदाभोगः सदातृप्तः सदाशिवः।
सदागतिः सदासौख्यः सदाविद्यः सदोदयः ॥१०॥
सुघोषः सुमुखः सौम्यः सुखदः सुहितः सुहृत्।
सुगुप्तो गुप्तिभृद् गोप्ता लोकाध्यक्षो दमीश्वरः ॥११॥

॥ इति असंस्कृतादिशतम् ॥७॥

बृहद्बृहस्पतिर्वाग्मी वाचस्पतिरुदारधीः।
मनीषी धिषणो धीमाञ्छेमुषीशो गिरांपतिः ॥१॥
नैकरूपो नयोत्तुङ्गो नैकात्मा नैकधर्मकृत्।
अविज्ञेयोऽप्रतर्क्यात्मा कृतज्ञः कृतलक्षणः ॥२॥
ज्ञानगर्भो दयागर्भो रत्नगर्भः प्रभास्वरः।
पद्मगर्भो जगद्गर्भो हेमगर्भः सुदर्शनः ॥३॥
लक्ष्मीवास्त्रिदशाध्यक्षो दृढीयानिन ईशिता।
मनोहरो मनोज्ञांगो धीरो गम्भीरशासनः ॥४॥
धर्मयूपो दयायागो धर्मनेमिर्मुनीश्वरः।
धर्मचक्रायुधो देवः कर्महा धर्मघोषणः ॥५॥
अमोघवागमोघाज्ञो निर्मलोऽमोघशासनः।
सुरूपः सुभगस्त्यागी समयज्ञः समाहितः ॥६॥
सुस्थितः स्वास्थ्यभाक्स्वस्थो नीरजस्को निरुद्धवः।
निर्लेपो निष्कलङ्कात्मा वीतरागो गतस्पृहः ॥७॥

वश्येन्द्रियो विमुक्तात्मा निःसपत्नो जितेन्द्रियः।
प्रशान्तोऽनन्तधामर्षिर्मङ्गलं मलहानघः॥८॥
अनीदृगुपमाभूतो दिष्टिर्दैवमगोचरः।
अमूर्तो मूर्तिमानेको नैको नानैकतत्त्वदृक्॥९॥
अध्यात्मगम्यो गम्यात्मा योगविद्योगिवन्दितः।
सर्वत्रगः सदाभावी त्रिकालविषयार्थदृक्॥१०॥
शंकरः शंवदो दान्तो दमी क्षान्तिपरायणः।
अधिपः परमानन्दः परात्मज्ञः परात्परः॥११॥
त्रिजगद्वल्लभोऽभ्यर्च्यस्त्रिजगन्मंगलोदयः।
त्रिजगत्पतिपूज्यांघ्रिस्त्रिलोकाग्रशिखामणिः॥१२॥

॥ इति बृहदादिशतम् ॥८॥

त्रिकालदर्शी लोकेशो लोकधाता दृढ़व्रतः।
सर्वलोकातिगः पूज्यः सर्वलोकैकसारथिः॥१॥
पुराणः पुरुषः पूर्वः कृतपूर्वांगविस्तरः।
आदिदेवः पुराणाद्यः पुरुदेवोऽधिदेवता॥२॥
युगमुख्यो युगज्येष्ठो युगादिस्थितिदेशकः।
कल्याणवर्णः कल्याणः कल्यः कल्याणलक्षणः॥३॥
कल्याणप्रकृतिर्दीप्तः कल्याणात्मा विकल्मषः।
विकलंकः कलातीतः कलिलघ्नः कलाधरः॥४॥
देवदेवो जगन्नाथो जगद्बन्धुर्जगद्विभुः।
जगद्धितैषी लोकज्ञः सर्वगो जगदग्रजः॥५॥
चराचरगुरुर्गोप्यो गूढ़ात्मा गूढ़गोचरः।
सद्योजातः प्रकाशात्माः ज्वलज्ज्वलनसत्प्रभः॥६॥

आदित्यवर्णो धर्माभः, सुप्रभः कनकप्रभः।
सुवर्णवर्णो रुक्माभः, सूर्यकोटि समप्रभः ॥७॥
तपनीयनिभस्तुङ्गो बालार्काभोऽनलप्रभः।
सन्ध्याभ्रबभ्रुहेमाभस्तप्तचामीकरच्छविः ॥८॥
निष्टप्तकनकच्छायः कनत्काञ्चनसन्निभः।
हिरण्यवर्णः स्वर्णाभः शातकुम्भनिभप्रभः ॥९॥
द्युम्नाभो जातरूपाभस्तप्तजाम्बूनदद्युतिः।
सुधौतकलधौतश्रीः प्रदीप्तो हाटकद्युतिः ॥१०॥
शिष्टेष्टः पुष्टिदः पुष्टः स्पष्टः स्पष्टाक्षरः क्षमः।
शत्रुघ्नोऽप्रतिघोऽमोघः प्रशास्ता शासिता स्वभूः ॥११॥
शान्तिनिष्ठो मुनिज्ज्येष्ठः शिवतातिः शिवप्रदः।
शान्तिदः शान्तिकृच्छान्तिः कान्तिमान्कामितप्रदः ॥१२॥
श्रेयोनिधिरधिष्ठानमप्रतिष्ठः प्रतिष्ठितः।
सुस्थिरः स्थावरः स्थाणुः प्रथीयान्प्रथितः पृथुः ॥१३॥
॥ इति त्रिकालदर्श्यादिशतम् ॥९॥
दिग्वासा वातरसनो निर्ग्रन्थेशो निरम्बरः।
निष्किञ्चनोनिराशंसो ज्ञानचक्षुरमोमुहः ॥१॥
तेजोराशिरनन्तौजा ज्ञानाब्धिः शीलसागरः।
तेजोमयोऽमितज्योतिर्ज्योतिमूर्तिस्तमोपहः ॥२॥
जगच्चूडामणिर्दीप्तः सर्वान्विघ्नविनायकः।
कलिघ्नः कर्मशत्रुघ्नो लोकालोकप्रकाशकः ॥३॥
अनिद्रालुरतन्द्रालुर्जागरूकः प्रमामयः।
लक्ष्मीपतिर्जगज्ज्योतिर्धर्मराजः प्रजाहितः ॥४॥

मुमुक्षुर्बन्धमोक्षज्ञो जिताक्षो जितमन्मथः।
प्रशान्तरसशैलूषो भव्यपेटकनायकः॥५॥
मूलकर्त्ताऽखिलज्योतिर्मलघ्नो मूलकारणं।
आप्तो वागीश्वरः श्रेयाञ्छ्रायसोक्तिर्निरुक्तवाक्॥६॥
प्रवक्ता वचसामीशो मारजिद्विश्वभाववित्।
सुतनुस्तनुनिर्मुक्तः सुगतो हतदुर्नयः॥७॥
श्रीशः श्रीश्रितपादाब्जो वीतभीरभयंकरः।
उत्सन्नदोषो निर्विघ्नो निश्चलो लोकवत्सलः॥८॥
लोकोत्तरो लोकपतिर्लोकचक्षुरपारधीः।
धीरधीर्बुद्धसन्मार्गः शुद्धः सूनृतपूतवाक्॥९॥
प्रज्ञापारमितः प्राज्ञो यतिर्नियमितेन्द्रियः।
भदन्तो भद्रकृद्भद्रः कल्पवृक्षो वरप्रदः॥१०॥
समुन्मूलितकर्मारिः कर्मकाष्ठाशुशुक्षणिः।
कर्मण्यः कर्मठः प्रांशुर्हेयादेयविचक्षणः॥११॥
अनन्तशक्तिरच्छेद्यस्त्रिपुरारिस्त्रिलोचनः।
त्रिनेत्रस्त्र्यम्बकस्त्र्यक्षः केवलज्ञानवीक्षणः॥१२॥
समन्तभद्रः शान्तारिर्धर्माचार्यो दयानिधिः।
सूक्ष्मदर्शी जितानंगः कृपालुर्धर्मदेशकः॥१३॥
शुभंयुः सुखसाद्भूतः पुण्यराशिरनामयः।
धर्मपालो जगत्पालो धर्मसाम्राज्यनायकः॥१४॥

॥ इति दिग्वासाद्यष्टोत्तरशतम् ॥१०॥

धाम्नां पते तवामूनि नामान्यागमकोविदैः।
समुच्चितान्यनुध्यायन्पुमान्पूतस्मृतिर्भवेत्॥१॥

गोचरोऽपि गिरामासां त्वमवाग्गोचरो मतः।
स्तोता तथाप्यसंदिग्धं त्वत्तोऽभीष्टफलं भजेत्॥२॥
त्वमतोऽसि जगद्बन्धुस्त्वमतोऽसि जगद्भिषक्।
त्वमतोऽसि जगद्धाता त्वमतोऽसि जगद्धितः॥३॥
त्वमेकं जगतां ज्योतिस्त्वं द्विरूपोपयोगभाक्।
त्वं त्रिरूपैकमुक्त्यंगः स्वोत्थानन्तचतुष्टयः॥४॥
त्वं पञ्चब्रह्मतत्त्वात्मा पञ्चकल्याणनायकः।
षड्भेदभावतत्त्वज्ञस्त्वं सप्तनयसंग्रहः॥५॥
दिव्याष्टगुणमूर्तिस्त्वं नवकेवललब्धिकः।
दशावतारनिर्धार्यो मां पाहि परमेश्वरः॥६॥
युष्मन्नामावलीदृब्धविलसत्स्तोत्रमालया।
भवन्तं वरिवस्यामः प्रसीदानुगृहाण नः॥७॥
इदं स्तोत्रमनुस्मृत्य पूतो भवति भाक्तिकः।
यः संपाठं पठत्येनं स स्यात्कल्याणभाजनम्॥८॥
ततः सदेदं पुण्यार्थी पुमान्पठतु पुण्यधीः।
पौरुहूतीं श्रियं प्राप्तुं परमामभिलाषुकः॥९॥
स्तुत्वेति मघवा देवं चराचरजगद्गुरुम्।
ततस्तीर्थविहारस्य व्यधात्प्रस्तावनामिमाम्॥१०॥
स्तुतिः पुण्यगुणोत्कीर्तिः स्तोता भव्यः प्रसन्नधीः।
निष्ठितार्थो भवांस्तुत्यः फलं नैश्रेयसं सुखम्॥११॥

(शार्दूल विक्रीडित छंद)

यः स्तुत्यो जगतां त्रयस्य न पुनः स्तोता स्वयं कस्यचित्।
ध्येयो योगिजनस्य यश्च नितरां ध्याता स्वयं कस्यचित्।।

यो नेतॄन् नयते नमस्कृतिमलं नन्तव्यपक्षेक्षणः।
स श्रीमान् जगतां त्रयस्य च गुरुर्देवः पुरुः पावनः॥१२॥
तं देवं त्रिदशाधिपार्चितपदं घातिक्षयानन्तरं-
प्रोत्थानन्तचतुष्टयं जिनमिनं भव्याब्जनीनामिनम्।
मानस्तम्भविलोकनानतजगन्मान्यं त्रिलोकीपतिं
प्राप्ताचिन्त्यबहिर्विभूतिमनघं भक्त्या प्रवन्दामहे॥१३॥
।। इति श्री भगवज्जिनसहस्रनाम स्तोत्रं।।

छहढाला

(कविवर दौलतराम जी कृत)

तीन भुवन में सार, वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार, नमहुँ त्रियोग सम्हारिकैं॥

पहली ढाल

जे त्रिभुवन में जीव अनन्त, सुख चाहैं दुख तैं भयवन्त।
तातैं दुखहारी सुखकार, कहैं सीख गुरु करुणा धार॥1॥

ताहि सुनो भवि मन थिर आन, जो चाहो अपनो कल्यान।
मोह-महामद पियो अनादि, भूल आपको भरमत वादि॥2॥

तास भ्रमन की है बहु कथा, पै कछु कहूँ कही मुनि यथा।
काल अनंत निगोद मँझार, वीत्यो एकेन्द्री-तन धार॥3॥

एकश्वास में अठदश बार, जन्म्योमर्‌योभर्‌यो दुख-भार।
निकसिभूमि जल पावक भयो, पवन प्रत्येक वनस्पति थयो॥4॥

दुर्लभ लहि ज्यों चिन्तामणी, त्यों पर्याय लही त्रसतणी।
लटपिपील अलि आदि शरीर, धर-धरमर्‌यो सही बहुपीर॥5॥

कबहूँ पंचेन्द्रिय पशु भयो, मन विन निपट अज्ञानी थयो।
सिंहादिक सैनी ह्वै क्रूर, निबलपशु हति खाये भूर॥6॥

कबहूँ आप भयो बल-हीन, सबलनि करि खायो अतिदीन।
छेदन-भेदन भूख-पियास, भार-वहन हिम आतप त्रास॥7॥

वध-बन्धन आदिक दुख घने, कोटि जीभ तैं जात न भने।
अति-संक्लेश भाव तैं मर्‍यो, घोर-श्वभ्र-सागर में पर्‍यो॥8॥

तहाँ भूमि परसत दुख इस्यो, बिच्छू सहस डसैं नहिं तिस्यो।
तहाँराधशोणित-वाहिनी, कृमि-कुल-कलित देह-दाहिनी॥9॥

सेमर-तरु-दलजुत-असिपत्र, असि ज्यों देह विदारैं तत्र।
मेरु-समान लोह गलि जाय, ऐसी शीत-उष्णता थाय॥10॥

तिल-तिल करैं देह के खण्ड, असुर भिड़ावैं दुष्ट प्रचण्ड।
सिन्धु नीर तैं प्यास न जाय, तौ पण एक न बूँद लहाय॥11॥

तीनलोक को नाज जु खाय, मिटै न भूख कणा न लहाय।
ये दुख बहु सागर लौं सहै, कर्म जोग तैं नर-गति लहै॥12॥

जननी-उदर बस्यो नव-मास, अंग सकुचतैं पाई त्रास।
निकसत जे दुख पाये घोर, तिनको कहत न आवै ओर॥13॥

बालपने मे ज्ञान न लह्यो, तरुण समय तरुणी-रत रह्यो।
अर्द्धमृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो॥14॥

कभी अकामनिर्जरा करै, भवनत्रिक में सुर-तन धरै।
विषय-चाह-दावानलदह्यो, मरत विलाप करत दुख सह्यो॥15॥

जो विमान वासी हूँ थाय, सम्यक्‌दर्शन बिन दुख पाय।
तहँ तैं चय थावर-तन धरे, यों परिवर्तन पूरे करे॥16॥

दूसरी ढाल

ऐसे मिथ्यादृग-ज्ञान-चरण, वश भ्रमतभरत दुख जन्म-मरण।
तातैं इनको तजिये सुजान, सुन तिन संक्षेप कहूँ बखान॥1॥

जीवादि प्रयोजनभूत तत्त्व, सरधै तिन माहिं विपर्ययत्व।
चेतन को है उपयोगरूप, बिन मूरति चिन-मूरति अनूप॥2॥

पुद्गलनभ धर्म अधर्म काल, इन तैं न्यारी है जीव-चाल।
ताकों न जान विपरीत मान, करि करै देह में निज पिछान॥3॥

मैं सुखी दुखी मैं रंक राव, मेरे धन गृह गोधन प्रभाव।
मेरे सुत तिय मैं सबल दीन, बेरूप सुभग मूरख प्रवीन॥4॥

तन उपजत अपनी उपज जान, तन नशत आप को नाशमान।
रागादि प्रगट जे दुःख दैन, तिनही को सेवत गिनत चैन॥5॥

शुभ-अशुभबंध के फलमंझार, रति अरति करै निज-पदविसार।
आतम-हित-हेतु विराग-ज्ञान, ते लखै आपको कष्टदान॥6॥

रोके न चाह निज शक्ति खोय, शिवरूप निराकुलता न जोय।
याही प्रतीतजुत कछुक ज्ञान, सो दुखदायक अज्ञान जान॥7॥

इन-जुत विषयनि में जो प्रवृत्त-ताको जानो मिथ्याचरित्त।
यों मिथ्यात्वादि निसर्ग जेह, अब जे गृहीत सुनिये सु तेह॥8॥

जो कुगुरु कुदेव कुधर्म सेव, पोषैं चिर दर्शनमोह एव।
अन्तर रागादिक धरैं जेह, बाहर धन अम्बरतैं सनेह॥9॥

धारैं कुलिंग लहि महतभाव, ते कुगुरु जनम जल उपल नाव।
जे रागद्वैषमल करि मलीन, वनितागदादि जुत चिन्हचीन॥10॥

ते हैं कुदेवतिनकी जु सेव, शठकरत न तिन भव-भ्रमण-छेव।
रागादि-भाव हिंसा समेत, दर्वितत्रस-थावरमरण-खेत॥11॥

जे क्रिया तिन्हैं जानहु कुधर्म, तिन सरधै जीव लहै अशर्म।
याकौं गृहीत मिथ्यात्व जान, अब सुन गृहीत जो है अज्ञान॥12॥

एकांतवाद दूषित समस्त, विषयादिक-पोषक अप्रशस्त।
कपिलादि रचित श्रुत को अभ्यास, सो है कुबोध बहु देन त्रास॥13॥

जे ख्याति-लाभपूजादि चाह, धरि करन विविध-विध देहदाह।
आतम-अनात्म के ज्ञानहीन, जे-जे करनी तन करन छीन ॥ 14 ॥

ते सब मिथ्याचारित्रत्याग, अब आतम के हित पन्थ लाग।
जगजाल भ्रमण को देहु त्याग, अब दौलत निज आतमसुपाग ॥ 15 ॥

तीसरी ढाल

आतम को हित है सुख, सो सुख, आकुलता बिन कहिए।
आकुलता शिव माहिं न तातैं, शिव-मग लाग्यो चहिए।
सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चरन-शिव-मग सो दुविध विचारो।
जो सत्यारथ-रूप सो निश्चय, कारण सो व्यवहारो ॥ 1 ॥

पर द्रव्यनि तैं भिन्न आप में, रुचि सम्यक्त्व भला है।
आप रूप को जानपनो सो, सम्यग्ज्ञान-कला है।
आप रूप में लीन रहे थिर, सम्यक् चारित सोई।
अब व्यवहार मोक्ष मग सुनिये, हेतु नियत को होई ॥ 2 ॥

जीव अजीव तत्त्व अरु आस्रव, बन्धरु संवर जानो।
निर्जर मोक्ष कहे जिन तिन को, ज्यौं-का-त्यौं सरधानो।
है सोई समकित व्यवहारी, अब इन रूप बखानो।
तिन को सुन सामान्य-विशेषै, दृढ़ प्रतीति उर आनो ॥ 3 ॥

बहिरातम अन्तरआतम परमातम जीव त्रिधा है।
देह जीव को एक गिनै, बहिरातम तत्त्व मुधा है
उत्तम मध्यम जघन त्रिविध के, अन्तर आतम ज्ञानी।
द्विविध संग बिन शुद्ध-उपयोगी, मुनि उत्तम निज ध्यानी ॥ 4 ॥

मध्यम अन्तर आतम हैं जे, देशव्रती अनगारी।
जघन कहे अविरत-समदृष्टि, तीनों शिव-मगचारी।
सकल निकल परमातम द्वैविध, तिन में घाति निवारी।
श्री अरहन्त सकल परमातम, लोकालोक-निहारी ॥ 5 ॥

ज्ञानशरीरी त्रिविध कर्ममल-वर्जित सिद्ध महन्ता।
ते हैं निकल अमल परमातम, भोगैं शर्म अनन्ता।
बहिरातमता हेय जानि तजि, अन्तर आतम हूजै।
परमातम को ध्याय निरन्तर, ज्यों निज आनंद पूजै॥6॥

चेतनता बिन सो अजीव है, पंच भेद ताके हैं।
पुद्गल पंच वरन रस गंध, दो फरस वसु जाके हैं।
जिय-पुद्गल को चलन सहाई, धर्म द्रव्य अनुरूपी।
तिष्ठत होय अधर्म सहाई, जिन बिन-मूर्ति निरूपी॥7॥

सकलद्रव्य को वास जास में, सो आकाश पिछानो।
नियत वर्तना निशि-दिन सो, व्यवहार-काल परिमानो।
यों अजीव अब आस्रव सुनिये, मन-वच-काय त्रियोगा॥
मिथ्या अविरति अरु कषाय, परमाद-सहित उपयोगा॥8॥

ये ही आतम को दुख-कारण, तातैं इन को तजिये।
जीव-प्रदेश बँधै विधि सों सो, बंधन कबहूँ न सजिये।
शम-दम तैं जो कर्म न आवैं, सो संवर आदरिये।
तप-बल तैं विधि-झरन निर्जरा, ताहि सदा आचरिये॥9॥

सकल करम तैं रहित अवस्था, सो शिव थिर सुखकारी।
इहि विधि जो सरधा तत्त्वन की, सो समकित व्यवहारी।
देव जिनेन्द्र, गुरु परिग्रह बिन, धर्म दयाजुत सारो।
ये हु मान समकित को कारण, अष्ट अंगजुत धारो॥10॥

वसु मद टारि निवारि त्रि-शठता, षट् अनायतन त्यागो।
शंकादि वसु दोष बिना संवेगादिक चित पागो।
अष्ट अंग अरु दोष पचीसों, तिन संक्षेपहु कहिये।
बिन जाने तैं दोष-गुनन को, कैसे तजिये गहिये॥11॥

जिन-वच में शंका न, धारि वृष-भव-सुख-वांछा भानै।
मुनि-तन मलिन न देख घिनावै, तत्त्व कुतत्त्व पिछानै।

निज-गुन अरु पर-औगुन ढाकै, वा निज-धर्म बढ़ावै।
कामादिक कर वृष तैं चिगते, निज-पर को सुदृढ़ावै॥12॥
धर्मी सोंगउ-वच्छ-प्रीति-सम, कर जिन-धर्म दिपावै।
इन गुन तैं विपरीत दोष वसु, तिन को सतत खिपावै।
पिता भूप वा मातुल नृप जो, होय न तो मद ठानै।
मद न रूप को मद न ज्ञान को, धन बल को मद भानै॥13॥

तप को मद न मद जु प्रभुता को, करै न सो निज जानै।
मद धारैं तो येहि दोष वसु, समकित को मल ठानै।
कुगुरु-कुदेव-कुवृष-सेवक की, नहिं प्रशंस उचरै हैं।
जिनमुनि जिनश्रुत विन कुगुरादिक, तिन्हैं न नमन करै हैं॥14॥

दोषरहित गुनसहित सुधी जे, सम्यकदरश सजै हैं।
चरितमोहवश लेश न संजम, पै सुरनाथ जजे हैं॥
गेही पै गृह में न रचै ज्यों, जल तैं भिन्न कमल है।
नगर नारि को प्यार यथा, कादे में हेम अमल है॥15॥

प्रथम नरक बिन षट् भू ज्योतिष, वान भवन षँढ नारी।
थावर विकलत्रय पशु में नहिं, उपजत सम्यक्-धारी॥
तीन लोक तिहुँ काल माहिं नहिं, दर्शन सम सुखकारी।
सकल धर्म को मूल यही इस, बिन करनी दुखकारी॥16॥

मोक्ष महल की परथम सीढ़ी, या बिन ज्ञान चरित्रा।
सम्यक्ता न लहै सो दर्शन, धारो भव्य पवित्रा॥
दौल समझ सुन चेत सयाने, काल वृथा मत खोवै।
यह नर-भव फिर मिलन कठिन है, जो सम्यक् नहिं होवे॥17॥

चौथी ढाल

सम्यक् श्रद्धा धारि पुनि, सेवहु सम्यग्ज्ञान।
स्व-पर अर्थ बहु धर्मजुत, जो प्रगटावन भान॥1॥

सम्यक् साथै ज्ञान होय पै भिन्न अराधौ।
लक्षण श्रद्धा जान दुहू में भेद अबाधौ॥2॥

सम्यक् कारण जान ज्ञान कारज है सोई।
युगपत होतैं हू प्रकाश दीपक तैं होई॥3॥

तास भेद दो हैं परोक्ष परतछि तिन माहीं।
मति-श्रुत दोय परोक्ष अक्ष-मन तैं उपजाहीं॥4॥

अवधिज्ञान-मनपर्जय दो हैं देश प्रतच्छा।
द्रव्य-क्षेत्र परिमाण लिये जानैं जिय स्वच्छा॥5॥

सकल द्रव्य के गुन अनन्त परजाय अनंता।
जानै एकै काल प्रगट केवलि भगवन्ता॥6॥

ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन।
इह परमामृत जन्म जरा-मृतु-रोग-निवारन॥7॥

कोटि जनम तप तपैं ज्ञान बिन कर्म झरैं जे।
ज्ञानी के छिन माहिं त्रिगुप्ति तैं सहज टरैं ते॥8॥

मुनिव्रत धार अनन्त बार ग्रीवक उपजायो।
पै निज-आतम-ज्ञान बिना सुख लेश न पायो॥9॥

तातैं जिनवर कथित, तत्त्व अभ्यास करीजै।
संशय-विभ्रम-मोह त्याग आपो लखि लीजै॥10॥

यह मानुष-पर्याय सुकुल सुनिवो जिन-वानी।
इह विधि गये न मिलैं सुमणि ज्यों उदधि समानी॥11॥

धन समाज गज बाज राज तो काज न आवै।
ज्ञान आपको रूप भये फिर अचल रहावै॥12॥

तास ज्ञान को कारन स्व-पर-विवेक बखान्यो।
कोटि उपाय बनाय भव्य ताको उर आन्यो॥13॥

जे पूरब शिव गये जाहिं अरु आगै जैहें।
सो सब महिमा ज्ञानतनी मुनिनाथ कहै हैं॥14॥

विषय-चाह-दव-दाह जगत-जन अरनि दझावै।
तासु उपाय न आन ज्ञान-घनघान बुझावै॥15॥

पुण्य-पाप-फल माँहिं, हरष-बिलखौ मत भाई।
यह पुद्गल-परजाय, उपजि विनसै थिर नाई॥16॥

लाख बात की बात यहै, निश्चय उर लावौ।
तोरि सकल जग-दन्द-फन्द, निज-आतम ध्यावौ॥17॥

सम्यग्ज्ञानी होय बहुरि, दृढ़ चारित लीजै।
एकदेश अरु सकलदेश, तसु भेद कहीजै॥18॥

त्रस-हिंसा को त्याग, वृथा थावर न संहारै।
पर-वधकार कठोर निन्द्य, नहिं वयन उचारै॥19॥

जल मृतिका बिन और नाहिं कछु गहै अदत्ता।
निज वनिता बिन सकल नारि सौं रहै विरत्ता॥20॥

अपनी शक्ति विचार परिग्रह थोरो राखै।
दश दिशि गमन-प्रमान ठान, तसु सीम न नाखै॥21॥

ताहू में फिर ग्राम, गली गृह बाग बजारा।
गमनागमन प्रमान ठान अन सकल निवारा॥22॥

काहू की धन-हानि, किसी जय हार न चिन्तैं।
देय न सो उपदेश होय, अघ बनिज कृषी तैं॥23॥

कर प्रमाद जल भूमि, वृक्ष पावक न विराधै।
असि धनु हल हिंसोपकरन, नहिं दे जस लाधै॥24॥

राग-द्वेष-करतार कथा, कबहूँ न सुनीजै।
औरहु अनरथदण्ड हेतु, अघ तिन्हैं न कीजै॥25॥

धर उर समता-भाव, सदा सामायिक करिये॥
पर्व-चतुष्टय माहिं, पाप तजि प्रोषध धरिये॥26॥

भोग और उपभोग, नियम करि ममत निवारै।
मुनि को भोजन देय, फेर निज करहिं अहारै॥27॥

बारह व्रत के अतीचार, पन पन न लगावै।
मरन समय सन्यास धार, तसु दोष नशावै॥28॥

यौं श्रावकव्रत पाल स्वर्ग सोलम उपजावै।
तहँ तैं चय नर-जन्म पाय मुनि ह्वै शिव जावै॥29॥

पाँचवी ढाल

मुनि सकलव्रती बड़भागी, भव भोगन तैं वैरागी।
वैराग्य उपावन माई, चिन्तैं अनुप्रेक्षा भाई॥1॥

इन चिन्तत समसुख जागै, जिमि ज्वलन पवन के लागै।
जब ही जिय आतम जानै, तबही जिय शिवसुख ठानै॥2॥

जोवन गृह गोधन नारी, हय गय जन आज्ञाकारी।
इन्द्रिय भोग छिन थाई, सुरधनु चपला चपलाई॥3॥

सुर असुर खगाधिप जेते, मृग ज्यों हरि काल दले ते।
मणि मंत्र तंत्र बहु होई, मरते न बचावै कोई॥4॥

चहुँगति दुख जीव भरै हैं, परिवर्तन पंच करै हैं।
सब विधि संसार असारा, यामैं सुख नाहिं लगारा॥5॥

शुभ-अशुभ करमफल जेते, भोगे-जिय एकहि तेते।
सुत दारा होय न सीरी, सब स्वारथ के हैं भीरी॥6॥

जल-पय ज्यौं जिय-तन मेला, पै भिन्न-भिन्न नहिं भेला।
तो प्रगट जुदे धन-धामा, क्यों ह्वै इक मिलि सुत रामा॥7॥

पल रुधिर राध-मल-थैली, कीकस वसादितें मैली।
नव द्वार बहै घिनकारी, असि देह करै किम यारी॥8॥

जो जोगन की चपलाई, तातैं ह्वै आस्रव भाई।
आस्रव दुखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हैं निरवेरे॥9॥

जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना।
तिन ही विधि आवत रोके, संवर लहि सुख अवलोके॥10॥

निज काल पाय विधि झरना, तासों निज-काज न सरना।
तप करि जो कर्म खिपावै, सोई शिव-सुख दरसावै॥11॥

किनहूँ न कर्‌यो न धरै को, षट्-द्रव्यमयी न हरै को।
सो लोक माहिं बिन समता, दुख सहै जीव नित भ्रमता॥12॥

अन्तिम ग्रीवक लौं की हद, पायो अनन्त बिरियाँ पद।
पर सम्यग्ज्ञान न लाध्यो, दुर्लभ निज में मुनि साध्यो॥13॥

जे भाव मोह तैं न्यारे, दृग ज्ञान व्रतादिक सारे।
सो धर्म जबै जिय धारै, तब ही सुख अचल निहारै॥14॥

सो धर्म मुनिन करि धरिये, तिनकी करतूति उचरिये।
ताको सुनिये भवि प्रानी, अपनी अनुभूति पिछानी॥15॥

छठी ढाल

षट्‌काय जीव न हनन तैं, सब विधि दरब हिंसा टरी।
रागादि भाव निवारि तैं, हिंसा न भावित अवतरी।
जिनके न लेश मृषा न जल, मृण हू बिना दीयौ गहैं।
अठदश-सहस विधि शीलधर, चिदब्रह्म में नित रमि रहैं॥1॥

अन्तर चतुर्दश भेद बाहर, संग दशधा तैं टलैं।
परमाद तजि चौकर मही लखि, समिति ईर्या तैं चलैं।

जग सुहित-कर सब अहित-हर, श्रुति-सुखद सब संशय हरैं।
भ्रम-रोग-हर जिनके वचन मुख-चन्द्र तैं अमृत झरैं॥2॥

छयालीस दोष बिना सुकुल, श्रावक तनैं घर अशन को।
लैं तप बढ़ावन हेतु नहिं तन, पोषते तजि रसन को।
शुचिज्ञान संजम उपकरण, लखिकैं गहैं लखि कैं धरैं।
निर्जन्तु थान विलोकि तन-मल मूत्र श्लेषम परिहरैं॥3॥

सम्यक् प्रकार निरोध मन-वच-काय आतम ध्यावते।
तिन सुथिर मुद्रा देखि मृग-गण, उपल खाज खुजावते।
रस रूप गंध तथा फरस अरु, शब्द शुभ असुहावने।
तिन में न राग विरोध, पंचेन्द्रिय-जयन पद पावने॥4॥

समता सम्हारैं थुति उचारैं, वन्दना जिनदेव को।
नित करैं श्रुत-रति करैं प्रतिक्रम, तजैं तन अहमेव को।
जिनके न न्हौन न दन्त-धोवन, लेश अम्बर आवरन।
भू माहिं पिछली रयनि में, कछु शयन एकाशन करन॥5॥

इक बार दिन में लैं अहार, खड़े अलप निज पान में।
कचलोंच करत न डरत परिषह, सौं लगे निज ध्यान में।
अरि-मित्र महल-मसान कंचन, काँच निन्दन-थुतिकरन।
अर्घावतारन असि-प्रहारन में सदा समता धरन॥6॥

तप तपैं द्वादश, धरैं वृष दश, रत्नत्रय सेवैं सदा।
मुनि साथ में वा एक विचरैं, चहैं नहिं भव-सुख कदा।
यों है सकलसंजम चरित, सुनिये स्वरूपाचरन अब।
जिस होत प्रगटै आपनी निधि मिटै पर की प्रवृत्ति सब॥7॥

जिन परम पैनी सुबुधि-छैनी, डारि अन्तर भेदिया।
वरणादि अरु रागादि तैं, निज-भाव को न्यारा किया।
निज माहिं निज के हेतु, निज कर आप को आपै गह्यौ।
गुण-गुणी ज्ञाता-ज्ञान-ज्ञेय मँझार कछु भेद न रह्यो॥8॥

जहाँ ध्यान ध्याता ध्येय को न विकल्प वचभेद न जहाँ।
चिद्भाव कर्म चिदेश करता, चेतना किरिया तहाँ।
तीनों अभिन्न अखिन्न सुध, उपयोग की निश्चल दशा।
प्रगटी जहाँ दृग-ज्ञान-व्रत ये तीनधा एकै लसा॥9॥

परमाण नय निक्षेप को, न उद्योत अनुभव में दिखै।
दृग-ज्ञान-सुख-बलमय सदा, नहिं आन भाव जु मो विखै।
मैं साध्य साधक मैं अबाधक, कर्म अरु तसु फलनि तैं।
चित्पिंडचण्ड अखण्डसुगुन-करण्ड च्युत पुनि कलनितैं॥10॥

यों चिन्त्य निज में थिर भये, तिन अकथ जो आनंद लह्यो।
सो इन्द्र नाग नरेन्द्र वा, अहमिन्द्र कै नाहीं कह्यो।
तब ही शुक्ल ध्यानाग्नि करि चउ-घाति-विधि-काननदह्यो।
सब लख्यो केवलज्ञान करि भवि-लोक को शिवमग कह्यो॥11॥

पुनि घाति शेष अघातिविधि, छिन माहिं अष्टम-भू-बसैं।
वसु-कर्म विनसै सुगुन वसु, सम्यक्त्व आदिक सब लसैं।
संसार खार अपार, पारावार तरि तीरहिं गये।
अविकार अकल अरूप शुचि, चिद्रूप अविनाशी भये॥12॥

निज माहिं लोक अलोक गुण परजाय प्रतिबिम्बित भये।
रहि हैं अनन्तानत काल, यथा तथा शिव परिणये।
धनि धन्य हैं जे जीव नर-भव पाय यह कारज किया।
तिन ही अनादि भ्रमण पंच प्रकार, तजि वर सुख लिया॥13॥

मुख्योपचार दुभेद यों, बड़भागि रत्नत्रय धरैं।
अरु धरेंगे ते शिव लहैं, तिन सुजस-जल-जग-मल हरैं।
इमिजानि, आलस हानि, साहसठानि, यह सिख आदरो।
जब लौं न रोग जरा गहै, तब लौं झटिति निज हित करो॥14॥

यह राग आग दहै सदा, तातैं समामृत सेइये।

चिर भजे विषय कषाय अब तो, त्याग निजपद बेइये।
कहा रच्यो पर-पद में न तेरो, पद यहै क्यों दुख सहै।
अब 'दौल' होउ सुखी स्व-पद रचि, दाव मत चूको यहै॥15॥

दोहा

इक नव वसु इक वर्ष की, तीज सुकल बैशाख।
कर्‌यो तत्त्व उपदेश यह, लखि 'बुधजन' की भाख॥1॥
लघु-धी तथा प्रमाद तैं, शब्द-अर्थ की भूल।
सुधी सुधार पढो सदा, जो पावो भव-कूल॥2॥

चिंता और चिता

बिन्दु नाप्यधिकं मन्ये चितायां इति मे मतिः।
चिता दयति निर्जीवं चिन्ता जीवितमप्यहो।।

अर्थ—मैं चिता से चिन्ता में एक बिन्दु ही अधिक मानता हूं वैसे चिन्ता निर्जीव को जलाती है और जीवित को भी जलाती है।

सच्चे जैन का एक ही पंथ–जिनागम पंथ

जयदु जिणगम पंथो

पंचम खण्ड

अनादि–अनिधन

जिनागम पंथ जयवंत हो!

नारी कर्त्तव्य

गृहस्थी रूपी गाड़ी पति-पत्नी रूपी दो पहियों के आधार पर ही चलती है। धर्मात्मा एवं चतुर युगल के बिना गृहस्थधर्म का निर्वाह पूर्णरूपेण नहीं हो सकता। अष्टमूलगुण, षडावश्यक एवं ग्यारह प्रतिमाओं का जो वर्णन शास्त्रों में किया गया है वह श्रावक और श्राविकाओं को समानरूप से पालने योग्य है। विशेष इतना है कि गृहस्थधर्म का प्रतिपालन विवेकशील एवं पापभीरू नारियों के सहयोग से ही हो सकता है। किन्तु पाश्चात्य फैशन रूपी भूत के अधीन रहने वाली-

जो स्त्रियाँ प्रमाद आदि के कारण शुद्ध भोजन बना कर अपने कुटुम्ब आदि को नहीं खिला सकती हैं, जिन्हें बाजार का आटा, मसाला, अचार, पापड़, नमकीन एवं मिठाई आदि अभक्ष्य पदार्थों के खाने-खिलाने में ग्लानि नहीं है तथा जीवदया का भाव न होने से जो बिना छने जल का प्रयोग करती हैं, वे स्त्रियाँ अपने और परिवार के धर्म का विघात करने के कारण यहाँ से मर कर जलचर जीवों में उत्पन्न होती हैं।

जो स्त्रियाँ प्रमाद, अज्ञान, भूख आदि की व्याकुलता या अन्य किसी कारण से बिना शोधन किए दाल, चावल आदि धान्य ओखली आदि में कूटती हैं तथा जीव युक्त अनाज आदि धूप में सुखा देती हैं और भड़भूँजा से भुंजा लेती हैं, वे अनन्त काल तक संसार में परिभ्रमण करती हैं।

जो स्त्रियाँ मन, वचन और काय से जीवरक्षा का प्रयत्न नहीं करतीं, शोधन किए बिना ही गेहूँ आदि धान्य पीसती एवं पिसाती हैं तथा बिना शोधन किए ईंधन जलाती हैं, वे मर कर कूकरी, शूकरी, गधी, सर्पिणी, भैंस एवं कुत्ती आदि की नीच योनियों में जन्म लेती हैं।

जो स्त्रियाँ बिना प्रयोजन कच्चे फल, फूल, पत्ते आदि वनस्पति का छेदन-भेदन करती हैं, उनके शरीर के अंग कुष्ठ आदि रोगों से गल-गल कर छिन्न-भिन्न होते रहते हैं

जो स्त्रियाँ पकवान आदि बनाते समय तेल, घी, गुड़ तथा शक्कर आदि से लिप्त हाथ यथा-तथा दीवारों में पोंछ देती हैं, तथा शक्कर, गुड़ के मैल आदि से लिप्त वस्त्र बिना धोये यद्वा-तद्वा जमीन आदि पर डाल देती हैं जिससे अनेक (चींटी, मक्खी, मकोड़े आदि) जीवों का सामूहिक घात हो जाता है, उस पाप के फल से वे एकेन्द्रिय पर्याय में अथवा इतर-निगोद में निरन्तर पैदा होती रहती हैं।

जो स्त्रियाँ वस्त्र से छाने बिना ही तेल, घी, दूध आदि स्वयं खाती हैं और परिवार को खिलाती हैं, वे भव-भव में अन्धी होती हैं।

जो स्त्रियाँ मक्खन निकालकर उसे 48 मिनट के भीतर गर्म नहीं करतीं तथा आलू, प्याज, लहसुन, बैंगन और नवनीत आदि स्वयं खाती हैं एवं परिवार को खिलाती हैं, वे बन्धन, मारण, ताड़न तथा छेदन-भेदन आदि दु:खों को प्राप्त होती हैं।

जो स्त्रियाँ भिण्डी, करेला आदि सब्जियों को चाकू आदि से सुधारते समय विवेक नहीं रखती, अथवा भिण्डी आदि को बिना शोधन किए ही आग में साबुत भूँज लेती हैं, उन्हें निरन्तर कोल्हू आदि यन्त्रों में पेला जाता है।

जो स्त्रियाँ चातुर्मास में भी पत्तीवाला शाक एवं साबुत अनाज स्वयं खाती हैं और कुटुम्ब को खिलाती हैं, तथा केतकी, नीम और सहजना आदि के फूल, कन्दमूल आदि एवं कच्ची गीली हल्दी का भक्षण करती-कराती हैं वे नीच योनियों में अनेक प्रकार के भयंकर दु:ख भोगती हैं।

जो स्त्रियाँ नाना प्रकार के व्यंजन, पकवान तथा दाल-भात रोटी आदि बनाने में निपुण नहीं हैं, रसोईघर एवं चँदेवा आदि का सम्मार्जन नहीं करतीं, उन्हें एकदम काले और गन्दे रखती हैं, पाउडर से बर्तन साफ करती हैं और उन्हें कई घण्टों तक गीले में ही पड़े रहने देती हैं, रसोईघर में भोजन सामग्री ढक कर नहीं रखती, चप्पल पहिन कर रसोई बनाती हैं और रसोई के बर्तन कई घण्टों तक जूठे पड़े रहने देती हैं, वे भव-भव में कर्मकरी अर्थात् दासी आदि पर्यायों को प्राप्त करती हैं।

जो स्त्रियाँ प्रमाद के वशीभूत हो दो-दो, तीन-तीन दिन तक फ्रिज में रखे हुए गीले आटे की रोटियाँ तथा बनी हुई सब्जी आदि स्वयं खाती और खिलाती हैं, जिह्वा इन्द्रिय के वशीभूत होकर रसोई आदि को जूठा कर देती हैं तथा उत्तम घी, मावा आदि पदार्थों में जूठे पदार्थ मिला देती हैं, जो सदोष भोजनादि को शुद्ध कर देती हैं, जो अशुद्ध भोजन करनेवाले बालकों की शुद्धि नहीं करती, दूषित मन, वचन, काय से साधर्मियों को भोजन कराती हैं एवं और भी अपने अनेक कर्तव्यों का पालन नहीं करतीं, वे जन्म-जन्म में दरिद्री और अंगहीन होती हैं।

जो स्त्रियाँ घर आदि झाड़ते, बुहारते, लीपते, पोतते एवं रंग आदि करते समय तथा वस्त्र आदि धोते समय जीवों की रक्षा नहीं रखतीं तथा गर्म जल में बिना छना ठण्डा जल मिलाकर स्नान करती एवं कराती हैं, वे पंचपरावर्तनरुप संसार में परिभ्रमण करते हुए दीर्घ काल तक नरकादि गतियों के दुःख भोगती हैं।

जो स्त्रियाँ क्रीम, पाउडर, लिपस्टिक एवं नाखून आदि हिंसात्मक प्रसाधनों से शरीर का श्रृंगार करती हैं, जिनेन्द्रदर्शन या पूजन किये बिना भोजन करती हैं, अष्टमी-चतुर्दशी आदि पर्व के दिनों में भी वस्त्र तथा शरीर आदि में साबुन लगाती हैं, चोटी बनाती हैं और भोग

भोगने के लिए व्रत नियमों का भंग कर देती हैं, वे भव-भव में शारीरिक और मानसिक भयंकर दु:ख भोगतीं हैं।

जो स्त्रियाँ लोभ के वशीभूत होकर दूसरों के दूतीपने का कार्य करती हैं, दूसरों (देवरानी, जेठानी, सास एवं ननद आदि) का धन हरण करती रहती हैं, धरोहर हड़प लेती हैं तथा कषायों से वेष्ठित रहती हैं, वे अढाई पुद्गल परावर्तन काल पर्यन्त निगोद से नहीं निकलती हैं।

जो स्त्रियाँ माया कषाय से ग्रसित रहती हैं और छोटी-छोटी बातों पर कलह करती हैं, वे नियमत: तिर्यंच गति में जन्म लेकर सींगों से लड़ती हैं पश्चात् संक्लेश परिणामों से मर कर नरक जाती हैं।

जो स्त्रियाँ चप्पल पहिन कर मन्दिर जाती हैं। मौजे पहिने हुए देव शास्त्र गुरु के दर्शन करती हैं। मन शुद्धि, वचनशुद्धि, शरीरशुद्धि, वस्त्रशुद्धि, द्रव्यशुद्धि, क्षेत्रशुद्धि, कालशुद्धि और उपकरण आदि की शुद्धि के बिना ही देव पूजन और आहार दान आदि धार्मिक कार्य करती हैं। वे गर्भपात के सदृश दोष से दूषित होती हैं।

जो स्त्रियाँ अपने गर्भस्थ बालक-बालिका की स्वयं अपने ही हाथों से हत्या करती हैं, अर्थात् गोली आदि खाकर गर्भपात करती-कराती हैं, वे अनन्तकाल तक क्षुद्रभव धारण करती हुई एक श्वास में 18 बार जन्म-मरण की भयंकर वेदना का वेदन करती हैं।

जो स्त्रियाँ ब्रह्मचर्यव्रत को दूषित करती हैं, ब्रह्मचर्यव्रत को दूषित करने वाली वेश-भूषा पहनती हैं और नाना प्रकार से शरीर को सुसज्जित कर उसका प्रदर्शन करती हैं, वे चाण्डाल कुल में जन्म लेती हैं।

जो स्त्रियाँ मुनियों को आहार देते समय अधिक बोलती हैं, कफ आदि थूकती हैं, जम्भाई लेती हैं, क्रोध करती हैं, कृपणता

करती हैं, ईर्ष्या या मात्सर्य भाव रखती हैं, मनोभावना हीन रखती हैं और आहारदान देने में प्रमाद करती हैं, वे भव-भव में घोर दु:खों की भाजन होती हैं।

जिन स्त्रियों के हृदय में सच्चे देव, शास्त्र, गुरु का दृढ़ श्रद्धान, जैनतत्त्व की रुचि और जीवरक्षा का भाव नहीं है, स्त्री-पर्याय उनका कभी पीछा नहीं छोड़ती अर्थात् उन्हें भव भव में स्त्री पर्याय ही प्राप्त होती रहती है।

इस प्रकार और भी अनेक प्रकार के दूषण हैं जो स्त्रियों में बहुलता से पाए जाते हैं, अत: अपनी आत्मा का कल्याण करने हेतु मायाचारी आदि समस्त दुर्गुणों का प्रयत्नपूर्वक त्याग करना चाहिए।

रजस्वला स्त्री के कर्तव्य

स्त्रियों के स्वभावत: प्रतिमाह रज:स्राव होता है, जिसकी अशुद्धि तीन दिन पर्यन्त रहती है। चौथे दिन स्नान कर अपने पति-पुत्र के लिए भोजन बनाने की आज्ञा शास्त्रों में है। आहार-दान, पूजन, विधान, हवन आदि धर्मकार्यों के लिए (यदि पूर्ण शुद्धता है तो) पाँचवें दिन शुद्ध मानी जाती हैं।

बीसवीं शताब्दी के यौवन काल में शिक्षा का अधिकत: अभाव था, इसलिए अज्ञानता के कारण स्त्रियाँ रजस्वला अवस्था में करने योग्य और न करने योग्य कार्यों को प्राय: नहीं जानती थीं। वर्तमान में शास्त्रप्रकाशन, पठन-पाठन एवं उपदेशादि के माध्यम से शिक्षा का प्रसार तो अत्यधिक है, किन्तु स्कूलों और कालेजों में दी जानेवाली धर्मनिरपेक्ष शिक्षा आज की नवीन पीढ़ी को रजोधर्म के कर्तव्य पालन करने से विमुख करती जा रही है। धार्मिक भावना एवं विवेक से हीन आज की शिक्षित लड़कियाँ रजस्वला अवस्था में नाना प्रकार की फैशन बनाती हैं। क्रीम, पाउडर, स्नो, लिपस्टिक

आदि लगा कर शादी–विवाह, कॉलेज, क्लब, बाजार, होटल, सिनेमा, थियेटर एवं सभा–सोसायटी आदि में घूमती रहती हैं। सब प्रकार के मनुष्यों से वार्तालाप करती हैं। सब पदार्थों का स्पर्शादि करती हैं, और भी अनेक नहीं करने योग्य कार्य करती हैं, इसीलिए आज अधिकतर बलहीन, नेत्रज्योतिहीन, रोगी, दुर्बल, मूर्ख, कामी, व्यसनी और धर्मभावना से हीन सन्तान पैदा हो रही हैं, क्योंकि–

रजस्वला अवस्था में रुदन करने से गर्भ में आनेवाला बालक नेत्रहीन, अंधा, धुंधली या फूली आदि विकारों से युक्त होता है। उसकी आँखों में डोरा हो जाते हैं, पानी बहता रहता है, आँखें, कंजी, मांजरी तथा लाल हो जाती हैं, और भी नेत्र सम्बन्धी अनेक विकार हो जाते हैं।

रजस्वला अवस्था में नाखून काटने से बालक के नाखून टेढ़े–मेढ़े, काले, फीके, भद्दे और रुक्ष होते हैं तथा अनेक रोगों को उत्पन्न करनेवाले होते हैं।

रजस्वला अवस्था में तेल आदि लगाने से बालक कोढ़ी और खाज–दाद आदि रोगों से पीड़ित रहता है।

रजस्वला अवस्था में अंजन, सुरमा एवं उबटन आदि लगाने से सन्तान दुराचारी, व्यभिचारी और अन्य अनेक दुर्गुणों से युक्त होती है।

रजस्वला अवस्था में उच्चस्वर में बोलने या सुनने से सन्तान बहरी एवं कर्ण सम्बन्धी अन्य अनेक रोगों से पीड़ित उत्पन्न होती है।

रजस्वला अवस्था में दिन में सोने से सन्तान प्रमादी, बहुत सोनेवाली एवं ऊँघने वाली होती है।

रजस्वला अवस्था में अधिक हँसने से सन्तान के ओष्ठ, तालु, जिह्वा आदि काले पड़ जाते हैं।

रजस्वला अवस्था में अधिक बोलने से बच्चा प्रलापी, बकवादी,

असत्यभाषी एवं लबार होता है।

रजस्वला अवस्था में अधिक परिश्रम करने से उन्मादी एवं पागल सन्तान पैदा होती है।

रजस्वला अवस्था में खुले (चौड़े) में सोने से उन्मत्त सन्तान पैदा होती हैं

रजस्वला अवस्था में अधिक टीम-टाम और शृंगार आदि करने से सन्तान व्यभिचारिणी होती है।

उन दिनों ब्रह्मचर्यव्रत का पूर्ण पालन न करने से सन्तान अत्यन्त कामी और निर्लज्ज पैदा होती है, इस कारण रजस्वला अवस्था में इन सर्व अयोग्य दोषों का परित्याग कर तीन दिन पर्यन्त एकान्त स्थान में मौनपूर्वक रहना चाहिए। मन, वचन और काय से ब्रह्मचर्यव्रत का पालन करना चाहिए। एकान्त स्थान में डाभ के आसन या चटाई आदि पर सोना चाहिए। पलंग, खाट, शय्या, वस्त्र, रुई एवं ऊन आदि के बिस्तरों पर नहीं सोना चाहिए। दिन में एक बार रस छोड़कर भोजन करना चाहिए। दूध, दधि, घी आदि नहीं खाना चाहिए और न गरिष्ठ भोजन करना चाहिए। रजस्वला अवस्था में भोजन पत्तल में करना चाहिए, यदि ताँबे या पीतल के बर्तनों में भोजन करें तो उन्हें अग्नि डालकर शुद्ध कर लेना चाहिए। उन दिनों में पहिने हुए वस्त्र (साड़ी-पेटीकोट आदि) अलग रखने चाहिए, उन वस्त्रों से आहारदान एवं पूजन आदि क्रियाएँ नहीं करनी चाहिए। तीन दिन पर्यन्त देव, शास्त्र, गुरु एवं राजा आदि का दर्पण में भी दर्शन नहीं करना चाहिए और न सम्भाषण आदि करना चाहिए। पंच नमस्कार किसी भी मन्त्र का उच्चारण नहीं करना चाहिए, केवल चिन्तन, मनन एवं स्मरण ही करना चाहिए।

तीन दिन पर्यन्त घर की किसी भी वस्तु का स्पर्श नहीं करना चाहिए, क्योंकि स्नान आदि (बाहर) का जल स्पर्श करने से, सिलाई, बुनाई करने से तथा गृह के और भी अन्य कार्य (कूटने,

पीसने, कपड़े धोने, अनाज आदि साफ करने, बर्तन माँजने, झाडू-बुहारी लगाने तथा पेड़-पौधों में जलादि सिंचन) करने से गृह की ऋद्धि-सिद्धि नष्ट हो जाती है, दरिद्रता का वास हो जाता है, दीन-हीन भावना और धर्महीन प्रवृत्तियों के उत्पन्न हो जाने से अनेक प्रकार की आपत्तियाँ-विपत्तियाँ घेर लेती हैं।

जब रजस्वला स्त्री की छाया पड़ने मात्र से नेत्ररोगी अन्धा हो जाता है, चेचक एवं मोतीझरा आदि की बीमारियाँ भयंकर रूप धारण कर लेती हैं, बड़ी-पापड आदि बेस्वाद और लाल हो जाते हैं, पकवान आदि उत्तम पदार्थ विकृत हो जाते हैं तथा मजीठ आदि का रंग विरंग हो जाता है, तब पदार्थों का स्पर्श आदि करने से तो पवित्रता नष्ट होगी ही।

जो स्त्रियाँ अज्ञान से, प्रमाद से, अहंकार से, परवशता से या दैवयोग से उपर्युक्त कार्य करती हैं अर्थात् रजोधर्म का शास्त्रोक्त रीति से पालन नहीं करती हैं, वे इस भव में रोग, शोक, मोह, दरिद्रता एवं निन्दा आदि को प्राप्त होती हैं और पर-भव में कूकरी, शूकरी आदि पर्यायें धारण करती हुई तिर्यंच पर्यायजन्य अपरिमित कष्ट भोगती हैं। यदि मनुष्य पर्याय भी प्राप्त हो गई तो चाण्डाल आदि नीचकुल में अथवा भिखारियों के यहाँ उत्पन्न होकर दु:ख भोगती हैं। स्त्रीपर्याय प्राप्त कर वैधव्यजन्य और गलित कुष्ठरोगादिजन्य दु:ख भोगती हैं।

वर्तमान युग में नवीन (पाश्चात्य) शिक्षा प्राप्त लड़के-लड़कियाँ इस रजस्वला अवस्था को अपवित्र नहीं मानते। पककर फूट जानेवाले फोड़े फुन्सियों से जो रक्तस्राव होता है, उसी के समान इसे मानकर न तो वे ब्रह्मचर्यव्रत रखते हैं और न भोजनादि बनाने में, स्पर्शास्पर्श में ग्लानि करते हैं, क्योंकि आगम में रजस्वला स्त्री को प्रथम दिन चाण्डालनी सदृश, दूसरे दिन ब्रह्मघातिन सदृश और तीसरे दिन धोबिन सदृश कहा है।

दूसरी बात है कि फोड़ा-फुन्सी स्त्री-पुरुष दोनों के होते हैं, बाल, युवा एवं वृद्ध इन तीनों अवस्थाओं में हो सकते हैं। फोड़ा जहाँ

होता है वहाँ सूजन आ जाती है, उसे पकाने और फोड़ने के लिए औषधियों का प्रयोग करना पड़ता है। मांस उभर आता है। रक्त के साथ पीप भी आती है और पीप निकल जाने के बाद घाव हो जाता है जो औषधियों के प्रयोग से भरता है। फोड़े आदि होने का कोई ऐसा नियम नहीं है वह प्रत्येक माह में ही हो। रजस्वला होने के पूर्व अंगड़ाई आना, पेट, कमर एवं पैरों आदि में दर्द होना, प्रमाद एवं मन की अप्रशस्ततारूप जो चिन्ह उत्पन्न होते हैं, वे फोड़ा-फुन्सी होने के पूर्व नहीं होते।

उपर्युक्त इन सब बातों पर विचार करने से ज्ञात होता है कि स्त्री-पर्याय के साथ रजोधर्म का अविनाभाव सम्बन्ध है। जो स्त्रियाँ रजस्वला नहीं होती, वे नियमतः बन्ध्या रहती हैं

संसारभीरू, दुःखभीरू तथा सुख-शान्ति एवं कल्याणेच्छु नर-नारियों को आगम पर दृढ़ श्रद्धा रखते हुए सभी कार्य विवेक-पूर्वक करने चाहिए और स्पर्शास्पर्श का ध्यान रखते हुए धर्म की रक्षा करनी चाहिए।

अरिहंत नमस्कार से असंख्यातगुणी कर्म निर्जरा

"अरहंतणमोक्कारो संपहियबंधादो असंखेज्जगुण-कम्मक्खय कारओति तत्थ वि मुणीणं पवुत्तिप्पसंगादो"

(ज. धवल पु. 1 पृ. 9)

अर्थ—अरहंत नमस्कार तत्कालीन बंध की अपेक्षा असंख्यातगुणी कर्म निर्जरा का कारण है इसलिए अरहंत नमस्कार में भी मुनियों की प्रवृत्ति प्राप्त होती है।

भक्ष्य पदार्थों की मर्यादा

क्र.	पदार्थ का नाम	शीतकाल	ग्रीष्मकाल	वर्षाकाल
1.	बूरा	1 माह	15 दिन	7 दिन
2.	दूध			
	दुहने के बाद कच्चा	दो घड़ी	दो घड़ी	दो घड़ी
	उबालने के बाद	24 घण्टे	24 घण्टे	24 घण्टे
	स्वाद बिगड़ने पर	त्याज्य	त्याज्य	त्याज्य
3.	दही (गर्म दूध का)	24 घण्टे	24 घण्टे	24 घण्टे
4.	घी, गुड़, तेल	जब तक स्वाद न बिगड़े	जब तक स्वाद न बिगड़े	जब तक स्वाद न बिगड़े
5.	आटा, बेसन, पिसे मसाले	सात दिन	पाँच दिन	तीन दिन
6.	पिसा नमक	48 मिनिट	48 मिनिट	48 मिनट
7.	मसाला मिला नमक	6 घण्टे	6 घण्टे	6 घण्टे
8.	खिचड़ी रायता कढ़ी दाल, सब्जी	6 घण्टे	6 घण्टे	6 घण्टे
9.	रोटी, पूड़ी, हलवा, बड़ा कचोरी	12 घण्टे	12 घण्टे	12 घण्टे
10.	मौन वाले पकवान	8 पहर	8 पहर	8 पहर
11.	बिना पानी के पकवान	7 दिन	5 दिन	3 दिन
12.	मीठे पदार्थ मिला दही	48 मिनट	48 मिनट	48 मिनट
13.	गुड़ मिला छाछ दही	सर्वथा अभक्ष्य	सर्वथा अभक्ष्य	सर्वथा अभक्ष्य
14.	रस चलित	अभक्ष्य	अभक्ष्य	अभक्ष्य

सूतक पातक शुद्धि का काल प्रमाण

अवसर	जन्म	मरण
3 पीढ़ी	10 दिन	12 दिन
4 पीढ़ी	10 दिन	10 दिन
5 पीढ़ी	6 दिन	6 दिन
6 पीढ़ी तक	4 दिन	4 दिन
7 पीढ़ी तक	3 दिन	3 दिन
8. पीढ़ी तक	8 पहर	8 पहर
9 पीढ़ी तक	2 पहर	2 पहर
पुत्र, दासी, दास (अपने घर में)	3 दिन	3 दिन
गाय, भैंस आदि	1 दिन	1 दिन
अनाचारी स्त्री-पुरुष	सदा	सदा
1 महीने का बालक	-	1 दिन
8 वर्ष का बालक	-	3 दिन
3 माह का गर्भपात	-	3 दिन
(जितने माह का गर्भपात हो उतने दिन)		
गृहत्यागी, सन्यासी	-	-
गृहस्थ परदेश में मरे तो		
खबर जाने के पीछे शेष दिन		
अपघात मृत्यु	-	6 माह (3 माह)

गृह संबंधी समस्याओं का वास्तुशास्त्रीय निदान

1. पूर्व दिशा—इस दिशा में ज्यादा खुला स्थान बालकनी, पोर्टिको तथा स्नानगृह बनाने का प्रावधान है। यह स्थान पश्चिम की अपेक्षा नीचा होना चाहिए तथा इस स्थान पर कोई भारी सामान नहीं रखना चाहिए। पूर्व दिशा में पश्चिम की अपेक्षा ऊँचाई होने पर स्थित स्थान के निवासियों में आपसी समझबूझ का अभाव, वैमनस्यता तथा क्लेश बने रहते हैं। यदि शयन कक्ष हो तथा उसमें विवाहित युगल निवास करता है तो उस युगल का वैवाहिक जीवन दुरुह होता है। यदि रसोईघर हो तो अप्रत्याशित घटनाएँ, दैवीय प्रकोप, चोरी की घटनाएँ, अग्नि द्वारा हानि, त्वचा के रोग तथा कुष्ठ रोग की संभावना बनी रहती है।

2. पश्चिम दिशा—यह दिशा बच्चों की शयन कक्ष, दुछत्ती, भंडार गृह, भोजन कक्ष तथा टॉयलेट के लिए उचित मानी गई है। इस ओर पूर्व की अपेक्षा कम खुला स्थान तथा भूमि स्तर पूर्व की अपेक्षा नीचा होना चाहिए। यदि पश्चिम का भूमि स्तर पूर्व की अपेक्षा कम हो तो उस स्थान के निवासी परिवार में मत विभिन्नता, वैमनस्यता, क्लेश तथा एकता का अभाव बना रहता है।

3. उत्तर दिशा—उत्तर दिशा में अधिक खुली जगह, बालकनी, दरवाजे, खिड़की, बरामदा, पोर्टिको, वॉश बेसिन आदि रखे जाते हैं तथा इस दिशा में भूमि का तल दक्षिण दिशा की अपेक्षा नीचा होना चाहिए। यदि उत्तर दिशा में रसोई घर होता है तो अपार संपत्ति का निरन्तर ह्रास तथा व्यापार में घाटा होता है तथा धन की सदैव किल्लत बनी रहती है।

4. दक्षिण दिशा—इस दिशा में कम खुली जगह, भूमि का तल ऊँचा, धन-संग्रह स्थान, मशीनें, शयन कक्ष आदि रखने का प्रावधान है। यदि दक्षिण दिशा में अधिक खुला स्थान होता है तो उस स्थान पर स्त्रियाँ अधिक शक्तिशाली व उच्छृंखल होती हैं तथा मातृ पद प्रधान होता है। यदि इस दिशा में जल संग्रह स्थान अथवा बोरवेल हो तो स्त्रियाँ सदैव कष्ट में रहती हैं।

5. उत्तर पूर्व दिशा (ईशान कोण)—इस दिशा में अधिक खुली जगह, ट्यूवेल, कुआँ, भूमि के नीचे पानी की टंकी, पूजा कक्ष, मंदिर इत्यादि बनाने का प्रावधान है। इस ओर का भूमि तल सबसे नीचा होना चाहिए। यदि

इस दिशा में अधिक भार रखा हुआ है तो आकस्मिक दुर्घटनाएँ, सिर पर चोटें तथा मानसिक उद्वेगों का कारण बनता हैं। यदि इस दिशा की सतह और दिशाओं से ऊँची होती है तो उस स्थान के निवासियों में रक्त व हृदय की बीमारियाँ, उच्च रक्तचाप, हार्ट-अटैक इत्यादि की संभावना रहती है तथा माता-पिता व बच्चों में मत विभिन्नता अधिक रहती है।

यदि इस दिशा अथवा कोण में रसोई घर होता है तो दैवीय प्रकोप, अदृश्य शक्तियों द्वारा उत्पात, मतिभ्रम तथा पक्षाघाती घटनाएँ अवश्यंभावी है तथा बच्चों की मति मंदता तथा मानसिक विकलांगता का कारण बनता है।

6. **उत्तर-पश्चिम दिशा (वायव्य कोण)**—इस दिशा में गोशाला, बेडरूम, गैराज, सेवक कक्ष, बच्चों का कमरा, पक्के माल का स्थान, केश काउन्टर आदि बनाए जाने का प्रावधान है। यदि उत्तर-पश्चिम दिशा में भूमि तल पर जल का भंडार हो तो बच्चों में सर्दी जुकाम के विकार, लगातार मुकद्मेबाजी, व्यापार में निरन्तर घाटा, धन की हानि तथा वायु विकार की घटनाएँ होती रहती हैं।

7. **दक्षिण-पूर्व दिशा (आग्नेय कोण)**—इस कोण अथवा दिशा में मुख्यतया अग्नि का स्थान, रसोईघर, बॉयलर, भट्टी, ट्राँसफॉर्मर, सैप्टिक टैंक, कार गैरेज इत्यादि बनाए जाने का प्रावधान है। यदि इस दिशा में बोरवेल अथवा पानी की टंकी होती है तो पेट से संबंधित व्याधियाँ, गैस की व्याधियाँ, मानसिक तनाव, मधुमेह, मानसिक कमजोरी, इच्छाशक्ति का ह्रास व यकृत जन्य बीमारियों का कारण होती हैं। यदि इस दिशा में बेडरूम होता है तो उनमें सोने वाले युगल के मध्य तनाव लड़ाई-झगड़े तथा अनिद्रा की स्थिति बनती है। यदि और कारक भी विपरीत हो तो उस युगल में संबंध विच्छेद तक हो सकता है।

8. दक्षिण-पश्चिम दिशा (नेऋत्य कोण)—इस दिशा में मुख्यतया मास्टर बेडरूम, सीढ़ियाँ, कच्चा माल, मशीनें तथा भारी सामान रखा जाता है। यह स्थान सबसे ऊँचा होना चाहिए तथा उसे खाली नहीं छोड़ना चाहिए। यदि यह दिशा अथवा कोण अधिक बढ़ा हुआ है तो धन नाश तथा व्यापार के पतन का कारण बनता है तथा सामाजिक स्थिति को प्रभावित करता है। यदि यह स्थान खाली रखा गया है तो विभिन्न उत्पात, मनोविकार तथा अन्यमनस्कता का कारण होता है। पारिवारिक शांति का अभाव रहता है।

बहुधा ऐसा देखने में आता है कि दो कमियाँ होने पर लोग उसे पूरक एवं दोष की समाहित मान लेते हैं, यह एक त्रुटियुक्त भूल है। वस्तुतः वे कारक दोगुने होकर कई गुनी हानियाँ देते हैं। वास्तु सुधार के नाम पर आजकल वास्तु शास्त्री, बहुधा किसी रचना को ध्वस्त करके उनके पुनर्निर्माण की ओर जोर देते हैं, जो कि संकटग्रस्त व्यक्तियों के लिए संभव नहीं होता है। इसके हेतु कुछ उपाय इस प्रकार के होते हैं जिनको हम प्रयोग में लाएँ तो हानि से बचा जा सकता है। जैसे यदि रसोईघर उत्तर दिशा में अव्यवस्थित है और उसे कहीं और नहीं बनाया जा सकता तो वहाँ पर पानी का एक कृत्रिम फब्बारा लगा सकते हैं एवं यदि अग्नि के जलते समय यदि पानी का प्रवाह भी जारी रखा जाए तो हानि से कुछ बचाव संभव है। इसके अतिरिक्त कुछ उपाय जैसे पानी पीते समय मुँह को उत्तर-पूर्व की ओर रखना, पूजन उत्तर तथा पूर्व दिशा की ओर बैठकर करना, भोजन करते समय थाली दक्षिण पूर्व की ओर रखना, सोते समय सिर दक्षिण की ओर रखना, शीशा देखते समय स्वयं मुख उत्तर की ओर होना तथा पवित्र चित्रों के प्रयोग के द्वारा विभिन्न वास्तु विपरीत निर्मित स्थितियों का निदान कर सकते हैं।

तिथि विचार

नाम	तिथि	तिथि फल	सिद्धियोग	मृत्युयोग
नन्दा	1,6,11	आनंद व लाभ	शुक्रवार	रवि, मंगल
भद्रा	2,7,12	कल्याण व शुभ	बुध	सोम, शुक्र
जया	3,8,13	विजय व यश	मंगल	बुध
रिक्ता	4,9,14	क्लेश व संताप	शनिवार	गुरु
पूर्णा	5,10,15	इच्छित सिद्धि	वृहस्पति	शनिवार

दिशा शूल विचार

सोमवार, शनिवार	-	पूर्व दिशा में
गुरुवार	-	दक्षिण दिशा में
रविवार, शुक्रवार	-	पश्चिम दिशा में
बुधवार, मंगलवार	-	उत्तर दिशा में

वास्तु शिल्प के कुछ सूत्र

★ कक्ष में सोफा दक्षिण-पश्चिम भाग में रखें।

★ सीढ़ियों के नीचे शौचालय नहीं बनाना, यदि ऐसा हो तो मस्सा, कब्ज, अजीर्ण व्याधियाँ संभव हैं

★ मुख्य द्वार एवं दक्षिण दिशा की ओर पैर कर शयन न करें।

★ भवन एवं व्यवसाय का फर्नीचर आयताकार या वर्गाकार ही बनावें।

★ धन बॉक्स-अलमारी का मुँह उत्तर दिशा की तरफ रखा जाना चाहिए।

★ बीमार व्यक्ति का शयन स्थान नैऋत्य में रखें, कदाचित वायव्य में भी संभव है।

★ खाद्य सामग्री वायव्य कोण में रखें।

★ भवन में औषधि ईशान कोण में रखना एवं औषधि भक्षण करने वाले का मुँह भी इसी कोण में रखा जाये।

★ कचरा, झाडू एवं लकड़ी आदि ईशान कोण में न रखें।

★ पुस्तकें नैऋत्य, दक्षिण या पश्चिम में रखें।

★ अध्ययन बैंच के सामने या समीप दर्पण न लगायें।

★ भवन में दर्पण पूर्वी या उत्तरी दीवार पर लगावें।

★ घड़ी पूर्व, पश्चिम या उत्तर दीवार पर न लगावें।

★ टेलीफोन एवं विद्युत उपकरणों का स्थान भवन याकक्ष के आग्नेय कोण में बनावें तथा इसके समीप जल एवं तरल पदार्थ न रखें।

★ वाद-विवाद के दस्तावेज ईशान कोण में रखे जावें।

★ उत्तर एवं आग्नेय में रखना अत्यन्त हानिकारक है।

★ अतिथि एवं अविवाहितों का शयन कक्ष वायव्य में हो।

दिन का चौघड़िया

समय	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
6–7.30	उद्वेग	अमृत	रोग	लाभ	शुभ	चल	★काल
7.30–9	चल	★काल	★उद्वेग	अमृत	★रोग	लाभ	शुभ
9–10.30	लाभ	शुभ	चल	★काल	★उद्वेग	अमृत	★रोग
10.30–12	अमृत	★रोग	लाभ	शुभ	चल	★काल	★उद्वेग
12–1.30	★काल	★उद्वेग	अमृत	★रोग	लाभ	शुभ	चल
1.30–3	शुभ	चल	★काल	★उद्वेग	अमृत	★रोग	लाभ
3–4.30	★रोग	लाभ	शुभ	चल	★काल	★उद्वेग	अमृत
4.30–6	★उद्वेग	अमृत	★रोग	लाभ	शुभ	चल	★काल

रात का चौघड़िया

समय	रवि	सोम	मंगल	बुध	गुरु	शुक्र	शनि
6–7.30	शुभ	चल	★काल	★उद्वेग	अमृत	★रोग	लाभ
7.30–9	अमृत	★रोग	लाभ	शुभ	चल	★काल	★उद्वेग
9–10.30	चल	★काल	★उद्वेग	अमृत	★रोग	लाभ	शुभ
10.30–12	★रोग	लाभ	शुभ	चल	★काल	★उद्वेग	अमृत
12–1.30	★काल	★उद्वेग	अमृत	★रोग	लाभ	शुभ	चल
1.30–3	लाभ	शुभ	चल	★काल	★उद्वेग	अमृत	★रोग
3–4.30	★उद्वेग	अमृत	★रोग	लाभ	शुभ	चल	★काल
4.30–6	शुभ	चल	★काल	★उद्वेग	अमृत	★रोग	लाभ

नोट :- ★ निशान वाले चौघड़िया अशुभ समझिये।

किस गाँव को एवं किस व्यक्ति को कौन सा तीर्थंकर मूलनायक मंदिर में या घर में रखना चाहिए?

ये राशि वाले (गाँव या व्यक्ति)	*ये तीर्थंकर रखें*
तुला, मकर मीन	भगवान आदिनाथ
वृषभ, वृश्चिक, कुंभ, मीन	भगवान अजितनाथ
वृषभ, वृश्चिक, सिंह, मकर, कुंभ	भगवान संभवनाथ
मेष, मिथुन, सिंह, कन्या, धनु, मीन	भगवान अभिनन्दन
मिथुन, सिंह, वृश्चिक	भगवान सुमतिनाथ
मिथुन, कन्या, वृश्चिक, धनु, मीन	भगवान पद्मप्रभु
मेष, तुला, धनु, मकर,	भगवान सुपार्श्वनाथ
वृषभ, सिंह, वृश्चिक, मकर, कुंभ	भगवान चन्द्रप्रभु
धनु, कुंभ, मीन	भगवान पुष्पदन्त
तुला, मकर, मीन	भगवान शीतलनाथ
तुला, मकर, मीन	भगवान श्रेयांसनाथ
वृषभ, धनु, कुंभ	भगवान वासुपूज्य
धनु, मकर, मीन	भगवान विमलनाथ
धनु, मकर, मीन	भगवान अनंतनाथ
मेष, वृषभ, कर्क, कन्या, तुला, मकर	भगवान धर्मनाथ
मेष, कर्क, तुला, मकर, कुंभ	भगवान शांतिनाथ
वृषभ, वृश्चिक, कुभ, मीन	भगवान कुन्थुनाथ
वृषभ, वृश्चिक, कुंभ, मीन	भगवान अरहनाथ
मेष, कर्क, कुंभ तुला, मकर	भगवान मल्लिनाथ
मेष, कर्क, कुंभ, तुला, मकर, मीन	भगवान मुनिसुव्रतनाथ
मेष, तुला, धनु, मकर	भगवान नमिनाथ
मिथुन, कन्या, वृश्चिक, धनु, मीन	भगवान नेमिनाथ
मेष, तुला, धनु, मकर	भगवान पार्श्वनाथ
मिथुन, कन्या, वृश्चिक, धनु मीन	भगवान महावीर

श्रावक प्रतिक्रमण

हे जिनेन्द्र देव! हे देवाधिदेव! हे वीतरागी सर्वज्ञ हितोपदेशी! अरिहन्त प्रभु मैं पापों के प्रक्षालन के लिए, पापों से मुक्त होने के लिए, आत्म उत्थान के लिए, आत्म जागरण के लिए, प्रतिक्रमण करता हूँ। (इस प्रकार प्रतिज्ञा करके एक आसन से बैठकर प्रतिक्रमण प्रारम्भ करें)

समता मे सर्वभूतेषु, संयमः शुभभावना।
आर्तरौद्र परित्यागः, तद्धि सामायिकं मतं॥

सब जीवों पर साम्यभाव धारण करके शुभ भावनापूर्वक संयम पालते हुए, आर्त रौद्र ध्यान का त्याग सामायिक कहलाता है।

पापी, दुरात्मा, जड़बुद्धि मायावी, लोभी और रागद्वेष से मलिन चित्तवाले मैंने जो दुष्कर्म किया है। उसे हे तीन लोक के अधिपति! हे जिनेन्द्र देव! निरंतर समीचीन मार्ग पर चलने की इच्छा करने वाला मैं आज आपके पादमूल में निन्दा पूर्वक उसका त्याग करता हूँ।

हाय! मैंने शरीर से दुष्ट कार्य किया हो, हाय! मैंने मन से दुष्ट विचार किया हो! आय मैंने मुख से दुष्ट वचन बोला हो, उसके लिए मैं पश्चाताप करता हुआ भीतर ही भीतर जल रहा हूँ।

निन्दा और गर्हा से युक्त होकर द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव पूर्वक किये गये अपराधों की शुद्धि के लिए मैं मन, वचन और काय से प्रतिक्रमण करता हूँ।

समस्त संसारी जीवों की सर्व योनियाँ (जातियाँ चौरासी लाख है एवं सर्व संसारी जीवों के सर्व कुल एक सौ साढ़े निन्यानवे) 199.5) लाख करोड़ होते हैं, इनमें अवस्थित जीवो की विराधना की हो एवं इनके प्रति होने वाले राग द्वेष से जो पाप लगे हों-तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥ (तत्संबंधी मेरा दुष्कृत मिथ्या हो) जो एकेन्द्रिय, दो इन्द्रिय, तीन इन्द्रिय, चार इन्द्रिय और पञ्चेन्द्रिय तथा पृथिवीकायिक, जलकायिक, अग्निकायिक, वायुकायिक, वनस्पतिकायिक और त्रसकायिक जीव हैं इनका जो उत्तापन, परितापन विराधन और उपघात किया हो, कराया हो और करने वाले की अनुमोदना की हो-तस्स-मिच्छा में दुक्कड़ं॥

सूक्ष्म, बादर पर्याप्त निर्वृत्पर्याप्त और लब्ध्यपर्याप्त जीवों में से किसी भी जीव की विराधना की हो तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

हे दया के सागर! मूल गुणों के अन्तर्गत मद्य त्याग व्रत में मर्यादा के बाहर अचार, मुरब्बा आदि सर्व प्रकार के सन्धानों का 2 दिन व रात्रि व्यतीत हुए दही, छाछ एवं काँजी आदि का, आसवों एवं अर्कों का तथा भांग, नागफेन, धतूरा, पोस्ते का छिलका, चरस, गांजा आदि नशीले पदार्थों का स्वयं सेवन किया हो, कराया हो या सेवन करने वालों की अनुमोदना की हो तथा अन्य और भी जो

अतिचार अनाचार जन्य दोष लगें हों, **तस्स-मिच्छा में दुक्कंड॥**

हे करुणा के सागर! मूल गुणों के अन्तर्गत मांस त्याग व्रत में चमड़े के बेल्ट, पर्स, जूता, चप्पल, घड़ी का पट्टा आदि का स्पर्श हो गया हो चमड़े से आच्छादित तथा स्पर्शित हींग, घी, तेल एवं जल आदि का, अशोधित भोजन का, जिसमें त्रस जीवों का संदेह हो ऐसे भोजन का बिना छाना हुआ अथवा विधि पूर्वक दुहरे छन्ने (वस्त्र) से नहीं छाना गया घी, दूध, तेल एवं जल आदि का, सड़े और घुने हुए अनाज आदि का, शोधन विधि से अनभिज्ञ साधर्मी या शोधन विधि से अपरिचित विधर्मी के हाथ से तैयार हुए भोजन का, बासा भोजन का, रात्रि भोजन का, चलित रस पदार्थों का, बिना दो फाण किये काजू, पुरानी मूँगफली, सेमफली आदि का अमर्यादित दूध, दही, छाछ आदि पदार्थों का स्वयं सेवन किया हो, कराया हो, करते की हुए अनुमोदना की हो, तज्जन्य आदि जो भी अतिचार अनाचार दोष, लगे हों। तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

हे परमपिता परमात्मा! मूल गुणों के अन्तर्गत मधुत्याग व्रत में औषधि के निमित्त मधु का, फूलों के रसों का, एवं गुलकन्द आदि का स्वयं सेवन किया हो कराया हो करते हुए की अनुमोदना की हो, तज्जन्य अन्य जो भी अतिचार अनाचार दोष लगे हों तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

हे नित्य निरंजन देव! मूलगुणों के अन्तर्गत जीवदया व्रत पालन में प्रमाद किया हो, अज्ञान रखा हो, अंगोपांग छेदन किया हों, कराया हो या करते हुए अनुमोदना की हो तज्जन्य जो भी दोष लगे हों, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

जुआ, मांस, मदिरा, शिकार, वैश्यागमन, चोरी, और परस्त्री गमन इन सप्तव्यसन सेवन में जो पाप लगा हो तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

देव दर्शन पूजन, साधु उपासना वैयावृत्ति स्वाध्याय, संयम, पालन इच्छायें सीमित करना और अर्जित संपत्ति का सदुपयोग (दान देना) षडावश्यक पालन में अतिचार पूर्वक जो भी दोष लगे हों, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

राज कथा, चोर कथा, स्त्री कथा और भोजनकथा करने से जो पाप लगे हों, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

जीवो को सताने वाला दुष्ट मन, दुष्ट विचार और दुष्ट काय से तीन दण्ड, माया, मिथ्या और निदान, तीन शल्य और शब्द गारव, ऋद्धि गारव और सात गारव द्वारा जो पाप लगे हों, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

मिथ्यादर्शन, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग इन पाँचों कारणों द्वारा जो पाप बन्ध हुये हों, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

आहार, भय, मैथुन और परिग्रह इन चार संज्ञाओं के द्वारा पाप बन्ध हुआ हो, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

इहलोक भय परलोक भय, मरणभय, वेदनाभय, अगुप्तिभय, अरक्षाभय अकस्मात् भय द्वारा जो पापबंध हुआ हो, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

स्थूल हिंसा विरति व्रत का पालन करते हुए जीवों को मारा हो, बाँधा हो, अंगोपांग छेदे हों, अधिक बोझ लादा हो एवं अन्न पान का निरोध किया हो, इत्यादि अनेक दोष कृत कारित अनुमोदन किया हो, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

स्थूल असत्य विरति व्रत का पालन करते हुए मिथ्या उपदेश देने का, एकांत में कहीं हुई बात का प्रगट कर देने से, झूठा लेख लिखने से, तथा किसी की इंगित चेष्टा से अभिप्राय समझ कर भेद प्रकट कर देने से जो दोष, मन, वचन, काय एवं कृतिकारित अनुमोदना से लगे हों तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

स्थूल चौर्य विरति व्रत के पालन में चोर द्वारा चुराया गया द्रव्य ग्रहण किया हो, राज्य के विरुद्ध कार्य किया हो, धरोहर हरण करने के भाव किये हों, तोलने के बाँट कमती या बड़ती रखे हों, अधिक कीमती वस्तु में कम कीमत वस्तु मिलाकर बेची हो, एवं मन, वचन काय तथा कृतकारित, अनुमोदना से, चोरी का प्रयोग बतलाने से जो दोष लगे हों, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं।।

स्थूल अब्रह्मविरति व्रत पालन करने में व्यभिचारिणी स्त्री के साथ आने-जाने का व्यवहार रखा हो। कुमारी, विधवा एवं सधवा आदि अपरिगृहित स्त्रियों के साथ आने-जाने या लेन देन का व्यवहार रखा हो, काम सेवन के अंगों को छोड़कर दूसरे अंगों से कुचेष्टाएँ की हों, काम के तीव्र वेग से वीभत्स विचार बने हों और मन वचन काय और कृत, कारित अनुमोदना से अन्य के पुत्र-पुत्रियों का विवाह किया हो, इस प्रकार जो भी दोष लगे हों, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

स्थूल-परिग्रह-परिमाण व्रत में मन, वचन, काय एवं कृत, कारित अनुमोदन से जमीन और मकान आदि के प्रमाण का उल्लंघन किया हो, गाय बैल आदि धन, अनाज आदि धान्य, दासि-दास, चाँदी-सोना, वस्त्र एवं बर्तन आदि के प्रमाण का उल्लंघन किया हो तो तज्जन्य जो भी दोष लगे हों, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

(नौ बार णमोकार मंत्र का जाप करता हूँ।)

दिग्व्रत, देशव्रत अनर्थ दण्डविरति व्रत ये तीन गुणव्रत और भोग परिमाण व्रत परिभोग परिमाणव्रत, अतिथिसंविभाग व्रत, समाधि मरणव्रत ये चार शिक्षाव्रत रुप बारह व्रतों में जो दोष लगे हों, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं

पाँच इन्द्रियों और मन को वश में न करने से जो पाप लगे हों, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

मोह के वशीभूत होकर अनेक प्रकार के उत्तमोत्तम वस्त्र एवं स्त्रियों को आकर्षित करने वाला शरीर का शृंगार किया हो, राग के उद्रेक से हंसी युक्त अशिष्ट वचनों का प्रयोग किया हो, परस्पर प्रीति से रहने वालों के बीच द्वेष किया हो, तज्जन्य जो दोष लगे हों, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

तप और स्वाध्याय से हीन असम्बद्ध (प्रलाप करने में, अन्यथा पढ़ने-लिखने से, एवं अन्यथा ग्रहण) करने से दोष लगे हों, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

मुनि, आर्यिका श्रावक और श्राविका की किसी भी प्रकार से निन्दा की हो, कराई हो, सुनी हो सुनाई हो इससे जो पाप लगे हों, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

साधुओं व साधर्मियों से कटुवचन बोला हो एवं आहार दान देने में प्रमाद करने में जो दोष लगे हों, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

देव शास्त्र गुरु की अविनय एवं असाधना से जो पाप लगे हों, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

पाश्चात्य वेशभूषा का उपयोग कर, टी.वी. आदि देखकर एवं उपन्यास आदि पढ़कर शील में जो दोष लगे हों, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

उच्च कुलों को गर्हित कुल बनाने में कृत कारित अनुमोदना से संयोग देने में जो पाप लगे हों, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

चलने-फिरने, शरीर के हिलने-हिलाने, उठने-बैठने, छींकने-खाँसने, सोने-जम्हाई लेने और मार्ग में चलने-चलाने में देखे, बिना देखे तथा जाने-अन्जाने में जो दोष लगे, हों, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

किसी भी जीव को मैंने दबा लिया हो, कुचल दिया हो, भयभीत कर दिया हो, त्रास दिया हो, वेदना पहुँचाई हो छेदन, भेदन कर दिया हो अन्य किसी प्रकार से, वेदना पहुँचाई हो, तस्स-मिच्छा में दुक्कडं॥

जाने-अनजाने में और जो भी दोष लगे हों तस्स-मिच्छा में दुक्कडं

हा दुट्ठकयं हा दुट्ठ चिंतियं भासियं च हा दुट्ठं।
अन्तो अन्तो डज्झम्मि पच्छत्तावेण वेयंतो॥

हाय! हाय! मैंने दुष्ट कर्म किये, मैंने दुष्ट कर्मों का बार-बार चिन्तन किया। मैंने दुष्ट मर्म भेदक वचन कहे, इस प्रकार मन, वचन, काय की दुष्टता से मैंने अत्यंत कुत्सित कर्म किये। उन कर्मों का मुझे अत्यत पश्चाताप है।

हे प्रभु! मेरा किसी के भी साथ राग नहीं, द्वेष नहीं, बैर नहीं तथा क्रोध, मान, माया, लोभ नहीं है, अपितु सर्व जीवों के प्रति उत्तम क्षमा है।

हे परमात्मा जब तक मोक्षपद की प्राप्ति न हो तब तक भव-भव में मुझे शास्त्रों के पठन-पाठन का अभ्यास, जिनेन्द्र पूजा, निरन्तर श्रेष्ठ पुरुषों की संगति, सच्चरित्र सम्पन्न पुरूषों के गुणों की चर्चा, दूसरों के दोष कहने मे मौन, सभी प्राणियों के प्रति प्रिय और हितकारी वचन एवं आत्मकल्याण की भावना ये सब वस्तुएँ प्राप्त होती रहें

हे जिनेन्द्र देव! मुझे जब तक मोक्ष की प्राप्ति न हो जाये तब तक आपके चरण मेरे हृदय में और मेरा हृदय आपके चरणों में लीन रहे।

हे भगवान! मेरे दुःखों का क्षय हों, कर्मों का लक्ष्य हो, कर्मों का नाश हो, रत्नत्रय की प्राप्ति हो, शुभ गति हो, सम्यक्दर्शन की प्राप्ति हो, समाधिमरण हो और श्री जिनेन्द्र देव के गुणों की प्राप्ति हो, ऐसी मेरी भावना है, ऐसी मेरी भावना है, ऐसी मेरी भावना है।

क्षमा प्रार्थना

किया अपराध जो मैंने, तुम्हारे जाने-अनजाने।
क्षमा करना सभी मुझको, क्षमा करना सभी जन को॥
सभी से मित्रता मेरी, किसी से बैर न मेरा।
यही है भावना मेरी, जिनेश्वर हो कृपा तेरी॥
क्षमा करना-क्षमा करना, न दिल में रोष को धरना।
शुद्ध दिल से क्षमा मागूँ, क्षमाभावों को धरता हूँ॥
(उत्तम क्षमा, उत्तम क्षमा, उत्तम क्षमा)

खोई हुई वस्तु मिलेगी या नहीं?

विनष्टार्थस्य लाभोऽन्धे शीघ्रं मन्दे प्रयत्नतः।
स्यात् दूरेश्रपणं मध्ये श्रुत्याप्तीन सुलोचने॥

1. अन्धाक्ष नक्षत्रों में गुम हुई अथवा चोरी हुई वस्तु पूर्व दिशा की ओर जाती है और उसकी पुनः प्राप्ति की शीघ्र संभावना रहती है।

2. सुलोचन नक्षत्रों में गुम हुई उत्तर दिशा में जाती है, परन्तु उसका न तो पता चलता है और न ही प्राप्त होती है।

3. मध्याक्ष नक्षत्र में खोई वस्तु पश्चिम दिशा की ओर अति दूर चली जाती है। पता चलने पर भी प्राप्त (हस्तगत) नहीं होती।

4. मन्दाक्ष नक्षत्र में गुम अथवा चोरी हुई वस्तु दक्षिण की ओर चली जाती है तथा अत्यधिक प्रयत्न करने पर अन्ततोगत्वा वह प्राप्त हो जाती है।

आचार्य विरागसागर ग्रंथमाला के महत्वपूर्ण प्रकाशन

- **विरागांजलि** (श्रमण एवं श्रावक के लिये आवश्यक भक्ति पाठ संग्रह का सर्वश्रेष्ठ प्रकाशन)
- **आइना (काव्य संग्रह)** (आचार्यश्री विमर्शसागरजी द्वारा रचित कविताओं का महत्वपूर्ण संकलन)
- **ज़ाहिद की ग़ज़लें** (आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज द्वारा रचित ग़ज़लों का संग्रह एवं आकर्षक सुन्दर प्रकाशन)
- **जीवन है पानी की बूँद (समग्र)** (आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज द्वारा रचित बहुचर्चित भजन के 1000 छन्दों का संग्रह एवं आकर्षक सुन्दर प्रकाशन)
- **चटपटे प्रश्न- स्वादिष्ट उत्तर** (प्रश्नोत्तर रत्नमालिका एवं अपरा प्रश्नोत्तर रत्नमालिका पर आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज द्वारा लिखित पहेलियाँ)
- **हिन्दी साहित्य की सन्त परम्परा में आचार्य विरागसागर के कृतित्व का अनुशीलन** (डॉ. लोकेश खरे द्वारा आचार्य श्री विरागसागरजी महाराज के व्यक्तित्व कृतित्व पर पी.एच.डी.)
- **गूँगी चीख** (गर्भपात विषय पर दिया गया आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज का ऐतिहासिक प्रवचन)
- **शंका की एक रात** (निःशंकित अंग का हृदय को छू लेनेवाला विवेचन एवं सुन्दर आकर्षक प्रकाशन)
- **मानतुंग के मोती** (श्री भक्तामर स्तोत्र पर आधारित प्रश्नोत्तर सहित एवं आचार्यश्री के तीन पद्यानुवाद से सजी-सँवरी विधान एवं शिक्षण शिविरों के लिये उपयोगी कृति)
- **विमर्शाञ्जलि** (आचार्यश्री विमर्शसागरजी द्वारा रचित पूजा, स्तोत्र पद्यानुवाद एवं पूजाओं का सर्वोपयोगी संकलन)
- **सोचता हूँ कभी - कभी** (आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज द्वारा रचित सुन्दर आकर्षक काव्य संग्रह)
- **समर्पण के स्वर** (आचार्यश्री विमर्शसागरजी द्वारा रचित गुरु चरणों में समर्पित हृदय स्पर्शी काव्य संग्रह)
- **खूबसूरत लाइनें** (आचार्यश्री विमर्शसागरजी द्वारा रचित विभिन्न विषयों पर आधारित हृदय को छूनेवाला काव्य संग्रह)
- **जीवन चलती हुई घड़ी** (आचार्यश्री विमर्शसागरजी द्वारा रचित जीवन है पानी की बूँद तर्ज पर 100 छन्दों का दिल को छू लेनेवाला काव्य संग्रह)
- **हे वन्दनीय गुरुवर** (आचार्यश्री विमर्शसागजी द्वारा रचित भजनों का संग्रह,

परमगुरु आचार्यश्री विरागसागरजी मुनिराज के पावन कर कमलों में सादर समर्पित)

- **गीतांजली** (आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज द्वारा लिखित भजनों का महत्वपूर्ण संकलन एवं सुन्दर आकर्षक प्रकाशन)
- **जनवरी विमर्श** (आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज द्वारा गहन चिन्तन से उद्भूत, दिल और दिमाग को झकझोरने वाला सुंदर सूक्ति संग्रह)
- **शब्द-शब्द अमृत** (आचार्यश्री विमर्शसागरजी के हृदय स्पर्शी एवं चिंतन को नई ऊर्जा देनेवाले महत्वपूर्ण प्रवचनांशों का सुंदर एवं आकर्षक प्रकाशन)
- **जैन श्रावक और दीपावली पर्व** (आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज द्वारा रचित, जैन श्रावकों को दीपावली क्यों और कैसे मनाना चाहिये ? आदि अनेक प्रश्नों का मांगलिक समाधान एवं दीपावली पर्व का सुंदर विवेचन)
- **आओ सीखें जिन स्तोत्र** (आचार्यश्री विमर्शसागरजी द्वारा पद्यानुवादकृत महत्वपूर्ण जिनस्तोत्रों का संग्रह, पठन-पाठन हेतु उपयोगी कृति)
- **भरत जी घर में वैरागी** (आचार्यश्री विमर्शसागरजी द्वारा जैन श्रावकों की जीवनशैली पर दिया गया एक प्रेरणास्पद प्रवचन संग्रह)
- **मेरा प्रेम स्वीकार करो** (आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज द्वारा रचित प्रभु भक्ति में समर्पित सर्वोपयोगी काव्य संग्रह का सुन्दर आकर्षक प्रकाशन)
- **करलो गुरु गुणगान** (आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज द्वारा रचित गुरुभक्ति में समर्पित सर्वोपयोगी काव्य संग्रह का सुन्दर, आकर्षक प्रकाशन
- **वाह क्या खूब कही** (आचार्यश्री विमर्शसागरजी महाराज द्वारा रचित सर्वोपयोगी सुन्दर आकर्षक काव्य संग्रह का प्रकाशन)
- **प्रज्ञाशील महामनीषी** (आचार्यश्री विरागसागर जी महाराज का रोचक लघु जीवन चित्रण)
- **जतारा का ध्रुवतारा** (आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज का रोचक लघु जीवन चित्रण)
- **राष्ट्रयोगी** (आचार्यश्री विमर्शसागर जी महाराज के जीवन दर्शन विख्यात जीवनीकार सुरेश 'सरल' की अनूठी कृति)

प्राप्ति स्थान

1. **राष्ट्रीय विमर्श जागृति मंच**
   C/o श्री सुखानन्द साड़ी सेन्टर, बतासा बाजार, भिण्ड (म.प्र.)
   मो. 9826244355, 9826217291